साक्षी

अंक-26-बी

साक्षी

अंक-26-बी

भारतीय भाषाओं में रामकथा

(असमिया भाषा)

भाग-2

प्रधान सम्पादक

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

पूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

डॉ. अनुशब्द

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग

तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम

परिकल्पना

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

निदेशक, अयोध्या शोध संस्थान : तुलसी स्मारक भवन

अयोध्या, फ़ैज़ाबाद (उ.प्र.)

अयोध्या शोध संस्थान

तुलसी स्मारक भवन, अयोध्या, फ़ैज़ाबाद (उ. प्र.)

फ़ोन—फ़ैक्स : 05278-232982

साक्षी-26-बी
भारतीय भाषाओं में रामकथा : असमिया भाषा (भाग-2)

प्रधान सम्पादक
डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

सम्पादक
डॉ. अनुशब्द

परिकल्पना
डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

ISSN : 2454-5465

छब्बीसवाँ अंक
© अयोध्या शोध संस्थान

प्रकाशक

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
फ़ोन : 011-23273167, 23275710
फ़ैक्स : 011-23275710
ई-मेल : vaniprakashan@gmail.com
वेबसाइट : www.vaniprakashan.com

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए वाणी प्रकाशन की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। विचारों से पूर्णतः सम्पादक और वाणी प्रकाशन का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से

सम्पादकीय

''सहरा में जमाँ, मकाँ के खो जाती हैं सदियों बेदार रह के सो जाती हैं
अक्सर सोचा करता हूँ खिल्वत में फ़िराक तहज़ीबें क्यों गुरुब हो जाती हैं।''

जब भी दिक् और काल में सांस्कृतिक गतिरोध या सांस्कृतिक विलम्बन उपस्थित होता है तो अक्सर यह नौबत आती है और सांस्कृतिक विलोपन का संकट पैदा हो जाता है। आज यह संकट अपनी पराकाष्ठा पर है। तकनीक और प्रौद्योगिकी ने हमारे भौतिक विकास को तीव्र गति दे दी है और इस स्पर्द्धा में संस्कृति काफ़ी पीछे छूटती जा रही है तथा सभ्यता काफ़ी आगे बढ़ गयी है। भौतिक दृष्टि से सभ्यता इस सौरमण्डल से परे दूसरे सौरमण्डल में प्रवेश करना चाहती है तो दूसरी ओर हम सांस्कृतिक दृष्टि से इतने कंगाल होते जा रहे हैं कि पड़ोस में दीवार के पार की कोई खोज-ख़बर नहीं ले पाते। यह संवेदनशून्यता हमें मानव-रोबोट का दर्जा देती जा रही है। सभ्यता तो मात्र आबोहवा है और संस्कृति वह प्राणवायु है जो हमारी संवेदना को स्पन्दन देती है, मनुष्यता को शक्ति देती है और हमें होमो-सेपियन्स प्राणी सिद्ध करती है। जिस दिन हमारे दिलों में दूसरों के लिए मर-मिटने की भावना आयी, वही हमारी संस्कृति की जन्मतिथि है और जिस दिन आदमी ने दो पत्थरों को टकराकर आग पैदा की, उसी दिन हमारी सभ्यता का जन्म हुआ था। दरअसल, किसी सभ्यता का अवसान सम्भव है, लेकिन किसी संस्कृति का पूर्णतः विनाश सम्भव नहीं। कारण कि सभ्यता का निवास विचारों में होता है और संस्कृति का अधिवास संस्कारों में होता है। संस्कृति हमारी रगों में दौड़ती है और सभ्यता कलेवर में। इसलिए आधुनिकता, भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद आदि पूँजीवादी अवधारणाएँ हमारे सांस्कृतिक आशियानों पर लाख बिजलियाँ बरपायें लेकिन उनके तिनके नष्ट नहीं हो पाये हैं। वे अपनी टहनियों को इतनी सख्ती से पकड़े हुए हैं कि नीड़ का निर्माण फिर से सम्भव है। बस, ज़रूरत है आयातित चक्रवातों को रोकने की। मैं समझता हूँ कि इस दौर में रामकथा से बढ़कर कोई सुरक्षा कवच नहीं है। रामकथा ही वह ढाल है जिसकी वजह से अब भी हमारे रोम-रोम में राम रमे हुए हैं। कारण कि राम और कृष्ण मनुष्यता के बहुत बड़े सपनों के नाम हैं। वे हमारी पुतलियों में नाचते हैं, धमनियों में तैरते हैं।

'राम' भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं। उन्हें किसी विशेष धर्म, विशेष क्षेत्र या विशेष सम्प्रदाय के प्रतिनिधि के रूप में देखना और स्वीकार करना उनकी महत्ता को तो कम करता ही है, हमारी अज्ञानता को भी दर्शाता है। 'राम' शब्द किसी व्यक्ति विशेष या पौराणिक दृष्टि से कहें तो किसी देवता विशेष का परिचायक नहीं बल्कि वह तो प्रतीक है हमारे मानवीय मूल्यों का, हमारी सद्‌वृत्तियों का, हमारे सद्‌विचारों का, हमारे सत्कर्मों का। वह प्रतीक है-सत्यम, शिवम और सुन्दरम का।

'राम' भारतीय संस्कृति के भावनायक हैं। इस भावनायक की कथा में हर युग कुछ-न-कुछ जोड़ता चला आया है। वैदिक काल के बाद सम्भवतः छठी शताब्दी ई.पू. में इक्ष्वाकु-वंश के सूत्रों द्वारा रामकथा विषयक गाथाओं की सृष्टि होने लगी। फलतः चौथी शताब्दी ई.पू. तक राम का चरित्र स्फुट आख्यान काव्यों में रचा जाने लगा। किन्तु यह वाचिक परम्परा थी अतः इसका साहित्य आज अप्राप्य है। ऐसी स्थिति के कारण वाल्मीकि कृत 'रामायण' प्राचीनतम उपलब्ध महाकाव्य है। भारतीय परम्परा वाल्मीकि को आदिकवि और रामायण को आदिकाव्य मानती है। इस आदिकाव्य को ही कई शताब्दियों के बाद अलग-अलग परम्पराओं में लिपिबद्ध किया गया। बौद्धों ने कई शताब्दियों तक राम को 'बोधिसत्व' मानकर रामकथा को जातक कथाओं में स्थान दिया तो जैनियों ने भी रामकथा को अपनाया और पर्याप्त लोकप्रियता दी।

सही मायने में कहें तो रामकथा भारतीय संस्कृति का पर्याय है। उसमें व्यक्त मानवीय मूल्य, मर्यादा एवं आदर्श हमारी उदात्त एवं महान भारतीय संस्कृति के अनिवार्य पहलू हैं और इनकी बिना पर ही वैश्विक संस्कृति में हमारी एक अलग एवं विशिष्ट पहचान है। नितान्त असंवेदनशील युग में इन्सान को इन्सानियत का पाठ पढ़ाने के लिए, उसे 'बीइंग ह्यूमन' का अर्थ समझाने के लिए तथा शंकर, तुलसी और गाँधी के 'रामराज्य' को प्रतिष्ठित करने के लिए आज रामकथा पर सार्थक विमर्श आवश्यक है।

यह पुस्तक इसी विमर्श पर एकाग्र आलेखों का संकलन है। संग्रह में संकलित आलेख असम तथा पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न राज्यों की रामकथाओं पर केन्द्रित हैं। साथ ही इसके अन्तर्गत विभिन्न भारतीय भाषाओं एवं बोलियों के लोक एवं शास्त्र में उपलब्ध रामकथाओं से सम्बद्ध आलेखों को भी शामिल किया गया है ताकि रामकथा को व्यापक सन्दर्भों में समझा जा सके।

पुस्तक में संकलित आलेख विविध आयामी हैं। साहित्य, सिनेमा, कला, संस्कृति आदि कई विधाओं में विन्यस्त रामकथा के विविध पक्षों को उद्‌घाटित करने वाले आलेखों की इस संचयन के गुरुत्व एवं महत्त्व को बढ़ाने में अहम भूमिका है। विश्वास है कि संग्रह की यह बहुआयामिता पाठकों को प्रभावित करेगी। आलेखों की विषयवस्तु लगभग यथावत है। कहने की आवश्यकता नहीं कि संग्रह में शामिल आलेखों की मौलिकता की पूर्ण ज़िम्मेदारी उनके लेखकों की ही है। लेखकों के विचारों से सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। वैसे भी विचार के लोकतन्त्र में असहमतियाँ ज़्यादा क़ीमती होती हैं।

रामनाम और रामकथा के इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य और प्रभाव के कारण पूर्वोत्तर भारत में राम की इयत्ता एवं महत्ता को रेखांकित करने के उद्देश्य से इस पुस्तक के प्रकाशन की योजना बनायी गयी है। दरअसल यह पुस्तक उत्तर प्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग की महत्त्वपूर्ण इकाई अयोध्या शोध संस्थान की अखिल भारतीय योजना 'भारतीय भाषाओं में रामकथा' के अन्तर्गत ही अस्तित्व में आयी है। संस्थान की इस महती योजना के अधीन 'असमिया रामकथा' के सम्पादन की ज़िम्मेदारी मुझे सौंपी गयी है। कालिदास के 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यम् नवमित्यवद्य...' में आस्था रखते हुए तथा युवा-शक्ति पर भरोसा करते हुये यए बौद्धिक दायित्व मुझे सौंपने के लिए एवं राष्ट्रीय-सांस्कृतिक महत्त्व की इस महत्त्वपूर्ण योजना को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु अयोध्या शोध संस्थान के यशस्वी निदेशक डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। इस योजना की परिकल्पना में वाणी प्रकाशन, दिल्ली के प्रबन्ध निदेशक श्री अरुण माहेश्वरी जी की भी अहम भूमिका रही है। यह योजना उनकी तत्परता से ही आकार पा सकी है और आपके हाथों में

जाने के लिए प्रस्तुत है। अरुण जी के प्रति भी आदर और श्रद्धा अर्पित करता हूँ। इस प्रसंग में मैं अपने माता-पिता को भी याद करता हूँ जिनके प्रेरणा-प्रताप और वत्सल प्रोत्साहन से इस पुस्तक को आप तक पहुँचाने में समर्थ हो सका हूँ। यहाँ पत्नी चारु गोयल को याद न करना भारी अन्याय होगा कारण कि हमारी जीवन-अर्चा में उनकी उपस्थिति सदा सकारात्मक होती है और बेटी अनुकृति अपनी चारु मुस्कान से दैनिकचर्या में ताज़गी ला देती है। इन दोनों के प्रति आभार। अन्त में अपने विद्यार्थियों को भी धन्यवाद देता हूँ जिनके सहयोग से ही यह अनुष्ठान पूरा हो सका है।

'भारतीय भाषाओं में रामकथा' योजना के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तक-शृंखला में यदि यह पुस्तक अपनी एक अलग पहचान बना पायी तो इसका सारा श्रेय पुस्तक में शामिल रचनाओं एवं उनके रचनाकारों का होगा। उम्मीद है कि पुस्तक का अखिल भारतीय रामायणी साहित्य में सार्थक हस्तक्षेप होगा और इस क्षेत्र में सक्रिय विद्वानों एवं शोधार्थियों को एक नयी अन्तर्दृष्टि मिलेगी। विश्वास है कि पूर्वोत्तर के समाज और संस्कृति को समझने की दष्टि से भी यह पुस्तक उपयोगी साबित होगी। पुस्तक आप सुधी पाठकों के हवाले है। आपके सुझावों एवं आलोचनात्मक टिप्पणियों का anush@tezu.ernet.in/ anushabda@gmail.com पर स्वागत है।

अनुशब्द
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
हिन्दी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम-784028
anush@tezu.ernet.in/anushabda@gmail.com

अनुक्रम

माधव कन्दलि के 'सप्तकाण्ड रामायण' में चित्रित राम की भूमिका 11
—बर्नाली बैश्य

श्रीमन्त शंकरदेव की रचनाओं में राम 19
—चयनिका दत्त/परिस्मिता काकति

माजुली की मुखौटा कला में राम 25
—डिम्पी दत्ता/बेबी विश्वकर्मा

माजुली की मुखौटा कला में राम 31
—किरण कलिता/हिटलर सिंह

शंकरदेव के राम 36
—पूजा बरुवा

वाड़ी लीबा कथा कला के माध्यम से मणिपुरी रामकथा 43
—सरस्वती सिंघा

मणिपुर में रामभक्ति आन्दोलन 46
—प्रो. ह. सुवदनी देवी

मिजो रामायण एवं मिजोरम के समाज का अन्तःसम्बन्ध : एक अनुशीलन 52
—प्रो. दिनेश कुमार चौबे

कोकबोरोक-भाषी लोक में रामकथा 57
—डॉ. मिलनरानी जमातिया

रामकाव्य की परम्परा और तुलसी के राम 63
—प्रो. चन्दन कुमार

गुणों के समुच्चय : राम 67
—प्रो. सूर्यकान्त त्रिपाठी

भोजपुरी लोकजीवन में राम 73
—डॉ. सुनील कुमार तिवारी

पुरातन कथा को नवीन रंगों से उकेरने का प्रयास 82
—डॉ. अनिता पी.एल.

रामलीला के विविध रूप 88
—डॉ. मीरा दास

रामलीला और हिन्दी सिनेमा 98
—प्रो. प्रमोद मीणा/डॉ. चारु गोयल

प्रवासी साहित्यकार राजेन्द्र अरुण के ललित साहित्य में रामकथा का व्यावहारिक पक्ष 113
—डॉ. अनुपमा तिवारी/प्रीति प्रकाश

एशिया के विभिन्न देशों के साहित्य और जीवन में राम 117
—डॉ. अंजुबाला

रामकाव्यों में 'शबरी' और उसकी प्रासंगिकता 124
—डॉ. अनुराधा कु. साहु/मोनमी गायन

एशियाई जीवन, साहित्य एवं कला में राम 130
—डॉ. दिलीप शर्मा/प्रत्याशा कौशिक

आधुनिक रामकाव्य का मानवीय पक्ष 135
—डॉ. शैलजा के.

वाल्मीकि रामायण और तुलसी के मानस का तुलनात्मक अध्ययन 144
—छिद्दिकुर रहमान

दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में राम की परिकल्पना 156
—जशोधरा बोरा

वर्तमान परिदृश्य में रामकथा की प्रासंगिकता 165
—दिना चौहान

राम के मानवीय मूल्यों, मर्यादा एवं आदर्श का भारतीय समाज पर प्रभाव 174
—अपराजिता राय

एशिया के विभिन्न देशों में रामकथा 181
—चारु चौहान

वर्तमान समय में राम की प्रासंगिकता : एक संक्षिप्त अवलोकन 186
—मनोज कुमार श्रीवास्तव

रचनाकारों के पते ***191***

माधव कन्दलि के 'सप्तकाण्ड रामायण' में चित्रित राम की भूमिका

बर्नाली बैश्य

प्राक्शंकरी युग के अन्यतम हस्ताक्षर माधव कन्दलि अपनी विशिष्ट काव्य-प्रतिभा के कारण असमिया साहित्य जगत में अप्रमादी तथा कविराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। किन्तु कन्दलि के जन्म, वंश परिचय, मृत्यु तथा कर्म सम्बन्धित सटीक जानकारी प्राप्त न होने के कारण विद्वानों में इस सन्दर्भ में काफ़ी मतभेद मिलता है। ज़्यादातर विद्वान, आलोचक उन्हें 14वीं शती के कछारी बाराह राजा महामाणिक्य का राजकवि मानने के पक्ष में है, जो असम के कमतानगर और पूर्व मध्यांचल के अधिपति थे। 'लंका काण्ड' के अन्त में स्वयं कवि कन्दलि ने महामाणिक्य के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है, जो निम्नलिखित है—

"कविराज कन्दलि जे आमाकेसे बुलि कय करिलोहो सर्वजन बोधे।
रामायण सूपयार श्रीमहामाणिक्य जे वराह राजार अनुरोधे।।"

(**वर्मण**, 1997 : 213)

उक्त पद से यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि कवि कन्दलि बाराह राजा महामाणिक्य के समकालीन थे और उनके अनुरोध से कवि ने वाल्मीकि कृत रामायण के सारांश भाव का असमिया प्रान्तीय भाषा में अनुवाद किया। साथ ही अपनी मौलिक स्वानुभूति तथा काव्यिक प्रतिभा का भी परिचय दिया।

असमिया साहित्य जगत को कन्दलि ने दो अनुपम ग्रन्थ भेंट किये हैं। एक 'सप्तकाण्ड रामायण' तथा दूसरा 'देवजित'। 'सप्तकाण्ड रामायण' में सात काण्ड हैं, जिनके नाम इस प्रकार है—आदि काण्ड, अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, लंका काण्ड और उत्तर काण्ड। (आदि काण्ड—माधवदेव, उत्तर काण्ड—शंकरदेव) वाल्मीकि की तरह कन्दलि ने भी किसी धर्म, मत या साम्प्रदायिकता से प्रभावित होकर 'सप्तकाण्ड रामायण' की रचना नहीं की। वाल्मीकि की तरह कन्दलि ने भी राम को लौकिक रूप में ही चित्रित किया है। परन्तु वाल्मीकि के राम की तुलना में कन्दलि के राम ज़्यादा मानवीय तथा लौकिक हैं। साथ ही प्राकृतिक तथा सामाजिक चित्रण में तत्कालीन असमिया जनजीवन का प्रभाव कन्दलि के सप्तकाण्ड रामायण में द्रष्टव्य है।

प्रत्येक साहित्य सोद्देश्यपूर्ण तथा प्रत्येक साहित्यकार का अपना निजी व्यक्तित्व होता है। वही उनकी स्वतन्त्र सत्ता का परिचायक बन जाता है। माधव कन्दलि कृत 'सप्तकाण्ड रामायण' का भी महत्त्व कई दृष्टियों से है। यह कृति केवल उत्तर भारतीय प्रान्तीय भाषाओं में ही नहीं नव भारतीय आर्य भाषाओं में भी प्रथम रामायण के रूप में मान्य है, जो असम के लिए गौरव की बात है। माधव कन्दलि के परवर्ती रचनाकारों असमिया भाषा साहित्य तथा रामायणी साहित्य के लिए यह दस्तावेज़ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। 'राम' को लौकिक तथा मानवीय गुणों से सम्पृक्त कर उनके चरित्रांकन में

विभिन्न पक्षों को उजागर कर कन्दलि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है, जिसका अध्ययन अति महत्त्वपूर्ण है। साथ ही तद्‌युगीन असमिया जनसमाज के भिन्न पक्षों का चित्रण कर कवि ने अपनी निपुणता का परिचय दिया है। अतः प्रस्तुत विषय-वस्तु का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

- असमिया प्रान्तीय और नव भारतीय आर्यभाषा में रचित सर्वप्रथम रामायण के रूप में कन्दलि कृत सप्तकाण्ड रामायण के बारे में अध्ययन-विश्लेषण।
- सप्तकाण्ड रामायण में चित्रित राम के चरित्र के विभिन्न पक्षों पर विवेचन-विश्लेषण।
- प्रस्तुत अहिन्दीभाषी असमिया रामायणी साहित्य का अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचार तथा प्रसार।
- कन्दलि रचित 'सप्तकाण्ड रामायण' में चित्रित तत्कालीन असमिया समाज तथा जनजीवन के प्रतिफलित रूप का अध्ययन-विश्लेषण।
- माधव कन्दलि के काव्य-सौष्ठव अध्ययन का विश्लेषण।

प्रस्तुत अध्ययन माधव कन्दलि के सप्तकाण्ड रामायण तक ही सीमित है।

पत्र प्रस्तुतिकरण की पद्धति मूलतः विश्लेषणात्मक तथा विवेचनात्मक है। पत्र MLA (Modern Language Association) शोध पद्धति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। पत्र प्रस्तुति के लिए सम्बन्धित सहायक ग्रन्थों का सहारा लिया गया है।

'राम' दो अक्षरों से बना एक ऐसा शब्द (पर्याय) है, जिसके श्रवण मात्र से सुनने वाले के सम्मुख तथा अन्तःकरण में भगवान का आलम्बन रूप प्रकट हो उठता है। केवल भारतीय ही नहीं विश्व भर के लोगों के मानस पटल पर 'राम' ईश्वर के रूप में विराजमान हैं। स्मरणीय है कि महामानव महात्मा गाँधीजी को जब नाथूराम गोडसे ने गोली मारी थी, तब मृत्यु को समीप देख गाँधीजी के मुख से अन्तिम दो शब्द निकले, जो थे—**'हे राम!'** इससे यही साबित होता है कि भारतीय जनसमाज में 'राम' नाम का कितना महत्त्व है; साथ ही 'राम' ईश्वर के रूप में मान्य हैं।

वाल्मीकि कृत रामायण के नायक राम आदर्शवान तथा मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित हैं, जो लौकिक हैं। ठीक उसी प्रकार माधव कन्दलि कृत 'सप्तकाण्ड रामायण' में राम का चरित्र भी दो-एक जगह को छोड़कर लौकिक रूप में ही चित्रित हुआ है। कन्दलि के राम वाल्मीकि के राम की तुलना में ज़्यादा मानवीय हैं, ज़्यादा लौकिक हैं। यहाँ 'सप्तकाण्ड रामायण' में चित्रित 'राम' की विभिन्न चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करने के साथ ही तत्कालीन असमिया जनजीवन के प्रभाव को स्पष्ट रूप से दिखाने हेतु, यहाँ कुछ केन्द्रबिन्दुओं में उसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो निम्नलिखित हैं—

राम की चारित्रिक विशेषताएँ

सर्वगुण सम्पन्न राम—'सप्तकाण्ड रामायण' की कथानुसार राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं और राम की माता कौशल्या हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न राम के भाई हैं। आदि काण्ड (माधवदेव द्वारा रचित, जो वैष्णव मत से प्रभावित हैं) में असुरों के संहार हेतु तथा स्वयं विष्णु भगवान ने संसार में सुख-शान्ति बरकरार रखने के लिए अयोध्या के राजा दशरथ के घर पुत्र रूप में जन्म लिया। इसमें अलौकिकता है। किन्तु समाजशास्त्र के अनुसार विचार करने पर कह सकते हैं कि, असल में यह अलौकिक नहीं। क्योंकि तत्कालीन युग में श्रेणी-विभक्त समाज में समाजनेता ही राजा थे, राजा

को लोग देवता पुकारते थे। माधव कन्दलि के राम के चरित्र के बारे में स्वमत की व्याख्या करते हुए शशी शर्मा लिखते हैं—"राम अत्यन्त उदार, अति महान थे। वाल्मीकि रामायण की तरह कन्दलि के राम भी गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़चित्त, सत्-चरित्रवान, सभी प्राणियों के प्रति हितैषी, विद्वान, सभी विषयों में दक्ष, अद्वितीय, प्रियदर्शन, संयतचित्त, जितक्रोध, दीप्तिमान, असुयाशून्य और युद्ध में जिसके प्रताप से देवता भी काँपते हैं।" **(शर्मा, 1987 : 91)**

यूँ तो कन्दलि ने असमिया प्रान्तीय भाषा में ही कृति की रचना की है। किन्तु वे संस्कृत के भी महापण्डित थे। अतएव 'लंका काण्ड' के प्रारम्भ में कवि ने संस्कृत में 'राम' के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए जो चित्रण प्रस्तुत किया है, वह मनोग्राही है—

रामः लक्षणः पुर्वजः रघुवंशः सीतापतिः सुन्दरः।
काकुतस्मः करुणामयः मणनिधिः विद्याप्रियः धार्मिकः।।
राजेन्द्र सत्यसन्धः दशरथ तनयः श्यामलः शान्तमूर्तिः।
वन्दे लोकाभिरामः रघुकुल तिलकः राघवः रावणारिः।।

यहाँ कवि ने राम की वन्दना की है तथा प्रस्तुत श्लोक से राम के महात्म्य का बोध होता है। मूल रामायण में जिस प्रकार लंका काण्ड में वाल्मीकि ने राम को भगवान के रूप में चित्रित किया है, उसी प्रकार लंका काण्ड में कन्दलि ने भी राम-रावण के युद्ध के समय राम को 'ईश्वर' कहा है—

"ईश्वर समान कोन आछे त्रिजगतत।
तथापि करंत लीला मनुष्यर मते।।"

(शर्मा, 1987 : 80)

अतः इससे स्पष्ट होता है कि कन्दलि ने राम का सर्वगुण सम्पन्न तथा 'लंका काण्ड' में कई स्थलों पर अलौकिक रूप में चित्रण किया है।

मानवसुलभ आचरणों से युक्त राम—मूलतः कन्दलि ने राम को लौकिक रूप में ही चित्रित किया है। राम के साधारण मानव के रूप में कई पक्ष मिलते हैं। जिसे यहाँ निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है—

पुत्र के रूप में राम—राजा दशरथ के सर्वप्रिय तथा परम आज्ञाकारी पुत्र थे 'राम'। 'सप्तकाण्ड रामायण' में वर्णित कथानुसार—जब राजा दशरथ की कोई सन्तान नहीं हो रही थी, उसी दौरान एक दिन शिकार करते समय अज्ञानतावश राजा दशरथ के हाथों सिन्धुमुनि का वध हो जाता है। तब उनके अन्धे पिता अन्धमुनि दशरथ को श्राप देते हैं कि—"जिस प्रकार पुत्र शोक के कारण अन्धमुनि और उनकी पत्नी की मृत्यु हो रही है, उसी प्रकार राजा दशरथ की मृत्यु भी पुत्र शोक के कारण ही होगी।"

बाद में दशरथ ने मुनि वशिष्ठ के उपदेशानुसार पुत्र प्राप्ति हेतु ऋषि ऋष्यश्रृंग के हाथों यज्ञ सम्पन्न करवाया। फलस्वरूप राजा को अपनी तीनों रानियों से चार पुत्ररत्न प्राप्त हुए। राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। जिनमें पिता दशरथ राम को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। जब सभी दिशाओं में राम की कीर्ति और पराक्रम की गाथा फैलने लगी तब असुरों के संहार के लिए ऋषि विश्वामित्र राम को लेने अयोध्या आये। तब पिता दशरथ निरुपाय होकर भी प्रजाहित के लिए युवा राम को लक्ष्मण सहित जाने की अनुमति देते हैं। राम केवल अपने पिता के ही प्रिय थे ऐसा

नहीं था, वे अपनी माताओं के भी प्रिय थे। सौतेली होने के बावजूद भी कैकेयी राम को अत्यधिक प्रेम करती थीं। किन्तु मन्थरा के षड्यन्त्र के कारण कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। कवि की एक उक्ति यहाँ द्रष्टव्य है–

"गूणर सागर राम देखिलि तई किस।
अम्रत कुण्डत कुजी तई ढाल विष।।"

(शर्मा, 1987 : 66)

जब 'वर' के रूप में मतिभ्रष्ट कैकेयी राजा दशरथ से भरत को राजा और राम को 14 वर्ष का वनवास देने की बात कहती हैं, तब राजा का कातर रूप कुछ इस प्रकार व्यक्त हुआ है–

राजा बोले प्राणेश्वरी शुनियो मनत।
रामत तोमात परे प्रिय काछे कत।।
रामक तेजिया आन जत माग वर।
हृदय काटिया दिवो पुन्य निरन्तर।।

(शर्मा, 1987 : 66)

किन्तु कैकेयी के किसी भी प्रकार न मानने पर दशरथ को वर देना ही पड़ा। आदेशानुसार राम भी एक क्षत्रिय पुरुष की तरह अपने पिता के वचनों के पालन हेतु तत्क्षण अपने पिता दशरथ और माता कौशल्या को प्रणाम कर लक्ष्मण तथा पत्नी सीता सहित वनवास को निकले। राम के वनवास जाने के पश्चात् ही राजा दशरथ पुत्रशोक में मृत्यु को गले लगाते हैं। अतः पुत्र के रूप में 'राम' का चित्रण एक परम आज्ञाकारी तथा निष्ठावान पुत्र के रूप में हुआ है। भरत और अयोध्यावासियों के विनय करने पर भी राम अपने पिता दशरथ के वचनों के पालन हेतु अपने निर्णय पर अटल रहे।

संघर्षशील जीवन–कन्दलि ने एक साधारण मनुष्य की भाँति अनेकों संघर्ष राम के जीवन में भी चित्रित किये हैं। एक साधारण बालक की तरह ही आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने से लेकर, यौवनकाल में पिता के वचनों के पालन हेतु 14 वर्षों का वनवास काटने वाले राम का जीवन पूर्णतः संघर्षशील रहा है। युवराज घोषित होने से कुछ ही क्षण पूर्व वनवास का आदेश! एक तरफ़ अयोध्यावासी प्रजा की आशाएँ, दूसरी तरफ़ पिता के वचनों का पालन! कितना मानसिक संघर्ष!

'सप्तकाण्ड रामायण' के 'अरण्य काण्ड' में वर्णित कथानुसार वनवास के समय चित्रकूट से लेकर दण्डकारण्य में रहने तक राम, सीता तथा लक्ष्मण को सहित अनेक कष्टों और समस्याओं का सामना करना पड़ा। जीवन संग्राम के लिए खाने-पीने से लेकर सभी चीजों का स्वयं साधारण मनुष्य की भाँति इन्तज़ाम करते हुए कष्टों से गुज़रना पड़ा। रावण द्वारा सीता का अपहरण करने पर राम ने लौकिक रूप में ही सीता का अनुसन्धान किया है; जिनमें अनेकों प्राकृतिक विपदाओं को राम ने पार किया है। बाद में हनुमान, सुग्रीव सहित वानरों की सहायता से समुद्र पार कर रावण तथा लंकावासियों के साथ युद्ध कर रावण को परास्त किया और सीता का उद्धार किया। सीता का उद्धार करने के बाद भी राम के संघर्षमय जीवन का अन्त न हुआ। अयोध्या लौटने के बाद राम को राजसिंहासन मिलने पर राजसुख तो मिला, परन्तु सीता के चरित्र को लेकर प्रजा में बातें होने लगीं। प्रजागणों में होने वाली बातों का उदाहरण इस प्रकार है–

"सीताक निलेक हरि रावण राक्षस।
एकेश्वरी नारी सीता आछिल लंकात।
किमते मयलंत तात राघव संजात।।"

(शर्मा, 1987 : 86)

प्रजा के बीच होने वाली इस चर्चा के कारण सीता को दोबारा वनवास देकर राम ने अनुचित कार्य किया। साधारण मानव की तरह ही राम के चरित्र में गुणों के साथ दोष भी मिलते हैं। भगवान तो गुण-दोषों, पाप-पुण्यों से पड़े होते हैं। अतः कन्दलि कृत 'सप्तकाण्ड रामायण' के राम भी साधारण मानव के रूप में ही चित्रित हुआ है, भगवान के रूप में नहीं।

असुरों के संहारक राम—कवि कन्दलि ने अपनी कृति में राम का असुरों के संहारकर्ता तथा बुराई पर अच्छाई की जीत के रूप में चित्रण किया है। असुरों के अत्याचार से बचाने के लिए राम ऋषि विश्वामित्र के साथ सिद्धाश्रम पधारे और वहीं राक्षसी ताड़का का वध किया। वनवास में सीता के अपहरणकर्ता तथा संसारवासियों को रावण के अत्याचार से बचाने के लिए राम ने साधारण पराक्रमी युवक की तरह ही रावण के साथ युद्ध किया और रावण के साथ अन्य राक्षसों का भी वध कर राक्षसी तथा बुरी प्रवृत्तियों का विनाश किया। 'सप्तकाण्ड रामायण' के 'लंका काण्ड' में राम और रावण के युद्ध का वर्णन है, जो अत्यन्त प्रभावकारी है। जिसमें 'राम' के चरित्र में कन्दलि ने राम का महात्म्य और कीर्ति गाथा कही है।

परिस्थिति के दास राम—परिस्थिति के आगे दास, साधारण मनुष्य ही होते हैं, ईश्वर या भगवान नहीं। कन्दलि की कृति में चित्रित राम परिस्थिति के आगे दास राजा बनने के बाद बने हैं। सीता सती थीं, यह बात 'राम' भी निश्चित रूप में जानते थे। किन्तु प्रजा तथा लोकविवाद के कारण सीता को अग्नि-परीक्षा देने के लिए विवश किया। सीता के निष्कलंक होने पर भी राम ने औरों की बातों के लिए सीता को गर्भवती अवस्था में वनवास दिया जो सामान्य मानवसुलभ आचरण से युक्त है। वाल्मीकि के आश्रम में सीता के दो पुत्र होने के बाद जब रामायण गीत गाते लव और कुश को राम ने अपने पुत्ररूप में पहचान लिया, तब उन्हें स्वीकारने के साथ सीता को भी राजमहल लाने का आदेश दिया। तब जो लोग सीता को लाने गये उनके सम्मुख सीता ने राम के प्रति प्रतिवाद व्यक्त किया, जो 'सप्तकाण्ड रामायण' के उत्तर काण्ड में इस प्रकार वर्णित है—

किसक आमाक आउर करा उतपात।
पासरि आछिलो दुनाई अग्निजाल गात।।
आरु अयोध्यात भुंजिवो हो राजसुख।
देखिको दुनाई आउर राघवर मुख।।
बोलाइबो घरिणी आरु राघवर घरे।
नाई तेवे नारी निलाजिनी मोत परे।।

(शर्मा, 187 : 86)

अतः जब राम द्वारा सीता को अपनी पवित्रता साबित करने के लिए अग्नि-परीक्षा देने की आज्ञा राम दी गयी तब सीता ने अपने-आपको धरती माता की गोद में समा लिया—

तुमि मोर माव जन्म लभिलो तोमाते।।
आउर जेन नुशुनो रामर तुति नाउ।
फाट दिया वसुमती पाताले लुकाउ।।

(शर्मा, 1987 : 87)

केवल सीता के साथ ही राम ने ऐसा किया, ऐसा नहीं है। परिस्थिति के आगे विवश राम ने अन्त में लक्ष्मण का भी परित्याग कर दिया तथा स्वयं भी सरयू नदी में देहत्याग कर आत्माहुति दे दी। अतः कन्दलि के राम सामान्य मानव की भाँति परिस्थिति के आगे विवश रूप में चित्रित हुए हैं।

सप्तकाण्ड रामायण में असमिया जनजीवन तथा समाज का प्रभाव–संस्कृत में वाल्मीकि रामायण रचित होने के लगभग दो हज़ार साल बाद माधव कन्दलि ने 'सप्तकाण्ड रामायण' की रचना की। 'लंभा परिहरि सरोधृते' कहकर अनुवाद करने वाले कवि ने अपनी कृति में असमिया समाज तथा जनजीवन की छवि का चित्रण प्रसंगानुसार कई जगहों पर किया है, जो अत्यन्त मनोरम रूप में चित्रित हुआ है।

कन्दलि की रामायण में भारतीय समाज में प्रचलित जातिभेद प्रथा के साथ असमिया वर्णाश्रम धर्म के रूप का चित्रण हुआ है। उदाहरणस्वरूप–

"क्षत्रिय वेश्यगण कायस्थ सज्जन, नट भाट तेली तास्ती।
ठठारी सोनारी कमार सेखांरी, भरतर लगे जांति।
वनिया चमार कमार सुतार, धोवा आरु कुम्भकार।
ईश्वर प्रमुख्य चलिल जतेक, आदिअन्त नाहि तार।"

(वर्मण, 1997 : 10)

राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, कैकेयी, मन्थरा आदि सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण में कवि कन्दलि ने असमिया लोकजीवन के भिन्न चरित्रों को मुखरित किया है। हनुमान, सुग्रीव आदि के माध्यम से तत्कालीन दास समाज की छवि प्रस्तुत की है। कन्दलि ने अपनी कृति में असमिया नारी की स्थिति को भी दर्शाया है। नारी के सम्मान के साथ अवहेलना तथा दमन करने की प्रवृत्तियाँ भी प्रस्तुत कृति में चित्रित हुई हैं। उल्लेख्य है सीता का कृषि संस्कृति के रूप में राम द्वारा उद्धार दिखाकर कवि ने असमिया कृषि संस्कृति के उद्धार की बात कही है। कवि असमिया समाज में व्यवहृत वाद्य-गीत, प्राकृतिक उपकरणों, फल-फूल, आहार, आभूषण, खेल-कूद आदि चीजों का प्रसंगानुकूल चित्रण करना नहीं भूले। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं–

क) लंका विजय के बाद सीता को राम के पास लाने का वर्णन–

"हातर बेतरी गावत कांचनी माथात उलोमा पाग।"

(शर्मा, 1987 : 113)

ख) असमिया नृत्य-गीत, वाद्य-यन्त्र का चित्रण–

"बीरढाक ढोल बाजे, तबल डगर दण्डि शवद सुनियो कोलाहल।
भेमच क्षेमच चय, झझार रेमचि बाजे रामताल आरु करताल।।
टोकारी केंदरा रूद्र बिपांचि दोतोरा बाजे बीणा बांशी दोशरी महरी।
जिजिरि काहालि शिंगा भेरी डाके निरन्तर, स्वर्ग भूवन को गेला पुरि।।"

(शर्मा, 1987 : 114)

ग) लंका के रम्य स्थान के वर्णन में असम की प्राकृतिक छवि का मनमोहक रूप–

"गुंजरित शवदे भ्रमरा मधुपान। पद्मिनी दिघी जलाशय रम्य थान।।
सरल पियाल खर निखर खर्जुर। शाल ताल तमाल गमारि बीजपुर।।

(शर्मा, 1987 : 116)

माधव कन्दलि का काव्य-सौष्ठव और प्रतिभा–असम की लोकभाषा का काव्यभाषा के रूप में प्रतिस्थापन करने में माधव कन्दलि का योगदान अतुलनीय है। भाषा की दृष्टि से सप्तकाण्ड रामायण का मूल आधार तत्कालीन लोकजीवन की भाषा ही है। तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्दों के यथोचित चयन करने के साथ लोक प्रचलित मुहावरे, लोकोक्ति, शब्द-संभार, छन्द, अलंकार, लोक

गीत आदि व्यावहारिक जीवन से जुटाकर सार्थक रूप में उनका प्रयोग करके कन्दलि ने अपनी रचना को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वही उनकी विशिष्ट प्रतिभा तथा सूक्ष्म निरीक्षणता का परिचायक है। असमिया भाषा की सौष्ठव वृद्धि के लिए कवि ने अरबी, फ़ारसी, हिन्दी, बांग्ला आदि भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप–

दुकान बजार हाट करे थाने थान।

यहाँ 'दुकान' हिन्दी शब्द, 'बजार' फ़ारसी शब्द और 'हाट' एक तद्भव शब्द है।

छन्द वर्णन में कवि ने पयार, दुलरी, झुमुरी, छवि आदि का प्रयोग ज़्यादातर किया है। रावण द्वारा सीता के अपहरण के समय की स्थिति का सुग्रीव द्वारा राम के सम्मुख वर्णन 'झुमुरी' छन्द में अत्यन्त सुन्दर रूप में हुआ है–

आकाशर पाथे जांति। दशदिशे निहालंति।।
भये अति चमकंति। क्रन्दन करिया जांति।।
लक्ष्मणक सुमरंति। राम राम उच्चरंति।।

(हाजरिका, 2003 : 439)

भिन्न अलंकारों का प्रयोग कर कवि कन्दलि ने अपनी पारदर्शिता का परिचय भी दिया है। शब्दालंकारों में उन्होंने 'अनुप्रास' के प्रयोग को महत्त्व दिया और अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, निदर्शना, उत्प्रेक्षा, विषम, व्यंजना आदि का प्रयोग मनोरम रूप में किया है। उदाहरणस्वरूप–वनवास काटकर राम के प्रत्यागमन की ख़बर सुनकर अयोध्या में की जा रही साज-सज्जा का वर्णन 'लंका काण्ड' में वर्णित है, यमक तथा अनुप्रास अलंकारों के प्रयोग से यह अत्यधिक रोचक हो गयी है–

सांजि भांजि पदुलि पदुलि रुईला कल। रत्नदीप दिला सुवर्णर घटे जल।।
लवंग मालती माला सुगंधक कहे। सुरभि शीतल अनुकूल वायु वहे।।

(हाजरिका, 2003 : 441)

'खरलगा धान जेन वरिषण जले', 'विचिधान बुइलो जेन उखरा भुमित', 'अलर पानीर माछ ददरा-ददरि', 'प्रथम घरिरा जेन अरण्यर हाती', 'लंकापुरीखन कांस परि जिन गईल' आदि घरेलू उपमाओं तथा विभिन्न मुहावरे-लोकोक्तियों का प्रयोग कर कन्दलि ने अपनी काव्य-सुषमा की वृद्धि के साथ असमिया जनजीवन की छवि को भी दर्शाया है।

असमिया काव्य भाषा तथा शैली के विशिष्ट प्रणेता माधव कन्दलि का स्थान असमिया साहित्य जगत् में अन्यतम है। उनका अनुकरण करके परवर्ती काल में शंकरदेव, माधवदेव, अनन्त कन्दलि, दुर्गावर कायस्थ, रघुनाथ महन्त, शिष्ट भट्टाचार्य आदि कवियों ने रामायणी साहित्य को आगे बढ़ाया। कन्दलि द्वारा 'सप्तकाण्ड रामायण' की रचना के लगभग डेढ़ सौ साल बाद हिन्दी, बंगाली, उड़िया आदि भाषाओं में रामायण की रचना हुई। अतः माधव कन्दलि की प्रतिभा तथा काव्य-सौष्ठव का अन्यतम महत्त्व है।

उपलब्धियाँ

- 'सप्तकाण्ड रामायण' असमिया साहित्य की सर्वाधिक पठित-चर्चित एवं अनुपम उपलब्धि रही है।
- माधव कन्दलि रचित 'सप्तकाण्ड रामायण' वाल्मीकि कृत रामायण के सारांश भाव का असमिया रूपान्तर है; किन्तु इसकी सरंचना में कवि की मौलिकता ने कृति को और अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

- जनमानस के अन्तर्मन में प्रतिष्ठित राम प्रस्तुत कृति में लौकिक रूप में ही चित्रित हुए हैं, जो साधारण मानवसुलभ आचरणों से युक्त हैं।
- 'सप्तकाण्ड रामायण' में राम के चरित्रांकन में दो-एक स्थलों पर अलौकिकता का समावेश हुआ है, जो माधवदेव तथा शंकरदेव के वैष्णव मत के प्रभाव के कारण ही है।
- 14वीं सदी के असमिया समाज, जनजीवन की छवि, शिल्प, धर्म, विश्वास, खान-पान, जाति, व्यवसाय, राजनीतिक व्यवस्था, प्रकृति के रमणीय रूप, फल-फूल, पशु-पक्षी, खेल-कूद आदि सप्तकाण्ड रामायण के प्रसंगों में मनोग्राही रूप में द्रष्टव्य हैं।

निष्कर्ष

अतः प्रस्तुत अध्ययन-विवेचन करने के पश्चात निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्राक्शंकरी युग के कवि माधव कन्दलि ने सप्तकाण्ड रामायण में चित्रित राम के चरित्र में लौकिकता के साथ अन्यान्य पक्षों का भी चित्रण कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। असमिया समाज तथा जनजीवन की भिन्न दिशाओं का चित्रण कर कवि ने तत्कालीन युगचित्रण भी किया है। इन दृष्टिकोणों से प्रस्तुत विषय-वस्तु का अध्ययन-विश्लेषण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने के साथ प्रासंगिक भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. दत्त बरुवा, हरिनारायण, संपा. सप्तकाण्ड रामायण, दत्त बरुवा पब्लिशिंग प्रा. लि. गुवाहाटी, 1952
2. हाजरिका विश्वेश्वर, संपा. असमिया साहित्यर वुरंजी(प्रथम खण्ड), आनन्दराम बरुवा, भाषा-कला-संस्कृति संस्था, गुवाहाटी, 2003
3. वर्मण शिवनाथ, असमिया साहित्यर वुरंजी (द्वितीय खण्ड), आनन्दराम बरुवा, भाषा-कला-संस्कृति संस्था, गुवाहाटी, 1997
4. शर्मा, शशी, माधव कन्दलिर रामायण, जर्नल एम्पोरियम, नलबारी, 1987
5. शर्मा सत्येन्द्रनाथ, असमिया समीक्षात्मक इतिबृत्त, सौमार प्रकाशन, गुवाहाटी, 2011

श्रीमन्त शंकरदेव की रचनाओं में राम

(उत्तर काण्ड रामायण और राम विजय नाटक के विशेष सन्दर्भ में)

चयनिका दत्त/परिस्मिता काकति

भक्ति आन्दोलन के समय में रचित असमिया साहित्य-संस्कृति के पूर्ण विकास और बहुलता के क्षेत्र में शंकरदेव प्रधान व्यक्ति थे। कीर्तन-घोषा, हरिश्चन्द्र उपाख्यान, बालीछलन, रुक्मिणीहरण काव्य, अजामिल उपाख्यान आदि को लेकर बहुत सारा काव्यशास्त्र शंकरदेव का अपूर्व अवदान है। गुणमाला, भक्तिप्रदीप, अनादिपातन, निमि-नवसिद्ध संवाद इत्यादि उनकी भक्तिमूलक रचनाएँ हैं। पुरानी असमिया और मैथिली भाषा के मिश्रित रूप में सृष्ट ब्रजावली भाषा में उन्होंने पत्नी प्रसाद, कालियदमन, केलिगोपाल, रुक्मिणीहरण, पारिजात हरण और राम विजय नाम के छह अंकीया नाटों की भी रचना की थी। शंकरदेव के साहित्य में तीन तरह के भटिमा भी पाये जाते हैं—देव भटिमा (भगवान के स्तुतिपाठ), नाट भटिमा (नाटकों में व्यवहृत) और राज भटिमा (राजा नरनारायण का प्रशंसासूचित)। उनके द्वारा रचित 34 बरगीत भी पाये जाते हैं। अनुवाद साहित्य में भी शंकरदेव का महत्त्वपूर्ण अवदान था। उन्होंने संस्कृत भाषा में रचित भागवत का प्रथम, द्वितीय, षष्ठम, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश और द्वादश स्कन्द असमिया भाषा में अनूदित किया था। शंकरदेव का एक और अनुवाद साहित्य है उत्तर काण्ड रामायण। प्राक्शंकरी युग के कवि माधव कन्दलि द्वारा रचित रामायण में सिर्फ़ पाँच काण्ड ही पाये जाते हैं। इसलिए शंकरदेव ने माधवदेव को आदि काण्ड का अनुवाद करने का दायित्व सौंपा और ख़ुद उत्तर काण्ड का अनुवाद करके कन्दलि की अधूरी पाँच काण्ड रामायण को सप्तकाण्ड में सम्पूर्ण किया।

शंकरदेव की सभी रचनाओं में भक्ति रस का प्राधान्य है। हालाँकि उनकी रचनाओं में कृष्ण से राम का प्रभाव थोड़ा कम है। शंकरदेव रचित 'राम विजय' नाटक में युवक राम का चित्रण दिखाया गया है। यद्यपि वह स्वभावगत गुरु-गम्भीर हैं, तथापि वीरत्व प्रकाश के क्षेत्रों में वह कभी पीछे नहीं थे। उन्होंने विश्वामित्र की आज्ञानुसार मारीच और सुबाहु का वध करके और सीता के स्वयंवर में अन्य राजाओं को हराकर वीरत्व का प्रमाण दिया था। राम के चरित्र को आदि से लेकर अन्त तक धीरोदात्त नायक के आचरण में प्रस्फुटित हुआ दिखाया जाता है। विश्वामित्र से सीता के रूप के बारे में सुनने के बाद भी राम सीता के प्यार में व्याकुल न होकर धैर्य से स्वयंवर में जीतकर सीता को विश्वास दिलाते हैं। इस क्षेत्र में राम को एक सफल प्रकृत प्रेमी कहा जा सकता है। इसी तरह से उत्तर काण्ड में राम प्रजाहितैषी रूप में दिखाई देते हैं। वह देश और प्रजा के हित के लिए ख़ुद को इस तरह से सौंप देते हैं कि उनका प्रेम भी इस क्षेत्र में हार मानने के लिए तैयार हो जाता है। यद्यपि जानकी के बिना राम का जीवन धारण व्यर्थ है तथापि एक प्रजाहितैषी राजा होने के नाते

वह जानकी को गर्भावस्था में वनवास देने जैसा कठोर क़दम लेने से भी पीछे नहीं हटते। इस क्षेत्र में उनका प्रेम कहीं-न-कहीं विफल होता है। किन्तु उनकी धैर्य शक्ति इतनी तेज थी कि अपनी प्राणों से भी प्रिय सीता को निर्वासन देने के बाद भी अत्यन्त सुचारू रूप से राज-काज में ख़ुद को नियोजित किया था।

उत्तर काण्ड रामायण में राम

प्राक्‌शंकरी युग के कवि माधव कन्दलि ने संस्कृत में लिखी वाल्मीकि रामायण का असमिया भाषा में अनुवाद किया था। लेकिन माधव कन्दलि द्वारा अनूदित रामायण में सात काण्डों में से सिर्फ़ पाँच काण्ड ही पाये जाते हैं। वो हैं—अयोध्या काण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड और लंका काण्ड। यह बात जानकर शंकरदेव ने उनके प्रिय शिष्य माधवदेव को आदि काण्ड का अनुवाद करने के लिए कहा और ख़ुद उत्तर काण्ड रामायण का अनुवाद किया।

शंकरदेव द्वारा अनूदित रामायण के उत्तर काण्ड में राम के जीवन के अन्तिम भाग का वर्णन किया हुआ है। वानर सेना के सहयोग से सीता का लंका से उद्धार करने के बाद राम ने सीता की पवित्रता की अग्नि-परीक्षा ली। उस अग्नि-परीक्षा में सीता सफल हुईं और सभी लोग ख़ुशी-ख़ुशी अयोध्या लौट आये। राम का राज्याभिषेक होने के बाद उनको अयोध्या का राजा घोषित कर दिया गया। राम ने राज्य चलाने के साथ एक सुखी पारिवारिक जीवन की भी शुरुआत की। राज्य के सभी लोग बहुत ख़ुश थे। सीता गर्भवती हुईं और राजपरिवार में रौनक छा गयी। उसी समय राम को सुनने को मिला कि सीता की पवित्रता पर प्रजा के मन में सन्देह है। तब राम ने सीता को त्यागने का निर्णय लिया। उन्होंने सीता को वन भेजने का दायित्व लक्ष्मण के ऊपर सौंप दिया। यहाँ सीता के प्रति राम का प्रेम राजा के धर्म से कमजोर पड़ गया। अग्नि-परीक्षा में सीता की पवित्रता प्रमाणित होने के बाद भी राम प्रजा के सामने ये साबित नहीं कर पाये कि सीता पवित्र हैं। राम ने अपने प्रेम से बढ़कर प्रजा के हित के लिए ही सोचा। वह चाहते थे कि प्रजा के मन में दुख, क्षोभ, अशान्ति अथवा सन्देह न हो। इसलिए उन्होंने सीता को गर्भावस्था में ही वन में छोड़ दिया। एक प्रजाहितैषी राजा होने के नाते राम अपना पति धर्म निभाने में असफल हो गये।

राम की आज्ञानुसार लक्ष्मण सीता को वन में छोड़कर आ गये। तब ऋषि वाल्मीकि सीता को अपने आश्रम ले गये। आश्रम में सीता ने लव और कुश नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया। वाल्मीकि ने दोनों को सभी शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ उनके पिता राम के बारे में भी बताया। वाल्मीकि का उपदेश मानकर ही दोनों भाई राम के गीत गाकर विभिन्न राज्यों में भटकने लगे। दूसरी तरफ़ अयोध्या में राम ने सीता के बिना जीवनयापन करने की आदत डाल ली, लेकिन उनके मन में सीता के लिए प्रेम भाव कम नहीं हुआ था। राम सीता के आजन्म प्रेमी थे। धैर्यशील राम ने अपने दुख को भूलकर राज्य शासन में मनोनिवेश किया तथा प्रजा की सभी तरह की उन्नति और देश के सर्वांगीण विकास में ख़ुद को नियोजित किया। अयोध्या में किसी तरह की कोई कमी नहीं थी। सभी के मंगल के लिए राम ने गोमती नदी के किनारे 'अश्वमेध यज्ञ' का भी आयोजन किया। एक तरह से राम ख़ुद को एक प्रजावत्सल राजा के रूप में स्थापित करने में सफल हुए।

राम की गुण-गरिमा को गीत की तरह गा-गाकर भटकते हुए लव-कुश के बारे में राम को भी सुनने को मिला। राम ने उन दोनों को राजसभा में बुलाया। लव-कुश ने राम के सामने गीत के ज़रिये उनके ही जीवन का वर्णन किया। राम बहुत प्रसन्न हुए। जब राम को उन दोनों बालकों

का परिचय मिला तो ख़ुद को उन दोनों बच्चों का पिता जानकर राम को बहुत ख़ुशी मिली। वह सीता के बारे में जानने के लिए उत्सुक हुए। लव-कुश के मुँह से ही राम को सीता के बारे में सब जानकारी प्राप्त हुई। सीता को निर्वासन देने के बाद सीता के जीवन की कहानियों को जानकर राम को बहुत दुख हुआ। उन्होंने फिर से सीता से मिलना चाहा। सीता ने राम के साथ जिन्दगी गुज़ारने का सपना कहीं खो दिया था। उन्होंने फिर से अयोध्या में राम के साथ ज़िन्दगी बिताना अस्वीकार कर दिया और सीता ने अपनी माता वसुमती के छाती में ख़ुद के लिए एक छोटी-सी जगह ढूँढ़ी। माता वसुमती ने सीता की प्रार्थना स्वीकार की और सीता पाताल में प्रवेश कर गयीं। सीता के पाताल प्रवेश के बाद राम को भी जीवन जीने की कोई आकांक्षा नहीं रही। उनमें जीवन के प्रति विराग भाव का जन्म हुआ। राम ने राज्य शासन से मुक्त होना चाहा। इसलिए उन्होंने भरत के पुत्र को अयोध्या का राजभार सौंप दिया और ख़ुद की इच्छा से ही स्वर्ग गमन किया। यहीं पर रामायण की समाप्ति हुई।

रामायण के इस काण्ड में शंकरदेव ने राम को एक प्रबल प्रजाहितैषी राजा के रूप में दिखाया है। यद्यपि सीता के बिना राम का जीवन अधूरा था, राम को मानसिक शान्ति नहीं थी, तथापि वह एक अच्छे राजा बनकर राज्य शासन में खुद को नियोजित करने में सफल हुए। उन्होंने कभी भी अपने व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन को एक साथ नहीं जोड़ा। वह राज्य शासन में इतना कुशल थे कि लोग उनकी उपमा देते थे। जैसे—'उन लोगों का तो रामराज्य है', 'वह राम भी नहीं रहे, अयोध्या भी नहीं रही'।

राम विजय नाटक में राम

राम विजय नाटक की विषय-वस्तु बालकाण्ड रामायण अर्थात् आदि काण्ड-रामायण से ली हुई है। इस नाटक में शंकरदेव ने युवा राम का चित्रण किया है। ऋषि विश्वामित्र के द्वारा सिद्धाश्रम में आयोजित किये हुए यज्ञ में दो राक्षसों मारीच और सुबाहु ने बहुत अनर्थ किया था। इसलिए उन दोनों राक्षसों का वध करने के लिए विश्वामित्र ने राजा दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँगा क्योंकि उन्हें दोनों भ्राताओं के वीरत्व में विश्वास था। पहले दशरथ ने कम उम्र के राम-लक्ष्मण को राक्षस के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजने से इनकार किया था। किन्तु ऋषि के अनुरोध की उपेक्षा करने की हिम्मत भी उनमें नहीं थी। यद्यपि उनके मन में भय था, तथापि उन्होंने दोनों पुत्रों को ऋषि को सौंप दिया। यज्ञस्थल के रास्ते में ताड़का नाम की एक राक्षसी ने बाधा डाली। तब राम ने उस राक्षसी का वध किया। यज्ञ आरम्भ हुआ और मारीच-सुबाहु ने फिर से अशान्ति का उद्‌भव किया। विश्वामित्र की आज्ञानुसार राम और लक्ष्मण ने मारीच-सुबाहु का वध करके वीरत्व का परिचय दिया। नाटक के इस अंश में शंकरदेव ने युवा राम के वीरत्व के साथ-साथ उनके साहस को भी दिखाया है।

यज्ञ की सफलतापूर्वक समाप्ति के बाद विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को जनकनन्दिनी सीता के स्वयंवर में ले गये। स्वयंवर में हरधनु में गुण लगाने की शर्त थी। जो यह शर्त पूरी करेगा, उसको ही सीता पति के रूप में स्वीकार करेगी। सीता ने पूर्व जन्म में ही राम को पति के रूप में स्वीकार कर लिया था और यह बात विश्वामित्र को ज्ञात थी। इसलिए स्वयंवर में जाने से पहले ही उन्होंने राम के आगे सीता के रूप-गुण का वर्णन किया। विश्वामित्र से सीता के बारे में सुनकर राम आतुर नहीं हुए। वह थोड़ा चिन्तित हुए और विश्वामित्र से कहा—

"हे महामुनिराज, वह हरधनु बज्र से भी कठिन है, उसमें गुण लगाने की योग्यता मुझमें कहाँ है? किन्तु आपकी आज्ञा का पालन करना है ऋषिराज, इसलिए जाना तो पड़ेगा ही।"[1]

शंकरदेव ने इस अंश में राम के विनयी स्वभाव को दिखाया है। विनयी राम का मनोबल भी दृढ़ था। बहुत सारे राजा सीता को पाना चाहते थे। लेकिन कोई भी स्वयंवर की शर्त को पूरी करने में सफल नहीं हुआ। सीता राम को लेकर चिन्तित थीं तभी राम ने सीता को विश्वास दिलाकर कहा—

"हे प्राणप्रिये! तुम किससे डरती हो? वे राजा हमारे सामने ऐसे हैं? जैसे सिंह के आगे बाल हरिण जो हमारे तीरों के प्रहार से अभी भाग जायेगा। तुम आज कौतुक से देखो।"[2]

नाटक के इस अंश में राम के धीरोदात्त और प्रेमी गुण को प्रस्फुटित होते देखा जाता है। विवाह सम्पन्न होने के बाद अपने परिवार सहित जब राम अयोध्या लौटते हैं, तब रास्ते में परशुराम उनके गुरु का धनु (हरधनु) तोड़ने के कारण राम का विनाश करने के लिए उद्यत होते हैं। लेकिन राम परशुराम से भी बड़े वीर थे। जब वह परशुराम की तरफ़ तीर चलाने के लिए तैयार होते हैं तब परशुराम को ज्ञान होता है और वे राम के पाँव में गिर पड़ते हैं। नाटक के इस अंश में शंकरदेव ने राम के पराक्रम और क्षमाशीलता के गुण को बड़े अच्छे से दिखाया है। परशुराम के अनुरोध पर राम ने उनका वध नहीं किया, लेकिन एक बार तूणीर से निकला हुआ तीर रोका नहीं जाता इसलिए राम ने परशुराम को प्राण से न मारकर उनका स्वर्ग पथ काट दिया।

नाटक में युवा राम के गुरु-गम्भीर व्यक्तित्व के साथ-साथ क्षमाशील, धैर्यवान और नम्र भाव का भी प्रतिफलन हुआ देखा जाता है।

शंकरदेव के अंकीया नाटों में राम और कृष्ण की चारित्रिक तुलना

शंकरदेव द्वारा रचित छह अंकीया नाट हैं। इनमें से राम विजय के अलावा बाक़ी सब नाटों के आधार कृष्ण हैं। सिर्फ़ राम विजय में ही राम की कहानी पायी जाती है। राम विजय नाटक की कहानी के साथ रुक्मिणी हरण नाटक की कहानी की भी थोड़ी बहुत सादृश्यता है। कहानियों की अग्रगति, चरित्र-चित्रण और संलाप—सभी क्षेत्रों में दोनों नाटकों का सादृश्य है। इनमें से पहला है प्रेमी-प्रेमिका के मिलन में मध्यस्थ का प्रभाव। रुक्मिणी हरण में कुण्डिल नगर के सुरभि नाम के एक भिक्षु ने कृष्ण के आगे रुक्मिणी के रूप-गुण का वर्णन किया था। इसी तरह से राम विजय में यह कार्य विश्वामित्र ने किया है। सीता की पूर्वजन्म में ही राम को पति रूप में वरण करने की प्रबल इच्छा को जानकर ऋषि विश्वामित्र मारीच-सुबाहु के वध के बाद राम-लक्ष्मण को सीता के स्वयंवर में ले जाना चाहते थे और इसलिए राम को सीता की तरफ़ आकर्षित करने के लिए उन्होंने राम के आगे सीता के रूप-गुण का वर्णन किया। तात्पर्य यह है कि दोनों नाटकों के नायक कृष्ण और राम के बीच काफ़ी अन्तर दिखायी देता है। कृष्ण सुरभि से रुक्मिणी की रमणीयता के बारे में सुनकर रुक्मिणी के प्यार में पड़ गये, उनकी मानसिक अस्थिरता बढ़ गयी और वे रुक्मिणी को अपनी पत्नी के रूप में पाने की कामना करने लगे। लेकिन राम कुछ अलग थे। ऋषि विश्वामित्र से सीता के रूप-लावण्य के बारे में सुनकर भी राम अस्थिर नहीं हुए। वह धैर्य और विनय भाव से ऋषि के आदेश का पालन करने के लिए तैयार हुए।

रुक्मिणी हरण नाटक में कृष्ण रुक्मिणी को स्वयंवर से भगाकर अपने रथ में ले जाते हैं। रथ वायु के वेग से मथुरा की ओर बढ़ चलता है। लेकिन राम विजय में राम प्रबल पराक्रम से हरधनु को उठाते है और उसमें गुण लगाने का प्रयत्न करते वक़्त धनु टूट जाता है। राम ने सीता के स्वयंवर

की शर्त जीतकर ही सीता से वरमाला ग्रहण की। इस अंश में कृष्ण और राम के बीच थोड़ा बहुत अन्तर देखा जाता है। कृष्ण चंचल और बुद्धिमान थे, जबकि राम थे धैर्यवान, दृढ़ और शक्तिशाली।

रुक्मिणी को मथुरा ले जाने के समय रुक्मिणी के भ्राता रुक्मी कुमार ने कृष्ण और रुक्मिणी को रोकने के कोशिश की। रुक्मी कुमार और अन्य राजाओं के साथ कृष्ण का युद्ध हुआ। ऐसे ही राम विजय में भी सीता के स्वयंवर के बाद सपरिवार अयोध्या लौटते वक़्त परशुराम ने रास्ते में राम को ललकारा। राम और परशुराम के बीच युद्ध हुआ। दोनों नाटकों के इन अंशों में दोनों नायकों की क्षमाशीलता और पराक्रम दिखाई देता है। रुक्मिणी हरण नाटक के युद्ध में कृष्ण ने रुक्मी कुमार को पराजित करके अपने वीरत्व का परिचय दिया। रुक्मिणी के अनुरोध पर कृष्ण ने रुक्मी कुमार को जान से नहीं मारा, बल्कि रुक्मी कुमार का मुण्डन करके मुँह में चूना लगाकर छोड़ दिया। इसी तरह राम विजय नाट में भी युद्ध के अन्त में राम ने परशुराम को मारने के लिए तीर निकाल लिया था, लेकिन बाद में परशुराम के अनुरोध पर उन्होंने परशुराम को क्षमा कर दिया और उस तीर से केवल परशुराम का स्वर्ग पथ छीन लिया। इस तरह से देखा जाये तो पराक्रमी तथा वीर राम और कृष्ण दोनों उदार स्वभाव के थे।

असमिया कला, साहित्य, संस्कृति में शंकरदेव के राम

असमिया साहित्य-संस्कृति में शंकरदेव का अभूतपूर्व अवदान है। असमिया संस्कृति को शंकरदेव ने ही एक साथ जोड़ा है। उन्होंने लोगों को इकट्ठा करने के लिए नामघर स्थापित किया, नाम-प्रसंग के साथ-साथ अंकीया नाटों और भाउनाओं का भी प्रचलन किया। भागवत का असमिया में अनुवाद करके लोगों के बीच धर्म और शास्त्रों का ज्ञान बाँटने की कोशिश की। शंकरदेव की सभी रचनाओं में भक्ति रस का प्राधान्य है। उन्होंने मनोरंजन के साथ-साथ पौराणिक कहानियों को साधारण लोगों के बीच फैलाने के लिए नाटकों का प्रचलन किया। नामघरों में ब्रजावली भाषा में रचित अंकीया नाटों का प्रदर्शन किया और लोगों ने उनकी इस सृष्टि को बहुत आन्तरिकता से अपनाया। अभी भी असमिया समाज में शंकरदेव की रचनाओं को भक्ति भाव से ही लिया जाता है। कुछ नामघरों में वार्षिक नाम-प्रसंग के साथ भाउना का भी आयोजन किया जाता है। किसी के घर में कोई विघ्न होने पर जब गृहस्थ किसी ज्योतिषी के पास सलाह ढूँढ़ने जाते हैं, तब कभी-कभी ज्योतिषी अंकीया भाउना का परिवेशन करने की सलाह देते हैं। ऐसे ही राम को असमिया समाज में भगवान के रूप में माना जाता है। शंकरदेव ने राम को आधार बनाकर बरगीत की भी रचना की है। जैसे—'मन मेरो राम चरणहि लागु', 'शुन शुन रे सुर', 'बोलहु राम नामासे मुकुति निदाना', 'पामरु मन राम चरणे चित्त देहु' इत्यादि। 'मन मेरो राम चरणहि लागु' शंकरदेव के द्वारा रचित पहला बरगीत है। राम और कृष्ण के जीवन चरित का वर्णन किया हुआ बरगीत असमिया संस्कृति का ध्रुपदी संगीत है। शुभ अवसर पर इन बरगीतों का परिवेशन किया जाता है। भक्तिमूलक गीत होने के कारण बरगीत का बैठकर, असमिया परम्परागत वेशभूषा पहनकर, कन्धे पर गामोछा लेकर खोल और ताल की संगत से भक्तिभाव के साथ परिवेशन किया जाता है।

नाम-प्रसंग में कृष्ण की तुलना में राम का स्थान थोड़ा कम देखने को मिलता है। कीर्तन-घोषा में भी श्यामन्त मणि हरण में भगवान राम के बारे में सिर्फ़ उल्लेख है। जाम्बवन्त राम के भक्त थे। श्यामन्त मणि के लिए जाम्बवन्त और कृष्ण के बीच युद्ध हुआ था। जब जाम्बवन्त को पता चला कि कृष्ण राम का ही एक अवतार हैं, तब उसने श्यामन्त मणि को कृष्ण के हाथ पर रख दिया

और अपनी पुत्री जाम्बवन्ती का विवाह कृष्ण के साथ सम्पन्न किया। यहाँ मानव राम को नहीं देखा जाता।

असमिया लोग कृष्ण का जनमदिन मनाते हैं लेकिन राम पर ऐसा कोई दिन नहीं है, जो असमिया लोग नामघरों में इकट्ठे होकर मनाते हैं। यद्यपि शंकरदेव ने भगवान विष्णु के दो अवतारों कृष्ण और राम को हमारे आगे पेश किया है, तथापि उनकी सभी रचनाओं का विश्लेषनात्मक अध्ययन करने से यह साबित होता है कि उनकी रचनाओं में कृष्ण की तुलना में राम का प्राधान्य थोड़ा कम है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि शंकरदेव की रचनाओं में राम के ईश्वरीय रूप सहित मानवीय गुणों का भी विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनके बरगीतों में सदा भगवान राम को ही पाया जाता है, सिर्फ़ अंकीया नाट 'राम विजय' में और उत्तर काण्ड रामायण में ही भगवान राम और मानव राम दोनों समान रूप में मिलते हैं। असमिया साहित्य-संस्कृति में अब भी भगवान और मानव राम के दोनों रूपों का प्रभाव भरपूर मात्रा में देखने को मिलता है। आज भी नामघरों में भाउना और विभिन्न शुभ अवसरों पर बरगीतों की उतनी ही व्यापकता है, जितनी शंकरदेव के समय में थी। इस दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि शंकरदेव की सृष्टियों और अमूल्य अवदानों को जीवित रखने के लिए असम के जनसाधारण सदा प्रस्तुत हैं। एक स्वस्थ और सुशील गणतन्त्र की स्थापना के लिए राम का आदर्श नितान्त आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. बरठाकुर, डॉ. सत्यकाम, 'शंकरदेवर नाट विश्लेषणात्मक अध्ययन', पूर्वांचल प्रकाश, गुवाहाटी, प्रथम प्रकाश 2014
2. बरा, महिम(सम्पादक) 'शंकरदेवर नाट', असम प्रकाशन परिषद्, गुवाहाटी, प्रथम प्रकाश फेब्रुवारी, 1989

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. 'माधव कन्दलि आरु श्री श्री शंकरदेव-श्री श्री माधवदेव बिरचित सप्तकाण्ड रामायण', बनलता, गुवाहाटी-1 पुनर्मुद्रण जुलाई 2009
2. बरुवा, शान्तनु कौशिक(संकलन आरु सम्पादन), 'महापुरुष श्री श्री शंकरदेव आरु श्री श्री माधवदेव बिरचित' बरगीत", ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी-1, तृतीय प्रकाश 2009
3. नेऊग, डॉ. महेश्वर, 'असमिया साहित्यर रूपरेखा', वाणी मन्दिर, डिब्रुगढ़-1, फेब्रुवारी, 1986

माजुली की मुखौटा कला में राम

डिम्पी दत्ता/बेबी विश्वकर्मा

'राम' शब्द का उल्लेख प्राचीन वेदों में पाया जाता है। लेकिन वह दशरथ पुत्र राम नहीं है। भारतीय साहित्य में रामकथा का आधार वाल्मीकि रामायण ही है। यहाँ राम शील, धैर्य, ओज और माधुर्य का प्रतीक हैं।

हिन्दी साहित्य में प्रमुख रूप से उत्तर भारत में राम विशेष रूप से समादृत हैं। हिन्दी साहित्य में रामकाव्यधारा की शुरुआत रामानन्द से मानी जाती है। रामानन्द के शिष्य तुलसीदास का 'रामचरितमानस' रामकथा को जनजीवन के अधिक करीब लाया। उन्होंने 'रामचरितमानस' में राम की आदर्श के प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठा की। अभी भी अयोध्या के घर-घर में इसका पाठ किया जाता है। इसके अतिरिक्त भक्तिकालीन अनेकों कवियों—विष्णुदास, ईश्वरदास, अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि ने भी रामकाव्यधारा को समृद्ध करने में अपना योगदान दिया।

संस्कृत और हिन्दी के अलावा बौद्धों एवं जैन साहित्य में भी रामकथा पायी जाती है। लेकिन इसमें रामकथा का स्वरूप बहुत बदला हुआ नज़र आता है। मूलतः अपनी धार्मिक मान्यताओं को क़ायम रखने के लिए रचनाकारों ने रामकथा के स्वरूप को बदल दिया। पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के कारण रामकथा के कई प्रसंग विकृत रूप में सामने आये हैं। इसके अतिरिक्त बांग्ला, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी रामकाव्य धारा की परम्परा व्याप्त है।

असम में रामकथा

असमिया साहित्य में रामकथा को प्रतिस्थापित करने का श्रेय माधव कन्दलि को जाता है। अपने आश्रयदाता बाराह राजा महामाणिक्य के अनुरोध पर उन्होंने वाल्मीकि रामायण का सारानुवाद प्रस्तुत किया। यह रामायण प्रादेशिक भाषा में लिखी गयी पहली रामायण है। मूलतः संस्कृत में लिखी गयी वाल्मीकि रामायण का लोकभाषा में अनुवाद कर उन्होंने इसे असम के लोगों के बीच जनप्रिय बना दिया।

कोई भी रचनाकार अपने युगीन परिवेश से प्रभावित हुए बिना रचना नहीं कर सकता है। उसकी कृतियों में समय, समाज आदि का प्रभाव साफ़ झलकता है। कन्दलि का रामायण भी इसका अपवाद नहीं है। वाल्मीकि रामायण से सारतत्त्व ग्रहण करते हुए भी यहाँ असम के तत्कालीन परिवेश की पर्याप्त झाँकी मिलती है। दैनन्दिन जीवन, आचार-व्यवहार का पुट यहाँ दिखलायी पड़ता है। रामकथा में राम वनवास का प्रसंग आता है जब राम को वनवास दिये जाने की पीड़ा से जर्जरित अयोध्यावासी राम को वापस ले आने के लिए चल पड़ते हैं। परन्तु राम अपने पिता द्वारा दिये गये

वचन की रक्षा हेतु नहीं लौटते। राम बिना अपने पतियों को घर वापस लौटते देख उनकी पत्नियाँ क्रोधित हो जाती हैं और अपने पतियों की भर्त्सना कर उन पर प्रहार करने लगती हैं। यह घटना असमिया स्त्रियों की स्थिति को दर्शाती है जो उत्तर भारत की स्त्रियों के अपेक्षा काफ़ी भिन्न है। पति को परमेश्वर मानने वाली पत्नियों के लिए यह घटना कल्पनातीत है। ऐसे कई प्रसंग हैं जो कन्दलि रामायण को भारत के अन्य प्रान्तों की रामकथा से अलगाते हैं।

माधव कन्दलि द्वारा आरम्भ की गयी रामकाव्यधारा को श्रीमन्त शंकरदेव ने आगे बढ़ाया। कन्दलि रामायण के पाँच काण्डों के साथ उन्होंने 'आदि काण्ड' और 'उत्तर काण्ड' को जोड़ा। 'उत्तर काण्ड' की रचना उन्होंने स्वयं की और 'आदि काण्ड' की रचना अपने प्रिय शिष्य माधवदेव द्वारा करवायी। इसी से असमिया रामायण को एक व्यवस्थित रूप प्राप्त हुआ।

माजुली, वहाँ की सत्र-संस्कृति, आध्यात्मिकता, मुखौटा कला सभी का सन्दर्भ शंकरदेव से जुड़ा हुआ है। शंकरदेव असमिया साहित्य के पुरोधाओं में से हैं। उन्होंने मुरझाती हुई असमिया जाति, समाज और संस्कृति में नवीन जीवन का संचार किया। असमिया साहित्यिक-सांस्कृतिक इतिहास में उनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। शंकरदेव ने अपने समय में हो रहे धार्मिक और सामाजिक पतन को देखा और उसका पुरज़ोर विरोध किया। धर्म के नाम पर हो रहे शोषण, अन्धविश्वास, नरबलि जैसी कुरीतियों से उन्हें घृणा थी। अतः उन्होंने भागवत धर्म को नये सिरे से जनता के सामने रखा तथा 'एकशरणीया भागवत धर्म' की प्रतिष्ठा की। और इसी से असम में भी भक्ति आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। शंकरदेव ने 12 वर्ष तक भारत के विभिन्न तीर्थों का भ्रमण किया, अनेक साधु-सन्तों के सम्पर्क में आये और वैष्णव धर्म से प्रभावित होकर असम में भी वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अथक प्रयास किया। इसमें उनको सफलता भी प्राप्त हुई। शंकरदेव एकेश्वरवाद के समर्थक थे। उनका मानना था कि विष्णु ही वह परम तत्त्व हैं जो हर जगह व्याप्त हैं। अतः किसी दूसरे ईश्वर की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है। असम में तत्कालीन समय में शक्ति और तन्त्र-मन्त्र का प्रभाव था। तथा भिन्न-भिन्न जाति सम्प्रदाय में बँटी जनता अलग-अलग ईश्वरों की पूजा करती थी। 'एकेश्वर नाम धर्म' के ज़रिये शंकरदेव ने समूचे असम को एक करने की चेष्टा की। उन्होंने धर्म का एक सहज मार्ग भक्तों के सामने प्रशस्त किया। धर्म के बाह्याडम्बरों को नकारा तथा इस बात की प्रतिष्ठा की कि पवित्र हृदय से लिया गया भगवत नाम ही सच्ची भक्ति है। शास्त्रों के अध्ययन, विद्वानों के साथ हुए सम्पर्क तथा तीर्थाटनों से उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ उसी की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में कर उन्होंने वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और असमिया साहित्य को भी समृद्धशाली किया। शंकरदेव की प्रामाणिक रचनाएँ भक्ति रत्नाकर, बरगीत, रुक्मिणी हरण नाट, कालियदमन नाट, केलिगोपाल नाट, पारिजात हरण नाट, राम विजय नाट, भक्ति प्रदीप नाट, गुणमाला, उत्तर काण्ड रामायण, कीर्तन घोषा एवं भगवत् आदि हैं।

माजुली

माजुली असम में स्थित एक द्वीप है। यह ब्रह्मपुत्र में जन्मा एक बृहद नदी द्वीप है जिसे विश्व का सबसे बड़ा नदी द्वीप होने की ख्याति प्राप्त है। सन् 2011 की जनगणना में प्राप्त तथ्य के अनुसार इसकी जनसंख्या 1,67,304 हैं, तथा इसका क्षेत्र 352 वर्ग है। माजुली में ही शंकरदेव ने सत्र-संस्कृति की नींव रखी। बेलगुरि सत्र उनके द्वारा स्थापित प्रथम सत्र है। सत्र तब धर्म, कला, संस्कृति के केन्द्र हुआ करते थे। शंकरदेव द्वारा चलाये गये नववैष्णव धर्म को पल्लवित करने में इन सत्रों की

भूमिका अग्रणी है। शंकरदेव और उनके सहयोगियों ने कुल 65 सत्रों की प्रतिष्ठा की थी परन्तु 1950 के भूकम्प के बाद केवल एक चौथाई सत्र ही बचे हैं। माजुली वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार का केन्द्र बिन्दु था जहाँ शंकरदेव और उनके सहयोगी रहते थे, धर्म चर्चा करते थे, जनता में वैष्णव धर्म के प्रचार के उद्देश्य से कार्यरत थे। वर्तमान समय में निम्नलिखित सत्र माजुली में सक्रिय हैं—दक्षिणपात सत्र, गरमूढ़ सत्र, आउनीआती सत्र, कमलाबारी सत्र, नरसिंह सत्र, बेंगेनाआती सत्र, सामगुरी सत्र, बिहिमपुर सत्र।

मुखौटा

दरअसल मुखौटा एक आवरण है जिसके पीछे प्रकृत रूप छुपा होता है। अपने प्रकृत रूप को मुखौटे से छुपाकर किसी दूसरे का रूप धारण करना तथा निजी कार्य सिद्धि के लिए मुखौटे का प्रयोग पहले से ही चला आ रहा है। परन्तु मुखौटा केवल झूठ को ही नहीं दिखाता। नाटक के मंच पर मुखौटा पहनकर अभिनेता दर्शकों को सत्य के क़रीब ही ले जाता है। अभिव्यक्ति की ज़रूरतों और कल्पना की माँग का ख़याल रखते हुए मुखौटे को भिन्न-भिन्न तरीक़े से प्रस्तुत किया जाता है। कुछ मुखौटे सिर से लेकर पैर तक अभिनेता के शरीर से बँधे होते हैं तो कुछ मुखौटे केवल अभिनेता के चेहरे के अगले हिस्से से बँधे होते हैं तो कुछ उसे अपने सिर पर धारण करने होते हैं।

माजुली की मुखौटा कला में राम

असम में निर्मित मुखौटे भारत के अन्य प्रान्तों में निर्मित मुखौटों से अलग विशेषता लिए हुए होते हैं। यहाँ मुखौटों का प्रयोग भाउना के लिए ही किया जाता है। असम में मुखौटा मूलतः बाँस से बनाया जाता है। काठ से भी मुखौटा बनाने का प्रावधान है। कई सत्रों में काठ से बना प्राचीन मुखौटा उपलब्ध है, परन्तु जनप्रियता बाँस से बने मुखौटों की ही अधिक है। असम में मुखौटा निर्माण आसपास पायी जाने वाली सुलभ सामग्रियों से होता है। इसके लिए बाँस, जूट, कपड़ा, काग़ज़, गोबर और 'कुमार माटि'* की आवश्यकता होती है। मुखौटा निर्माण के तीन चरण हैं—

- **प्रथम चरण**—इसमें बाँस को टुकड़ों में काटकर चार-पाँच दिन के लिए पानी में भिगोकर रखा जाता है। ऐसा करने से वह जल्दी ख़राब नहीं होता है। उसके बाद उन टुकड़ों से मुखौटे की रूपरेखा अथवा कंकाल तैयार किया जाता है। तत्पश्चात् कपड़े में 'कुमार माटि' पोतकर उससे मुखौटे के कंकाल को ढँककर सूखने के लिए धूप में रख दिया जाता है।
- **द्वितीय चरण**—द्वितीय चरण में गोबर और 'कुमार माटि' को एक साथ हाथ से मिलाकर मुखौटे के कंकाल में चेहरा बनाया जाता है और फिर से धूप में सुखाया जाता है।
- **तृतीय चरण**— इसमें मुखौटे को रँगा जाता है। पहले मुखौटा निर्माण में नील, 'हाइताल'* 'हेंगुल'* आदि रंगों का प्रयोग किया जाता था, परन्तु इन रंगों को बनाने की विधि बहुत कठिन और समयग्राही है। इसी कारण अब सत्रों में बाज़ार में आसानी से उपलब्ध कृत्रिम रंगों का ही प्रयोग किया जाता है।

---

* मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए कुम्हारों द्वारा प्रयोग की जाने वाली मिट्टी।

* पीले रंग का एक प्राकृतिक रंग।

* लाल रंग का एक प्राकृतिक रंग।

माजुली में तीन प्रकार के मुखौटों का निर्माण होता है—बरमुखा, लोटोकाई और मुख-मुखा। बरमुखा सामान्य मुखा से बहुत बड़ा होता है। मुखौटे का सिर और बदन का भाग अलग-अलग बनाया जाता है। भाउना करते समय सिर के भाग को अभिनेता सिर में और बदन के भाग को शरीर में पहन लेता है। लोटोकाई मुखौटा भी बरमुखा जैसा ही होता है, बस इसका नाप छोटा होता है। मुख-मुखा में केवल अभिनेता के सिर के लिए मुखौटा बनाया जाता है।

मुखौटा असम के लिए नयी संकल्पना नहीं है। विश्व के अन्य प्रान्तों की भाँति प्राचीनकाल से ही असम में भी मुखौटे का प्रयोग आवश्यकतानुसार होता रहा है। स्थानीय लोगों द्वारा गागर, मिट्टी के बर्तन आदि में की गयी कारीगरी में मुखौटों का प्राचीन स्वरूप देखने को मिलता है। लेकिन एक विशिष्ट कला के रूप में मुखौटों का सर्वप्रथम प्रयोग शंकरदेव ने ही किया। शंकरदेव के प्रथम नाटकीय रचना के रूप में चर्चित 'चिह्नयात्रा' भाउना में ही पहले-पहल मुखौटों का उपयोग किया गया था। भाउना का सृजन सर्वप्रथम शंकरदेव ने ही किया। भाउना नाट्य का ही एक रूप है। सूत्रधार इसका मुख्य अंग है। वह वक्ता भी है, प्रदर्शक भी है तथा टीकाकार भी। वह भाउना के पात्रों का दर्शकों से परिचय कराता है, उनके आगमन और प्रस्थान की सूचना देता है। सूत्रधार सम्पूर्ण भाउना के दृश्यों को एक सूत्र में बाँधे रखता है। मंच पर भाउना के पात्रों के आगमन के साथ ही खोल बजने लगता है और पात्र खोल की ताल में ताल मिलाकर विशेष ढंग से चलते हैं और अपना प्रदर्शन दिखाते हैं। भाउना में महिला चरित्रों का अभिनय भी पुरुष ही किया करते थे।

भाउना में रामायण, महाभारत और अन्य आध्यात्मिक कथाओं को ही नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इनमें कुछ ऐसे अतिमानव या मानवेतर पात्र होते हैं जिनके सफल मंचन के लिए मुखौटों की आवश्यकता होती है। जैसे कि ब्रह्मा, रावण, बकासुर, शूर्पणखा, जटायु, कालियानाग आदि। साधारण वेशभूषा और शृंगार द्वारा ऐसे पात्रों की चारित्रिक व शारीरिक विशेषताओं को दर्शक के सामने स्पष्ट करना कठिन था।

भाउना और मुखौटा कला के जन्मदाता शंकरदेव ने रामकथा सम्बन्धी केवल एक ही नाटक 'राम विजय' की रचना सन् 1568 में की। इस नाटक का आधार 'आदि काण्ड' है। इस नाटक में राम-लक्ष्मण के विश्वामित्र ऋषि के आश्रम में जाने से लेकर परशुराम के साथ राम के युद्ध तक की कथा वर्णित है। कथावस्तु को अधिक रोचक बनाने के लिए शंकरदेव ने वाल्मीकि रामायण से भिन्न कुछ मौलिक प्रसंगों को जोड़ दिया है। विश्वामित्र ऋषि द्वारा सीता का सौन्दर्य वर्णन, सीता-स्वयंवर का विस्तृत वर्णन, अन्य राजाओं के साथ राम-लक्ष्मण का युद्ध शंकरदेव की निजी कल्पना है। राम नाट्य परम्परा में 'राम विजय' के अतिरिक्त उनका दूसरा नाटक नहीं है। क्योंकि भाउना के जन्मदाता शंकरदेव ने विष्णु के अवतारी रूपों में राम की अपेक्षा कृष्ण को अधिक महत्त्व दिया। अतः कृष्ण सम्बन्धी रचना में ही उन्होंने अधिक मनोनिवेश किया। उनके परवर्ती भक्त कवियों का भी राम नाट्य परम्परा में विशेष अवदान नहीं है। इसी कारण बहुत समय तक केवल इसी एक नाटक का मंचन भाउना के ज़रिये होता रहा। परवर्ती काल में रामकथा का विस्तार करने का प्रयास माजुली के विभिन्न सत्रों के सत्राधिकारियों द्वारा किया गया। सीताहरण, बाली वध, रावण बध आदि भाउना इस सन्दर्भ में उल्लेख योग्य हैं।

भाउना में मुखौटा कला के द्वारा राम का चित्रण 'मुखा भाउना' से प्रारम्भ हुआ क्योंकि पहले केवल अतिमानव चरित्रों के लिए ही मुखौटे का व्यवहार होता था। अतः राम, लक्ष्मण, सीता जैसे अन्य सामान्य पात्रों का मंचन अभिनेता पात्रानुकूल शृंगार द्वारा बिना मुखौटे ही करते थे।

'मुखा भाउना' की पहल नये सामगुरी सत्र द्वारा डॉ. हेमचन्द्र गोस्वामी के नेतृत्व में सन् 2000 में हुई। भाउना के कला एवं आध्यात्मिक दोनों ही पक्षों को उभारने और इस कला को समय-सापेक्ष बनाने के उद्देश्य से डॉ. गोस्वामी ने यह पदक्षेप लिया। सत्रीय परम्परा में इसका प्रचलन पहले नहीं था। सामगुरी सत्र की स्थापना शंकरदेव के पोते चक्रपाणि ने सन् 1663 में की। कालक्रम में इसका विभाजन—पुराना सामगुरी सत्र और नया सामगुरी सत्र के रूप में हुआ।। 'मुखा भाउना' में केवल असामान्य पात्रों के लिए ही नहीं वरन् भाउना के सभी पात्रों के लिए मुखौटों का प्रयोग होता है। सदियों से चली आ रही परम्परा को तोड़कर उसे एक नया मोड़ देने के कारण गोस्वामी जी को काफ़ी विरोध का सामना भी करना पड़ा। परन्तु मुखौटा कला में लाये गये इस परिवर्तन से माजुली सत्र-संस्कृति, मुखौटा कला और साथ ही स्थानीय रंग में रँगी हुई रामकथा को विश्व दरबार में स्वीकृति प्राप्त हुई।

'मुखा भाउना' में चित्रित राम, रामकथा परम्परा में प्रचलित पूज्य, मर्यादा पुरुषोत्तम राम ही हैं। वे वीरता, साहस, शील, मर्यादा, धर्म, आदर्श और प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं। 'मुखा भाउना' में राम की बाल्यावस्था का चित्रण नहीं मिलता है। युवराज और, वनवासी राम को ही यहाँ दर्शाया गया है तथा उसी के अनुरूप मुखौटों का निर्माण किया जाता है। मुखौटों का निर्माण माजुली में अत्यन्त निपुणता से किया जाता है। दर्शक मुखौटा देखते ही समझ जाता है कि वह रामकथा का कौन-सा पात्र है। दैवी चरित्रों के लिए मुखौटों को सौम्य रूप दिया जाता है एवं दानवी चरित्रों की अभिव्यक्ति के लिए मुखौटों में भय, क्रोध, हिंसा की छाप दिखाई जाती है। राम के निमित्त निर्मित मुखौटे में वनवासी राम तथा संन्यासी की छाया दिखती है तथा युवराज राम के लिए बने मुखौटे में राजमुकुट पहनाया जाता है और उसका शृंगार भी राजकीय ढंग से किया जाता है। परन्तु 'मुखा भाउना' की एक कमज़ोरी यह भी है कि वह स्थिति एवं संवेदनानुसार सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति देने में पूर्ण रूप से समर्थ नहीं है। उदाहरण के लिए—'राम विजय' नाटक में युवराज राम के लिए मुखौटा बनाया जाता है। प्रत्येक दृश्य में मुखौटा पहने अभिनेता का हाव-भाव एक-सा ही रहेगा। राक्षसों से युद्ध, सीता के रूप से मन्त्रमुग्ध राम, सीता-राम स्वयंवर आदि प्रसंगों में अवश्य ही राम का हाव-भाव अलग-अलग होगा। लेकिन मुखौटा पहने होने के कारण अभिनेता को उन सूक्ष्म पलों की अभिव्यक्ति में कठिनाई होती है। अतः उसे आंगिक और वाचिक प्रदर्शन से ही दर्शकों के सामने कथा की मार्मिकता को दिखाना होता है। 'मुखा भाउना' की और एक कमज़ोरी मुखौटे का वजन है। मुखौटों के भारीपन के कारण अधिक समय तक इन्हें पहने रहना भी एक समस्या है।

'मुखा भाउना' में संवाद के लिए ब्रजबली भाषा का प्रयोग होता है। ब्रजबली भाषा प्राचीन असमिया, ब्रज और मैथिली का मिला-जुला रूप है। इस भाषा का प्रयोग सर्वप्रथम शंकरदेव ने वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए किया था। 'मुखा भाउना' में नवरसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। राम और सीता के प्रेम-प्रसंग में शृंगार रस, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा की नाक काटे जाने में हास्य रस, जटायु और रावण के युद्ध में जटायु की मृत्यु में करुण रस तथा बाली बध में वीर रस आदि इसके उदाहरण हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि माधव कन्दलि द्वारा प्रारम्भ की गयी रामकथा परम्परा को भक्तिकालीन असमिया कवियों ने एक व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इसी परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए माजुली के विभिन्न सत्रों के सत्राधिकारी प्रयासरत हैं। भाउना व मुखौटा कला ने रामकथा को अधिक आकर्षक, रोचक एवं चमत्कारपूर्ण बनाया। विष्णुवतार राम सम्बन्धी नाटक तो हर जगह

होता है लेकिन माजुली की मुखौटा कला द्वारा प्रस्तुत की गयी रामकथा एक भिन्न वैशिष्ट्य लिए हुए है। इसमें नयापन है साथ ही इसकी प्रस्तुति भी भिन्न है। यही वजह है कि चिर-परिचित रामकथा को दर्शक बड़े ही चाव से मन्त्रमुग्ध होकर देखते हैं। मुखा भाउना की जनप्रियता दिन-व-दिन बढ़ती जा रही है। इसका दायरा अब माजुली या असम तक ही सीमित नहीं है। प्रतिदिन भारत के अन्य प्रान्तों के साथ-साथ विदेशों से भी कलाप्रेमी यहाँ आते हैं और मुखौटा कला के सौन्दर्य तथा प्रेम व भक्ति के माधुर्य में डूबी रामकथा को प्रत्यक्ष देखते हैं। सन्दर्भ अतीत का हो या वर्तमान का, रामकथा तब भी प्रासंगिक थी और आज भी प्रासंगिक है। राम के व्यक्तित्व में निहित समरसता, संघर्षशीलता, धैर्य और कर्तव्यशीलता को आत्मसात करना आज के यान्त्रिक युग में अनिवार्य हो चुका है। 'मुखा भाउना' के ज़रिये समस्त मानवीय गुणों से सम्पृक्त इसी रामकथा को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। विरासत में प्राप्त इस अभिनव परम्परा को जीवित रखने के लिए माजुली के सत्रों के सत्राधिकारी और उनके सहयोगी निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। उनकी एकान्त निष्ठा एवं कठोर परिश्रम का परिणाम ही है कि असम, विशेषतः माजुली की समृद्ध कला संस्कृति की ओर विश्व समुदाय आकृष्ट हो रहा है।

सहायक ग्रन्थ

1. तोमर, डॉ. कणिका, 'ब्रजभाषा और ब्रजबुली साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. चौबे, डॉ. दिनेश कुमार, 'असमिया और हिन्दी साहित्य अन्तरंग पड़ताल', समीक्षा पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2011
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. डॉ. नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009
5. चौबे, डॉ. दिनेश कुमार, 'हिन्दी और असमिया के प्रथम रामायण' संजय बुक सेंटर, वाराणसी, 2001 प्रथम संस्करण

माजुली की मुखौटा कला में राम

किरण कलिता/हिटलर सिंह

नैतिक और आध्यात्मिक रूप से शृंखलित और सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से परिचालित जीवनयापन के पथ निदर्शन हेतु महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव और उनके शिष्यों ने असम के लोगों के लिए प्रतिष्ठा की थी पवित्र सत्रों की। शंकरदेव और उनके परम शिष्य माधवदेव और उनके अनुयायियों की महानुभावता के फलस्वरूप स्थापित कुल 665 सत्रों में से 64 सत्रों की स्थापना माजुली में की गयी। इसलिए माजुली 'सत्रीय संस्कृति का प्राणकेन्द्र', 'पवित्र वैष्णव पीठ', 'सत्रपीठ' आदि नामों से विभूषित है। कथा-चरित में उल्लेख है कि माजुली में अवस्थित धुवाहाट-बेलगुरी नामक स्थान में सन् 1522 ई. में शंकरदेव के साथ माधवदेव का मिलन हुआ था। इसलिए माजुली को 'मणिकांचन संयोग क्षेत्र' भी बोला जाता है। लेकिन उन 64 सत्रों में से अब 36 सत्र ही बचे हैं। बाक़ी सत्र इस सर्वबृहत द्वीप पर आने वाली बाढ़ की वजह से दूर-दूर स्थानान्तरित हो गये।

मुखौटा कला सभ्यता के विकास के साथ विकसित पृथ्वी की प्राचीनतम लोक कला संपदा है। विश्व के प्रायः सभी देशों की संस्कृति में मुखौटा प्रचलन का प्रमाण पाया जाता है। विशेषकर नृत्य नाट्य में किये जाने वाले अभिनय में मुखौटे का चित्ताकर्षक और चित्तविनोदक तौर पर व्यवहार किया जाता है। असम तथा भारतवर्ष में मुखौटे का प्रचलन समादर उल्लेखनीय है। प्राचीनकाल से ही आदिम लोग यायावरी जीवनयापन करते हुए भिन्न जानवरों के मुखौटे और अलग तरह की पोशाक पहनकर जीव-जानवरों का शिकार करते हुए जीते थे। मुखौटे को बनाने के लिए स्थानीय चीज़ों का इस्तेमाल किया जाता है। जैसे गोबर मिली हुई मिट्टी, बाँस, लाल मिट्टी, मुलायम कपड़े और कुछ रंग। यह उल्लेखनीय है कि मुखौटे नाटक, भाउना, रासलीला के चरित्रों के साथ संगति रखते हुए बनाये जाते हैं और घर में सजाने वाली सामग्री के तौर पर व्यवहृत होने के साथ-साथ विभिन्न प्रदर्शनियों में भी प्रदर्शित किये जाते हैं। सामगुरी सत्र में तीन प्रकार के मुखौटे पाये जाते हैं। वे हैं—बरमुखौटा या चौमुखौटा, लटकारी या लोटोकाय मुखौटा, मुख मुखौटा। इनमें से बरमुखौटा किसी विशेष चरित्र के समग्र शरीर को आवृत्त करने के लिए बनाये जाते हैं। दूसरी ओर लटकारी या लोटोकाय मुखौटा भिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं को केन्द्र में रखकर बनाये जाते हैं और मुख मुखौटा असुरों के चरित्र रूपायण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस प्रकार के मुखौटे एक विशेष प्रकार के कौशल द्वारा बनाये जाते हैं। सभी मुखौटे अपनी भाव-भंगिमाओं एवं इशारों से उस चरित्र का सम्पादन करते हैं।

साधारण तौर पर सम्पूर्ण तरीक़े से या आंशिक रूप से मुख के ऊपर पहनने वाले आवरण (ढक्कन) को ही मुखौटा कहा जाता है। अतीत और वर्तमान के वीर पुरुष, लोकप्रिय व्यक्तित्व,

जीव-जानवर, राक्षस, ईश्वरीय आत्मा, देवता, प्रतीकवादी वस्तु, जोकर, स्थापत्य विद्या के प्रकार, बीमार लोगों, परिवहन व्यवस्था आदि का प्रतिनिधित्व मुखौटा करता है। कुछ पवित्र कार्यों में भी विशेष प्रकार के मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के कार्यों में मुखौटे के साथ-साथ मुखौटा पहनने वाले व्यक्ति को भी पवित्र माना जाता है। प्रयोग न करने के समय मुखौटे को भक्ति भाव के साथ सहेजकर रखा जाता है। यह उल्लेखनीय है कि मुखौटे नाटक, भाउना, रासलीला के चरित्रों के साथ संगति रखते हुए बनाये जाते हैं।

सत्रपीठ माजुली में गुरु शंकरदेव और माधवदेव के प्रयास से मुखौटा शिल्प को नया आयाम मिला। माजुली में बनाये जाने वाले मुखौटे और विश्व के अन्य मुखौटों के बनाने की प्रक्रिया में कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है। यहाँ भी राम की लीलाओं को दर्शाने के लिए तथा भक्ति भाव से अनपढ़ जनता के बीच भक्तिरस को प्रवाहित करने के लिए राम से सम्बन्धित अनेकों मुखौटे बनाये गये हैं। शंकरदेव और माधवदेव ने यह अनुभव किया कि समाज में जो लोग शिक्षित हैं वह तो संस्कृत के ज़रिये ज्ञानी बन सकते हैं, जो अल्पशिक्षित हैं वह भी ब्रजावली के ज़रिये ज्ञान अर्जित करके भक्ति रस में डूब सकते हैं। लेकिन जो निरक्षर, बिल्कुल अशिक्षित तथा पथभ्रष्ट हैं उनको कैसे सही रास्ते पर लाया जाये। उन अशिक्षित-गँवार लोगों के लिए ही, उन्हें भक्ति रस के माध्यम से धार्मिक बनाने के उद्देश्य से ही मुखौटों का इस्तेमाल हुआ। शंकरदेव के हाथों से निर्मित मुखौटे आज भी सामगुरी, कमलाबारी, आउनीआती आदि सत्रों में सुरक्षित हैं। महापुरुष श्री शंकरदेव और माधवदेव दोनों के आदर्श को प्रवहमान करते हुए सत्र-संस्कृति पीठस्थान माजुली में मुखौटा शिल्प की परम्परा आज भी जीवित रखने वालों में से एक व्यक्ति हैं कविकान्त देव गोस्वामी और उनका परिवार। पारम्परिक तौर पर चले आ रहे इस मुखौटा शिल्प को जीवित रखने के लिए और युवाओं के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए संगीत नाटक अकादमी के अधीन सन् 2003 में सामगुरी में मुखौटा निर्माण केन्द्र स्थापित किया गया है। देश-विदेश से आकर लोग माजुली के सामगुरी सत्र या अन्य सत्रों में प्रशिक्षण ले रहे हैं और इसकी लोकप्रियता को बढ़ावा दे रहे हैं।

माजुली की मुखौटा कला में राम

महापुरुष श्री शंकरदेव असमिया जाति निर्माण प्रक्रिया के प्रथम प्रवक्ता थे। उन्हीं के प्रयासों से असमिया संस्कृति स्वच्छता के साथ गतिशील हो पायी। असम के स्थापत्य-भास्कर्य शिल्प का इतिहास बहुत पुराना है। शंकरदेव के हाथों इस शिल्प ने नया रूप धारण किया। प्राचीन परम्परा के अनुसार यह शिल्प सिर्फ़ राजघराने की सम्पत्ति थी। शंकरदेव ने इस शिल्प को राजा और उच्च वर्ग के लोगों के मध्य से निकालकर समाज के हर वर्ग के लिए बना दिया। इसके अलावा प्राचीनकाल से चलती आ रही जनजातीय शिल्प कला को वैष्णव धर्म के भाव और भक्ति रस के आदर्श से सिक्त करके उसे नये रूप में सँजोया। शंकरदेव का समग्र आदर्श ही यही था कि समाज के हर वर्ग के लिए हर चीज़ ग्रहण योग्य हो।

असम की उस समय की शिक्षा-दीक्षा से जुड़ी महत्त्वपूर्ण बातों से अपरिचित अशिक्षित साधारण जन को धर्म-संस्कृति के प्रति मनोरंजन के सहारे आकर्षित करने के लिए साहित्य सृष्टि के मूल उपादान नवरस के साथ भक्ति रस का समाहार करके मानवीय-बोध को जगाने के लिए श्री शंकरदेव ने चिह्नयात्रा नाम का एक नाट—भाउना प्रस्तुत किया। जहाँ उन्होंने सप्त बैकुण्ठ का चित्रांकन किया। आसानी से पायी जाने वाली स्थानीय चीजों की परम्परागत प्रस्तुतीकरण पद्धति को अपनाते हुए

चिन्हयात्रा भाउना में नाना प्रकार के मुखौटों का व्यवहार किया गया। शंकरदेव के बाद माधवदेव के द्वारा भी भाउना में मुखौटों का इस्तेमाल करने की बात चरित ग्रन्थ में उल्लिखित है। माधवदेव के बाद नारायणदास, ठाकुर आता और बरविष्णु आता के द्वारा भी मुखौटों के निर्माण का उल्लेख है। परवर्ती समय में भी राजदरबारों में मुखौटे का व्यवहार करके भाउना आयोजन करने का तथ्य भिन्न ग्रन्थों में लिपिबद्ध है। आहोम स्वर्गदेव जयध्वज सिंह, शिवसिंह और रुद्रसिंह के शासनकाल में नृसिंह यात्रा, राम विजय, अजामिल उपाख्यान, कंस वध, रुक्मिणी हरण आदि भाउनाओं में असम के भिन्न-भिन्न सत्रों में मुखौटे का इस्तेमाल करने का तथ्य पाया गया है। परवर्ती काल में दोनों गुरुओं के अलावा रामचरण ठाकुर, देत्यारी ठाकुर, गोपाल आता आदि ने भी अंकीय शैली में नाटकों की रचना करते हुए उनमें मुखौटे का इस्तेमाल किया है। बाँस-काठ के ज़रिये मुखौटे का निर्माण करके मंच पर व्यवहार करके दिखाने वाले पहले महान शिल्पकार हैं श्री शंकरदेव। उनसे पहले विश्व के किसी भी रंगमंच पर मुखौटे का इस्तेमाल करके नाटक प्रदर्शित करने का दृष्टान्त देखने को नहीं मिलता है। आज के समय में हाथी, घोड़ा, बैल-गाय, गरुड़ पक्षी, राजहंस, कालिया और वासुकी नाग, नृसिंह, वराह, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, बटुब्राह्मण, गयासुर, दसमुण्ड रावण, कुम्भकर्ण, मारीच, सुबाहु, पूतना, केसी, हनुमन्त, जाम्बवन्त इत्यादि पात्रों के मुखौटे का इस्तेमाल भाउना में किया जाता है।

विष्णु के अवतार कृष्ण की लीलाओं को दर्शाने के साथ-साथ राम के चरित्र को भी श्री शंकरदेव और उनके शिष्यों ने अपने रचनाराजी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'राम विजय' नामक अंकीया नाट और रामायण के 'उत्तर काण्ड' (अनुवादक ग्रन्थ) दोनों ग्रन्थों में श्री शंकरदेव ने 'राम' के चरित्र का एक अवतारी पुरुष के रूप में उपस्थापन किया है। रामनाम का महत्त्व बताते हुए वह कहते हैं—

"रामनाम बिना नहीं संसार निस्तारा। हेना जानी राम'र चरित्र सारा ।।
रामनामा प्रमत्त सिंहरा महानादे। पालय पापहस्तियुत्था परम विसादे ।।"

(उत्तर काण्ड)

रामायण के आदि काण्ड से सार ग्रहण करके शंकरदेव ने 'राम विजय' नाटक की रचना की है। राम-लक्ष्मण अपने गुरु विश्वामित्र के साथ निकल पड़ते हैं और रास्ते में राक्षसों से सामना होने पर कैसे राक्षसों का वध करते हैं, यह समस्त घटना इस नाटक में वर्णित हुई है। किस प्रकार से राम ने धनुष-भंग करके सीता को प्राप्त किया, विवाह करके अयोध्या की ओर यात्रा करते समय मार्ग में कैसे परशुराम के साथ लड़कर उन्हें परास्त किया और कैसे पुनः अयोध्या में प्रवेश किया था, यह समस्त घटना भी इस नाटक में वर्णित है। इस प्रकार राक्षस, प्रतिद्वन्दी राजा और परशुराम आदि को परास्त करने के कार्य से राम के वीरत्व को प्रकाशित किया गया है।

शंकरदेव ने 'राम' को एक आदर्श चरित्र के रूप में तथा अवतारी वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया है। इसके अलावा राम यहाँ विनयी और ऋषिभक्त हैं। पत्नीपरायणता और भ्रातृप्रेम का परिचय भी राम के चरित्र में देखने को मिलता है। राम विजय नाटक में गीतों का सौन्दर्य देखते ही बनता है। इसका प्रत्येक गीत सौन्दर्यमय और नाटकीय रस से भरपूर है। राम के परम चरित्र को सुनकर सीता आनन्द विभोर हो उठती हैं। कवि प्रेम में आकुल जनकनन्दिनी की मानसिक अवस्था का चित्रण करते हुए लिखते हैं—

"रामक चरण चित्ति चीर चिन्तिए नयना मुदि राहू माई।
प्रेम परश रस राजनन्दिनी येच मानस अमिया झुराई।
याहे विरहे दहे रहल नाही जीव सो प्रिय पावल कोल
आनन्द सिन्धू मगन मन कामिनी कृष्ण किंकर उहि बोल ।"

(राम विजय)

'उत्तर काण्ड रामायण' में राम का चरित्र सुशील और सकरुण रूप में अंकित हुआ है। इसके अलावा लोकभीरुता भी इसकी एक अन्य विशेषता है। लोक अपयश के डर से ही वह सीता को वनवास भेजते हैं। सीता के पाताल प्रवेश और लक्ष्मण की जलसमाधि के पश्चात शोक में म्रियमाण राम की जो अवस्था थी उसका वर्णन शंकरदेव जी ने अत्यन्त वेदनाविभोर होकर किया है।

माधवदेव के 'आदि काण्ड रामायण' के प्रथम सर्ग में माधवदेव ने राम का केवल गुणवान, आदर्श पुरुष ही नहीं बल्कि स्वयं विष्णु के रूप में चित्रण किया है। सबसे पहले अप्रमादी कवि माधव कन्दलि ने रामायण का आदि काण्ड और उत्तर काण्ड लिखा था। कालक्रम में यह ग्रन्थ लुप्त होने के क़गार पर खड़े होने से अनन्त कन्दलि और उनके बाद श्री शंकरदेव और माधवदेव ने क्रम से उत्तर काण्ड और आदि काण्ड का अनुवाद असमिया में किया है। माधवदेव ने अपने इस अनुवाद ग्रन्थ में ब्रह्मा के पुत्र मारीच से आरम्भ करके मान्धाता आदि राजाओं के वर्णन सहित दशरथ की गुण-गरिमाओं का विवरण दिया है। दशरथ विष्णु भक्त थे और उसी के फलस्वरूप विष्णु ने पुत्र रूप में उनके घर अवतार ग्रहण किया है। वाल्मीकि रामायण के वर्णन क्रम का परित्याग करके माधवदेव ने अपनी मौलिकता को यहाँ वर्णन प्रक्रिया में रखा है।

निष्कर्षतः उपर्युक्त आचार्यों के अतिरिक्त परवर्ती शिष्यों में भी रामकाव्य सृजन की एक लम्बी परम्परा प्रवाहित होती आयी है। शंकरदेव और माधवदेव तथा उनके भक्तों के द्वारा रचित नाटकों में वर्णित रामकथा को बृहत दर्शक वर्ग तक पहुँचाने के लिए माजुली की सत्र-संस्कृति ने मुखौटे का इस्तेमाल किया है। मुखौटे के ज़रिये इन गुरुजनों का उद्देश्य था विभिन्न चरित्रों से सामान्य जन को परिचित कराना। मुखौटे में सजे पात्र को देखते ही दर्शकों को यह अनुमान हो जाता था कि वह कौन है? कथा में उसकी क्या भूमिका है? इसके अतिरिक्त लोगों में उस चरित्र के स्वभाव के अनुरूप उन्हें जो फल प्राप्त होता है, उसे दर्शाते हुए, उनमें जागरूकता लाने का प्रयास भी शंकरदेव तथा उनके भक्तों ने किया है। राम चरित्र के आदर्श पक्ष को लेकर सामान्य जन के जीवन को सुधारने में मुखौटा कला ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

यद्यपि आज मुखौटा शिल्प का विकास उस स्तर पर नहीं हो रहा जैसे कि उसका होना चाहिए था। तथापि आवश्यकता है इस प्राचीन संस्कृति की धरोहर को संचित रखने के लिए उचित क़दम उठाया जायें।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. महन्त, डॉ. रूबी, शंकरदेव साहित्य'र नन्दन तात्त्विक अध्ययन, प्रकाशन पुआ मारा सत्र, शुकान पुखुरी, शिवसागर, सन् 1999 ई.
2. सूतिया, डॉ. धरमेश्वर, सौमार सौरभ (स्मृति ग्रन्थ), श्रीमन्त शंकरदेव संघ'र 66वाँ अधिवेशन, लखीमपुर, असम, प्रकाशन, 1997
3. नाथ, जीवकान्त, भकति आछे आरचिम (स्मृति ग्रन्थ), श्रीमन्त संकरदेव संघ'र 80वां वार्षिक अधिवेशन, बकलियाघाट, कार्बी आंगलोंग, 2011

4. चलिहा, भवप्रसाद, माधवदेव'र साहित्य, द्वितीय प्रकाशन, फरवरी 2000
5. चलिहा, भवप्रसाद, शंकरी संस्कृतिर अध्ययन, फरवरी 1999
6. वर्मन, सिवनाथ, (भूमिका), एन अनसंग कोलोसस : एन इंट्रोडक्शन टू द लाइफ़ एंड वर्क्स ऑफ़ शंकरदेव, गुवाहाटी, फोरम फॉर शंकरदेव स्टडीज़/एन.ई.एच.यू. इंस्टीट्यूशनल रिपोज़िटरी
7. नेऊग, महेश्वर (1980), अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ द फ़ेथ एंड मूवमेंट इन असम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
8. शर्मा, एस.एन. (1996) द नियो वैष्णव मूवमेंट एंड द सत्र इंस्टीट्यूशन ऑफ़ असम, गुवाहाटी यूनिवर्सिटी

शंकरदेव के राम

(बरगीत के विशेष सन्दर्भ में)

पूजा बरुवा

जिस समय पूरे भारत में भक्ति आन्दोलन तीव्र गति से चल रहा था, उसी समय भारत की उत्तर-पूर्वी दिशा में स्थित असम में वैष्णव धर्म का प्रवर्तन कर धर्म तथा साहित्य के क्षेत्र में नवजागरण की सूचना देने का श्रेय शंकरदेव को जाता है। उन्होंने कई काव्य, नाटक, गीत-पद आदि की रचना की थी और इनकी रचनाओं में से बरगीत असमिया साहित्य की अमूल्य निधि हैं। वैष्णव धर्म को सर्वजनप्रिय बनाकर उसके व्यापक प्रसार के लिए ही उन्होंने बरगीतों की रचना की थी। वैष्णव भक्त होने के कारण उन्होंने कृष्ण की भक्ति तो की ही साथ ही विष्णु के दूसरे अवतार राम भी उनके बरगीतों में चित्रित हुए हैं। राम विषयक बरगीतों में 'राम' परमब्रह्म, अनाथों के नाथ, भक्तों के एकमात्र उद्धारक, पापमोचन करने वाले तथा मुक्ति के मार्ग आदि अनेक रूपों में चित्रित हुए हैं।

असमिया धर्म, समाज, साहित्य-संस्कृति, कला आदि के क्षेत्र में शंकरदेव का जो योगदान है उसके सम्बन्ध में अध्ययन करना हमेशा से ही महत्त्वपूर्ण रहा है। बरगीत उनकी श्रेष्ठ रचनाओं में अन्यतम हैं। साधारणतः उन्होंने कृष्ण विषयक बरगीतों की ही रचना की है, पर साथ ही कुछ ऐसे भी बरगीत हैं, जिनमें राम का भी उल्लेख उन्होंने किया है और उन बरगीतों में राम किस रूप में चित्रित हुए हैं इसका अध्ययन करना अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है—शंकरदेव के बरगीतों में राम के स्वरूप का उद्घाटन करना। उनके बरगीतों के किन स्थलों में रामनाम का उल्लेख है तथा किस रूप में उनका चित्रण हुआ है, उन सभी का अध्ययन यहाँ किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन शंकरदेव द्वारा रचित बरगीतों तक ही सीमित है। राम विषयक एवं रामनाम उल्लिखित बरगीतों के आधार पर संगोष्ठी-पत्र प्रस्तुत किया गया है।

संगोष्ठी-पत्र के अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। पत्र में MLA (Modern Language Association) 'आधुनिक भाषा संस्था' की सातवें संस्करण की पद्धति का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत पत्र में बरगीतों की पंक्तियों का लिप्यन्तरण किया गया है। हिन्दी भाषा के 'य' वर्ण के लिए असमिया भाषा में दो वर्ण चलते हैं—एक का उच्चारण 'य' ही है और दूसरे का उच्चारण 'ज' होता है। असमिया 'य' के लिए हिन्दी में भी 'य' रखा गया है, पर असमिया के 'य' के 'ज' वाले उच्चारण के लिए लिप्यन्तरण में 'य' रखा गया है।

प्रस्तुत संगोष्ठी-पत्र की चर्चा अब हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर करेंगे—

बरगीत का स्वरूप—वैष्णव भक्त शंकरदेव और माधवदेव ने आध्यात्मिक चेतना के उद्बोधन हेतु अनेक गीत-पदों की रचना की थी। उनके गीतों में से सर्वाधिक उल्लेखनीय है बरगीत। वैष्णव धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु शंकरदेव ने और उनकी आज्ञा से उनके शिष्य माधवदेव ने ब्रजावली भाषा में शास्त्रीय राग-तालयुक्त कुछ भक्तिमूलक गीतों की रचना की थी, जिनको सम्मान के साथ बरगीत कहा जाता है। असमिया साहित्य के विशिष्ट विद्वान डॉ. महेश्वर नेऊग ने बरगीतों को परिभाषित करते हुए कहा है—

शंकरदेव आरु माधवदेव द्वारा रचित, शास्त्रीय राग-ताल बिशिष्ट, चैध्य प्रसंगर परिक्रमात स्थान लाभ करा, ब्रजबुलि भाषात रचित आरु शृंगारादि लौकिक भाव बिमुक्त गीतेइ बरगीत।

(शर्मा 2014 : 237)

अर्थात्, शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित, शास्त्रीय राग-ताल विशिष्ट, चौदह परिक्रमाओं में स्थान प्राप्त ब्रजबुलि भाषा में रचित और शृंगारादि लौकिक भाव से मुक्त गीतों को ही बरगीत कहा जाता है।

सिर्फ़ शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित गीत ही बरगीत कहलाते हैं। ये गीत लौकिक तथा ऐन्द्रिक भावों से मुक्त तथा आध्यात्मिक भाव सम्पन्न होते हैं। इनमें भक्ति और शान्त रस की प्रधानता होती है। जीवन तथा जगत की क्षणभंगुरता, मायामय संसार से मुक्ति, परमब्रह्म की महिमा, आत्म-निवेदन, भगवान कृष्ण के रूप तथा बाल लीलाओं का वर्णन आदि ही बरगीतों की विषय-वस्तु है। बरगीत के विषय और गाम्भीर्य के कारण असमिया साहित्य के प्रमुख विद्वान डॉ. बाणीकान्त काकति ने बरगीतों को 'नोबल नम्बर्स' कालिराम मेधि ने 'ग्रेट सॉन्ग' और देवेन्द्रनाथ बेजबरुवा ने होली सॉन्स कहा है। (शइकीया, 2011 : 143) शंकरदेव के अधिकतर बरगीत दास्य भाव सम्पन्न हैं और उनमें अनेक दार्शनिक बातें भी कही गयी हैं। लेकिन माधवदेव के बरगीतों में मूलतः वात्सल्य रस का ही प्रयोग देखने को मिलता है, जिसमें शिशु कृष्ण की बाललीलाओं का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत है। बरगीतों को भक्ति की चौदह परिक्रमाओं में विशेष राग-ताल के साथ सुन्दर तरीक़े से नामघरों में गाया जाता है और इसमें भागवत का मर्म इतनी सहज-सरल भाषा में वर्णित है कि आम जनता भी इसका अर्थ आसानी से समझ सकती है। ये बरगीत भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त ही समृद्ध हैं। गम्भीर दार्शनिक बातों को सहज और बोधगम्य भाषा में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किये जाने के कारण ही बरगीत असमिया समाज में काफ़ी लोकप्रिय हैं। केवल वैष्णव धर्म के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि जातीय चेतना का उद्बोधन कर असमिया सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध बनाने में भी इन बरगीतों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

शंकरदेव के बरगीतों में राम का स्वरूप—बरगीत शंकरदेव के कृतित्व का महत्त्वपूर्ण अंश हैं। शंकरदेव ने अपने समस्त जीवनकाल में 240 बरगीतों की रचना की थी। एक बार कमला गायन नामक एक भक्त उन बरगीतों को कण्ठस्थ करने के लिए ले गया था, पर दुर्भाग्यवश अचानक लगी आग में ज़्यादातर जलकर ख़त्म हो गये। बाद में उस भक्त को याद रहने वाले और आग से बचने वाले कुछ पृष्ठों से लगभग 35 बरगीत ही संरक्षित किये जा सके। शंकरदेव ने इन 35 बरगीतों में ईश्वर लीला, भक्ति की महिमा, आत्म-निवेदन, नाम-महिमा, संसार की नश्वरता, माया-मोह का तिरस्कार, कृष्ण का रूप-सौन्दर्य आदि विषयों का सुन्दर वर्णन किया है। शंकरदेव के लिए कृष्ण

और राम एक ही हैं। इसीलिए उन्होंने कई स्थलों पर कृष्ण के स्थान पर राम शब्द का भी प्रयोग किया है। उनके द्वारा रचित 35 बरगीतों में से 12 बरगीतों में राम का उल्लेख है। इन 12 बरगीतों में से एक बरगीत में राम सगुण के रूप में आये हैं और शेष में निर्गुण के रूप में। राम विषयक बरगीतों में तो राम शब्द का प्रयोग है ही, साथ ही कृष्ण विषयक बरगीतों में भी राम शब्द का बार-बार प्रयोग हुआ है। शंकरदेव के बरगीतों में कुल 29 बार राम शब्द का प्रयोग हुआ है और रघुपति जैसे राम व्यंजक शब्द का प्रयोग भी देखने को मिलता है। उनके बरगीतों में राम सगुण, निर्गुण, परमब्रह्म, अनाथों के नाथ, भक्तों के एकमात्र उद्धारक तथा पाप मोचन करने वाले, मुक्ति का मार्ग आदि अनेक रूपों में चित्रित हुए हैं—

सगुण राम—शंकरदेव के आराध्य निर्गुण हैं, पर उस निर्गुण तक पहुँचने के लिए उन्होंने सगुण का मार्ग अपनाया। इसीलिए कृष्ण और राम जैसे विष्णु के अवतारों के माध्यम से वे परमब्रह्म का नाम-कीर्तन करते हैं। उन्होंने कृष्ण की रूप लीलाओं का वर्णन अपने कई बरगीतों में किया है। कृष्ण और राम साध्य न होकर साधन के रूप में आये हैं। अधिकतर उन्होंने कृष्ण विषयक बरगीत ही लिखे हैं, पर कुछ बरगीतों में रामनाम का भी उल्लेख हुआ है। राम शब्द उनके बरगीतों में कृष्ण, हरि, गोपाल, गोविन्द आदि के पर्याय के रूप में ही आया है। उनके राम निर्गुण राम ही हैं, अवतारवादी राम नहीं। पर उन्होंने अपने नाटक 'राम विजय' में 'राम' को दशरथ के पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम सगुण राम के रूप में चित्रित किया है। साथ ही उनका एक ऐसा भी बरगीत है, जिसमें उन्होंने भगवान राम के शक्ति-सामर्थ्य और लीला-महिमा का बखान सगुण रूप में किया है। प्रस्तुत बरगीत में उन्होंने सांकेतिक रूप में सगुण राम का चित्रण किया है। रामभक्ति के अलावा संसार से मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है, उसी का संकेत प्रस्तुत बरगीत में शंकरदेव ने किया है—

शुन शुन रे सुर बैरी प्रमाणा निशाचर नाश निदाना।
रामनाम यम समरक साजि समदले कयलि पयाणा।।

भावार्थ—हे देवों के शत्रु राक्षसों सुनो, तुम लोगों का नाश करने के लिए राम अपनी पूरी सेना के साथ आ रहे हैं।

....

अन्ध मुगुध दशकन्ध पाप बुध जानकीक शिरत चड़ाय
रघुपति पद बर धर रजनीचर शंकर कहतु उपाय।

(हाजरिका 2014 : 957)

भावार्थ—शंकरदेव कहते हैं कि हे महापापी अन्ध-मुग्ध रावण, जगत माता जानकी को अपने सिर पर सवार कर रघुपति के चरणों पर अपने आप को समर्पित कर दे तभी तेरे पापों का खण्डन होगा।

प्रस्तुत बरगीत में चित्रित राम दशरथ पुत्र, जानकी के स्वामी, मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं, निर्गुण राम नहीं।

निर्गुण राम—शंकरदेव वैष्णवधर्मी थे। इस भक्ति परम्परा में एक ही ईश्वर को परमब्रह्म मानकर उनका नाम-कीर्तन किया जाता है। शंकरदेव के आराध्य 'राम' परमब्रह्म निर्गुण थे, पर उस निर्गुण तक पहुँचने के लिए एक आलम्बन की आवश्यकता होती है, क्योंकि आलम्बन के बिना भक्ति को केन्द्रीभूत कर पाना साधारण जनता के लिए आसान नहीं है। इसीलिए उन्होंने अपने लक्ष्य निर्गुण तक पहुँचने के लिए सगुण का मार्ग अपनाया। इससे साधारण जनता को भी भक्ति मार्ग

में कोई असुविधा नहीं हुई। निर्गुण भक्ति विषयक बरगीतों में भक्ति की महिमा, आत्म-निवेदन, नाम-महिमा, संसार की नश्वरता, माया का तिरस्कार आदि का चित्रण मिलता है। साथ ही भक्तों के उद्धारक, अनाथों के नाथ परमब्रह्म का उल्लेख भी मिलता है, जिसके नाम के स्मरण मात्र से ही संसार के सारे दुख मिट जाते हैं। उस परमसत्ता को संकेतित करने के लिए ही राम, कृष्ण, हरि, गोपाल आदि शब्द प्रयोग में आये हैं। शंकरदेव ने नाम-कीर्तन के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति का मार्ग सुझाया, पर आलम्बन के रूप में विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण को ही लिया। उनके अधिकतर बरगीत कृष्ण लीला विषयक हैं। पर उनके ऐसे भी अनेक बरगीत हैं, जहाँ पर विष्णु के अन्य अवतार राम का चित्रण भी मिलता है। यहाँ राम निर्गुण राम हैं, अवतारी राम नहीं। रामनाम को मुक्ति का मार्ग बताते हुए शंकरदेव लिखते हैं–

बोलहु रामनामेसे मुकुति निदाना।।
भव बैतरणी तरणि सुख सरणी
नाहि नाहि नाम समाना।।

भावार्थ–राम का नाम स्मरण करते रहो क्योंकि इस संसार रूपी सागर को पार करने के लिए उनके नाम के समान और कुछ भी नहीं हो सकता है। वे ही भक्तों को मुक्ति दिला सकते हैं।

....

कृष्ण का किंकर कह छोर मायामोह
राम परम तत्त्वसार।।

(हाजरिका 2014 : 958)

भावार्थ–कृष्ण के सेवक शंकरदेव कहते हैं कि सांसारिक माया-मोह का त्याग कर रामनाम का स्मरण करो, क्योंकि राम ही परम तत्त्व का सार हैं।

समन्वित रूप में राम : शंकरदेव का उद्देश्य सगुण के माध्यम से निर्गुण की स्थापना करना ही रहा है। निर्गुण तक पहुँचने के लिए ही उन्होंने सगुण का मार्ग अपनाया। शंकरदेव ने विष्णु के दो अवतारों कृष्ण और राम को अपनी भक्ति का आलम्बन माना है। उन्होंने अपने बरगीतों में भी सगुण और निर्गुण तथा राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं रखा है। साथ ही उनके बरगीतों में राम और कृष्ण भी एकाकार हो गये हैं। उनके लिए राम और कृष्ण भिन्न न होकर एक ही हैं। इसीलिए उन्होंने एक ही बरगीत में राम और कृष्ण शब्द का प्रयोग पर्याय के रूप में किया है, जहाँ उन्होंने स्वयं को कृष्ण का दास कहते हुए भी राम का नाम लेने का उपदेश दिया है। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

कृष्ण किंकर शंकर भाण। राम बिने गति नाहि आन।।

(हाजरिका 2014 : 961)

भावार्थ–कृष्ण के दास शंकरदेव कहते हैं कि राम के बिना अन्य कोई भी भक्तों की गति नहीं लगा सकता है।

....

अव निशि सेवहु राम परम पहु रहु हृदि पंकज मेरा।
कृष्ण किंकरे भण राम परम धन मरणहि संग नाचोरा।।

(हाजरिका 2014 : 962)

भावार्थ–कृष्ण के दास शंकरदेव कहते हैं कि अब मैं दिन-रात परम प्रभु राम की ही सेवा में लगा हुआ हूँ। हे राम, आप मेरे हृदय पंकज में वास कीजिए। शंकरदेव के अनुसार राम ही भक्तों का परम धन हैं, जो जीवन के साथ-साथ मृत्यु के बाद भी अपने भक्तों का साथ नहीं छोड़ते।

एक अन्य उदाहरण देखिए–

मन सुखे पार कैछे निन्द।
तइ चेतिया चिन्त गोविन्द।।
मन जानिया शंकारे कहे।
देख राम बिने गति नहे।।

(हाजरिका 2014 : 961)

भावार्थ–हे मन तू अज्ञानी है, अब सुख से जीवन व्यतीत कर रहा है, तू गोविन्द का ध्यान कब करेगा। शंकर कहते हैं कि मन तू यह जान ले कि राम के बिना तेरी और कोई गति नहीं है।

भक्तों एवं पापियों के उद्धारक राम–शंकरदेव के अनुसार राम ही भक्तों के उद्धारक हैं। रामनाम के स्मरण मात्र से ही भक्तों का इस मायावी संसार से उद्धार होता है। भक्तों के लिए राम ही सर्वस्व हैं, उनके बिना भक्तों का कोई उद्धारक नहीं है। इसीलिए शंकरदेव सभी भक्तों को राम का नाम-कीर्तन करने का उपदेश देते हुए कहते हैं–

राम भकत परम निधि। राम बिने नाहि एको सिद्धि।।
राम इह परलोके गति। ताहे देखो नाहि मन्द मति ।।
कृष्ण किंकर शंकर भाण। राम बिने गति नाहि आन।।

(हाजरिका 2014 : 963)

भावार्थ–राम भक्तों की परम निधि हैं, उनके बिना किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। मूर्ख यह नहीं देख पाता है कि राम ही इहलोक और परलोक की गति लगाने वाले हैं और उनके बिना भक्तों की और कोई गति नहीं।

शंकरदेव के अधिकतर बरगीतों में दास्य भाव का प्रकाशन हुआ है। दास्य भक्ति में अहं का विगलन होता है और स्वयं को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दिया जाता है। शंकरदेव भी स्वयं को ईश्वर का दास मानते हुए उनकी भक्ति करते हैं। उनमें अहं का इतना विगलन हो गया है कि वे ख़ुद को संसार का सबसे बड़ा पापी और राम को सबसे बड़ा उद्धारक मानते हैं–

छिरि राम मञि हरि पापी पामरु तेरि भावना नाइ।
जनम चिन्तामणि काहे गयो यैचे काचक लाइ।।

भावार्थ–हे श्रीराम, मैं सबसे बड़ा पापी हूँ क्योंकि मेरे हृदय में आपके लिए कोई भक्ति भाव नहीं है। मेरा जीवन तो व्यर्थ ही चला गया।

....

परम मूरुख हामु माधव एकु भकति न जाना।
दास दास बुलि तारहु एहु शंकर भाणा।।

(हाजरिका 2014 : 959)

भावार्थ–शंकरदेव कहते हैं कि हे माधव, मैं भक्ति करना बिल्कुल भी नहीं जानता, आप मुझे अपना दास समझकर मेरा उद्धार कीजिए।

संसार ताप के तारक राम : शंकरदेव के अनुसार यह संसार क्षणभंगुर है। संसार के मायाजाल में फँसकर मनुष्य को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। संसार का ताप प्रतिपल मनुष्यों को जलाता रहता है और मनुष्य निरन्तर उससे निकलने के लिए तड़पता रहता है। शंकरदेव ने इस ताप से बचने के लिए राम के नाम स्मरण को ही एकमात्र उपाय माना है। वे ही संसार ताप के हरणकर्ता हैं—

नाहि नाहि रमया बिने ताप तारक कोइ।
परमानन्द पद मकरन्द सेवहु मन मोइ।।

(हाजरिका 2014 : 958)

भावार्थ—राम के बिना अन्य कोई संसार ताप का तारण नहीं कर सकता। शंकरदेव कहते हैं कि मेरा मन परमानन्द के पदों के मकरन्द के सेवन द्वारा इस ताप से मुक्ति चाहता है।

....

कमने रमया मन बिछुरि रहु बृथा मोहे भुलाय।
राम चरण चिन्त चित्त मृत्यु तारण उपाय ।।

(हाजरिका 2014 : 959)

भावार्थ—मैं अपने चंचल मन को कैसे बृथा मोह से मुक्त रखूँ। राम के चरणों का ध्यान करने से ही मृत्यु से उद्धार मिल सकता है।

मुक्तिदाता राम—भक्ति का उद्देश्य मुक्ति है। मुक्ति तभी सम्भव है जब मनुष्य माया-मोह से सम्पूर्ण रूप से ऊपर उठकर परमब्रह्म से मिल जाता है। पर यह मुक्ति मिलना इतना आसान नहीं है। भक्त को मुक्ति के मार्ग में काफ़ी कठिनाई होती है। शंकरदेव कहते हैं कि चाहे जितना भी तीर्थ, तप-जप, योग, मन्त्र क्यों न कर लिया जाये उससे मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है। मुक्ति का एकमात्र एवं सहज मार्ग तो रामनाम का स्मरण करना ही है। राम के चरणों में ख़ुद को समर्पित करने से ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है—

तीरिथ बरत तप जप याग योग युगुति। मन्त्र परम धरम करम करत नाहि मुकुति ।।

....

कृष्ण किंकर शंकर कह बिछुरि विषय कामा। राम चरणे लेहु शरण जप गोबिंदक नामा।।

(हाजरिका 2014 : 958)

भावार्थ—शंकरदेव कहते हैं कि तीर्थ, व्रत, ताप-जप, यज्ञ, योग, युक्ति, मन्त्र आदि कर्म कोई कितना भी धर्म से क्यों न करे उससे मुक्ति नहीं मिल सकती। विषय-वासना से दूर होकर राम के चरणों में शरण लेकर गोविन्द का नाम जपने से ही मुक्ति सम्भव है।

शंकरदेव ने मनुष्य के चंचल मन को माया-मोह त्याग कर राम के चरणों में ही मन लगाने का उपदेश दिया है, क्योंकि उनके अनुसार राम ही सबकी गति लगा सकते हैं-

मन मेरि राम चरणहि लागु। तइ देखुना अन्तक आगु।।

....

मन निश्चय पतन काया। तइ राम भज तेजि माया।।

....

मन जानिया शंकरे कहे। देख राम बिने गति नहे।।

(हाजरिका 2014 : 961)

भावार्थ–शंकरदेव कहते हैं कि हे मन, तू राम के चरणों में ही लगा रह। शरीर क्षणस्थायी है, उसका अन्त निश्चित है इसीलिए तू माया का त्याग कर राम का स्मरण करता रह, वे ही भक्तों की गति लगायेंगे।

उपलब्धियाँ

- शंकरदेव के बरगीत असमिया साहित्य की अमूल्य निधि हैं।
- शंकरदेव मूलतः कृष्ण के परम भक्त थे, पर कृष्ण के साथ-साथ राम के भी विष्णु के अवतार होने के कारण उन्होंने राम और कृष्ण को एक ही माना है।
- उनके बरगीतों में सगुण और निर्गुण तथा राम और कृष्ण का एकीकरण हो गया है।
- शंकरदेव के द्वारा रचित 35 बरगीतों में से 12 बरगीतों में राम का उल्लेख हैं। इन 12 बरगीतों में से एक बरगीत में राम सगुण के रूप में आये हैं और शेष में निर्गुण के रूप में। इनमें कुल 29 बार राम शब्द का प्रयोग हुआ है।
- राम विषयक बरगीतों में तो राम शब्द का प्रयोग है ही, साथ ही कृष्ण विषयक बरगीतों में भी राम शब्द का बार-बार प्रयोग हुआ है। राम शब्द कृष्ण के पर्याय के रूप में ही अधिक प्रयोग में आया है।
- शंकरदेव के बरगीतों में राम शब्द के अलावा रघुपति, रामा जैसे राम व्यंजक शब्दों के भी प्रयोग देखने को मिलते हैं।
- उनके बरगीतों में राम परमब्रह्म, अनाथों के नाथ, भक्तों के एकमात्र उद्धारक तथा पाप मोचन करने वाले, मुक्ति का मार्ग आदि अनेक रूपों में चित्रित हुए हैं।

निष्कर्ष

असमिया कला, साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र को अपने अतुलनीय अवदान से समृद्ध करने वाले शंकरदेव की महान सृष्टियों में से बरगीत अन्यतम हैं। कृष्ण-विषयक बरगीतों के साथ-साथ राम विषयक बरगीतों की रचना कर उन्होंने कृष्ण और राम को एकाकार कर दिया है। उनके लिए राम-कृष्ण, सगुण-निर्गुण, व्यक्त-अव्यक्त में कोई भेद नहीं है और यही भाव उनके बरगीतों में भी व्यक्त हुआ है। कृष्ण की महिमा का वर्णन करने के साथ-साथ राम के विविध रूपों का भी उन्होंने सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हाजरिका, सूर्य, (सम्पादक) श्रीमन्त शंकरदेव बाक्यामृत, प्रथम, वाणी मन्दिर, गुवाहाटी 2014
2. शइकीया, नगेन, (सम्पादक) बिषय शंकरदेव, प्रथम, डिब्रूगढ़, कौस्तुभ प्रकाशन, 2011
3. शर्मा, डॉ. नवीन चन्द्र, महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव, प्रथम, गुवाहाटी, 2014

वाड़ी लीबा कथा कला के माध्यम से मणिपुरी रामकथा

सरस्वती सिंघा

पूर्व काल से ही इस महाद्वीप में रामकथा कला, संस्कृति, समाज सभी क्षेत्रों में मौजूद है। रामकथा की बात करें तो वाल्मीकि रामायण पहले सामने आता है, परन्तु वाल्मीकि रामायण के अलावा अन्य लोकप्रिय रामायण जैसे तमिल के 'इरामावतारम' या 'कम्ब रामायण', तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस', बांग्ला की 'कृत्तिवास रामायण', असमिया के माधव कन्दलि की रामायण भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में प्राप्त हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में रामायण का अनूदित रूप, पुनःप्रतिपादन या पुनःर्वाचन आमतौर पर दृष्टिगत होता है। पूर्वोत्तर भारत में मणिपुर जैसे वैष्णव प्रधान राज्य में रामायण हो या राम से जुड़ी रामकथा हो वो अछूता नहीं है। मणिपुरी रामायण के लिखित ग्रन्थ या मौखिक गायन कथा कला के माध्यम से एक उदाहरण लें तो वह है– वाड़ी लीबा। वाड़ी लीबा मणिपुरी रामकथा परम्परा में एक प्रसिद्ध कथा कला है। यह परम्परा आज भी प्रचलित है। यह एक ऐसी कथा कला है जिसे मौखिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

18वीं शताब्दी से आज तक मणिपुरी साहित्य में रामकथा पद्धति प्रचलित है जिसका समाज पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है। रामकथा मणिपुर के लोगों के लिए सांस्कृतिक विरासत का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस परम्परा को बनाये रखने के लिए वाड़ी लीबा कला का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जो एक सशक्त माध्यम बन पड़ा है। इस कला के सहारे रामकथा का आज भी प्रचार-प्रसार हो रहा है। इस कला ने ही रामकथा की मौजूदगी का अहसास कराया है और लोगों तक इसके आदर्शों और सार को पहुँचाया है। वाड़ी लीबा रामकथा ने मणिपुरी समाज में कैसा रूप लिया है यही इस अध्ययन का महत्त्व है।

पूर्वोत्तर भारत के मणिपुर में रामकथा एक सांस्कृतिक विरासत का रूप ले चुकी है। रामकथा परम्परा सन् 18वीं शताब्दी से अब तक मणिपुरी साहित्य और संस्कृति में प्रचलित है जिसका प्रभाव समाज के कई पहलुओं पर पड़ा। महाराज गरीबनवाज (1709-1748 ई.) के द्वारा रामजी प्रभु मन्दिर में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीता की प्रतिमूर्ति और महाबली मन्दिर में हनुमान की प्रतिमूर्ति की स्थापना के पश्चात् रामकथा परम्परा आज भी प्रचलित है। साहित्यक या लिखित रूप में लें तो बांग्ला के कृत्तिवास रामायण का प्रभाव मणिपुर की रामकथा पर पड़ा। कई राजाओं के शासन के दौरान विभिन्न विद्वानों के द्वारा रामायण का मणिपुरी अनुवाद हुआ। महाराज गरीबनवाज के निर्देश पर क्षेमा सिंह और अन्य पाँच लोगों के द्वारा कृत्तिवास रामायण के सात काण्डों का मणिपुरी अनुवाद हुआ। सन् 1713 ई. में एक अन्य प्रसिद्ध विद्वान पण्डित अंगोम गोपी ने मुरारी के साथ 'बिरबहु तुबा' (The fall of Birbahu) का अनुवाद किया। मणिपुर में ऐसी और भी कई रामकथाएँ लिखित रूप में प्राप्त हैं।

वाड़ी लीबा कला की बात करें तो इस कथा कला का रूप राजा खागेंबा के शासनकाल (सन् 1598-1652 ई.) के दौरान विकसित हुआ। लेकिन पूर्ण रूप से महाराज भाग्यचन्द्र के दौरान सन् 1775 ई. में इस कला की शुरुआत हुई। आज यह एक प्रसिद्ध माध्यम बन गया है जिसके ज़रिये वैष्णव ग्रन्थों से जुड़ी कथाओं-धारणाओं का लोगों के बीच आसानी से प्रसार हो रहा है।

इस अध्ययन में व्याख्यात्मक एवं आलोचनात्मक पद्धतियों का समावेश है। अध्ययन के लिए इंटरनेट, किताबों आदि का सहारा लिया गया है।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह है कि आज मणिपुरी समाज में वाड़ी लीबा कला कितनी महत्त्वपूर्ण है। मणिपुरी समाज में इसका विकास कहाँ तक हुआ है और आज के सन्दर्भ में यह कितनी प्रासंगिक है।

वाड़ी लीबा एक ऐसी कथा कला है जिसके द्वारा रामायण, महाभारत व हिन्दू पुराणों की कहानी व प्रसंगों को बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें एक वाचक रहता है जो मौखिक कला से कहानी का वाचन करता है। कथावाचक ग्रन्थों से प्रसंगों को इशारों और नियन्त्रित आवाज़ के माध्यम से उपयुक्त भावनाओं को दर्शकों तक पहुँचाता है। कथावाचक बोलचाल की मेइतईलोन भाषा के साथ रूपकों का प्रयोग करता है। वाचक उपयुक्त आवाज से भावनाओं को लोगों के बीच पैदा करता है। वह मेइतईलोन के मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग करता है। दर्शकों को आकर्षित करने के लिए संस्कृत और बंगाली के शब्दों व श्लोकों का भी भरपूर प्रयोग किया जाता है जैसा कि पूर्ववर्तियों द्वारा सिखाया जाता है। मुहावरे, श्लोक और लोकोक्तियों का समन्वय दो संस्कृतियों में वैष्णव भाव के समन्वय का प्रतीक है। एक मशहूर विद्वान इलांगबम नीलकण्ठ सिंह ने लिखा था–

"वाड़ी लीबा जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है। वाड़ी लीबा बड़े ही उत्साह और रचनात्मक कल्पनाओं के साथ रामायण के प्रसंगों को बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है और लोगों को हँसाता है, रुलाता है और आकर्षित करता है।"

तकनीकी तौर पर वाचक कथा को नाट्य रूप में प्रस्तुत करता है। रामायण के हर एक पात्र को वह अपने अन्दर ले लेता है और उसी पात्र के चरित्र के ज़रिये वाचन करता है। वाचक 'फक' (reed mat) पर बैठता है। एक 'लैरिक फान' (small table for keeping the holy book), 'पाना-क्वा' (betel leaf and nut), 'हैरुक-हैरांग' (offerings of fruit and flowers) और साथ में एक 'दीया वाचक' के सम्मुख रखा जाता है। इसका प्रदर्शन ज़्यादातर मन्दिरों में होता है जिन्हें 'मान्दोप' कहा जाता है। इसका प्रदर्शन ज़्यादातर 'कालेन' (may-june) और 'मेड़ा' (October-November) महीनों में होता है। वैष्णव भक्त ही यहाँ ज़्यादा उमड़ते हैं। इसका प्रदर्शन मणिपुरी शादियों, स्वस्ती पूजा (6th day after the birth of a child), नाहुत्पा (ear piercing ceremony) और मृत्यु वर्षगाँठों में होता है। कभी-कभी इसका प्रदर्शन आम जनता के बीच भी होता है।

वाड़ी लीबा परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है गुरु-शिष्य परम्परा। इस कला को सीखने के लिए कोई स्कूल या शिक्षण संस्थान नहीं था। इसे सीखने के लिए गुरु के घर ही जाना पड़ता था। इस कला का माध्यम ही मौखिक है जिसके लिए ख़ूब अभ्यास की ज़रूरत होती है। अधिकतर वाचक सुन्दर काण्ड विषय पर विशिष्ट ज्ञान रखते हैं और इस तरह से इसका प्रदर्शन मणिपुरी समाज में होता है। इसी कला माध्यम के ज़रिये रामकथा से जुड़ी विभिन्न मान्यताओं, मतों व आदर्शों का प्रदर्शन चलता रहता है।

उपलब्धियाँ

मणिपुर में कृत्तिवास रामायण के बांग्ला रूप को राजा गरीबनवाज के दौरान अपनाया गया जिसका मणिपुरी में अनुवाद हुआ। इसका मणिपुरी अनुवाद बंगाली लिपि में प्रस्तुत किया गया। राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान को नये धार्मिक संस्कारों द्वारा परिवर्तित किया गया। इस दृष्टि से देखें तो आज वाड़ी लीबा जैसी मौखिक कथा कला ने समाज में एक मुख्य स्थान बना लिया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि वाड़ी-लीबा आज मणिपुरी समाज का एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा रामकथा ही नहीं अपितु विभिन्न धार्मिक कथाएँ, मान्यताएँ, आदर्श, मत एवं विभिन्न मितई परम्परा को वाचन कला के ज़रिये समाज में प्रदर्शित किया जाता है। वाड़ी लीबा एक माध्यम ही नहीं समाज का एक सम्बन्ध-सूत्र बन गया है जो आज प्रासंगिक भी है।

मणिपुर में रामभक्ति आन्दोलन

प्रो. ह. सुवदनी देवी

भक्ति आन्दोलन भारतीय साहित्य का महत्त्वपूर्ण आन्दोलन है। यह आन्दोलन जहाँ एक तरफ़ पूरे भारत में भक्ति के व्यापक प्रचार का उपक्रम बनता है वहीं दूसरी तरफ़ अपने सामन्ती समाज से सजग सार्थक संवाद भी स्थापित करता है। भक्ति का बीज वेद और उपनिषद् में है। भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज' धातु से हुई। इसका अर्थ है भाग लेना। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भक्ति भावना आर्यों के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों के फलस्वरूप क्रमशः श्रद्धा उपासना से विकसित होकर उपास्य भगवान के ऐश्वर्य में भाग लेना है। महाभारत और श्रीमद्‌भागवत के माध्यम से भक्ति रूपी यह बीज विकसित और स्थापित हुआ। 'गीता' के माध्यम से भक्ति की भावना प्रतिष्ठापित हुई और भागवत महापुराण ने इसका प्रचार और प्रसार किया। शांडिल्य नारद तथा अंगिरा के दार्शनिक ग्रन्थों से यह भक्ति भाव सुदृढ़ हुआ। दक्षिण के आलवारों, शंकर, रामानुज, माधवाचार्य, बल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने अपने वैदुष्य, प्रतिभा और आभामण्डल से भक्ति की इस परम्परा को आलोकित किया। छठी से नवीं शती का समय तमिल साहित्य में भक्तिकाल का समय माना गया है। दक्षिण में भक्ति आन्दोलन के प्रादुर्भाव में आलवार सन्तों की महती भूमिका है। इन आलवार सन्तों ने नाम संकीर्तन रूपी भक्तिधारा से दक्षिण को रससिक्त कर भक्ति की मधुर हिलोर उत्तर की ओर बहायी। ये राम और कृष्ण भक्त थे। आलवारों के साहित्य में 'मायोन' और 'तिरूमान' शब्द को भी विष्णु का पर्याय बतलाया गया है। इस तरह 'मायोन', 'तिरूमान' एवं भगवान ही मध्यकालीन भक्ति परम्परा का मुख्य प्रेरणास्रोत बने। भक्ति में रागात्मकता, शरणागति और समर्पण का भाव महत्त्वपूर्ण है। 12वीं शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक यह वैष्णव धर्म के नाम से उत्तरी भारत में फैल गया। वैष्णव धर्म के उपास्य देव वासुदेव हैं जिन्हें ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य, ऐश्वर्य और तेज छह गुणों से सम्पन्न माना जाता है इसलिए इन्हें भगवान या भगवत् कहा जाता है। इन्हीं भगवान के उपासक भागवत कहलाते हैं। यह वासुदेव नाम स्मरण एक वैचारिक क्रान्ति का उदय था जिसका उद्‌देश्य मानवीयता, उदारता, अहिंसा और सदाचार का प्रचार तथा भगवान की भक्ति था। इस तरह भक्ति आन्दोलन दक्षिण भारत से शुरू हुआ। यह आन्दोलन धीरे-धीरे उत्तर भारत के राज्यों जैसे—बंगाल, असम, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र एवं मणिपुर आदि राज्यों में फैलते हुए पूरे भारत में छा गया। वैष्णव भक्ति का वैशिष्ट्य अनेक रूपों में समाज में प्रतिबिम्बित हुआ। प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और उदार दृष्टि उस भक्ति का आधार थी। भक्ति सम्बन्ध हृदय से है और समस्त मानव जाति के हृदय में भक्ति भाव जाग्रत करना उसका लक्ष्य था। अहिंसा वैष्णव धर्म का दूसरा तत्त्व है। वैष्णव धर्म के आचार्यों ने भक्ति रस की स्थापना में सर्वाधिक योग दिया है।

मणिपुर में वैष्णव परम्परा बंगाल से होते हुए आयी। बंगाल की वैष्णव परम्परा में 12वीं सदी से जयदेव की गीति परम्परा का प्रभाव बंगाली भक्ति साहित्य पर दिखाई देता है। 'चैतन्य भागवत', 'चैतन्य चरितामृत' और रूप गोस्वामी की रचनाएँ गीतगोविन्द का अनुकरण कर रची गयी कृतियाँ हैं। 14वीं सदी के कवि विद्यापति की गीति परम्परा का प्रचार-प्रसार बंगाल, असम और उड़ीसा में हुआ। बंगाल के भक्ति सम्बन्धी दर्शन को साहित्य में प्रस्तुत करने के लिए ब्रह्म संहिता, कृष्णकर्णामृत (बिल्वमंगल), मुक्ताफल (बापदेव), विष्णु भक्ति रत्नावली, श्रीमद्भागवत टीका (श्रीधर स्वामी) तथा नाम कौमुदी (लक्ष्मीधर) को आधार बनाया गया है।

राजा गरीबनवाज (1709-1748) के राज्यकाल में मणिपुर में वैष्णव धर्म एक प्रबल प्रवाह के रूप में बहा। इस राजा के राज्यकाल में वैष्णव धर्म का विकास काफ़ी सीमा तक हुआ जिसके परिणामस्वरूप वैष्णव धर्म को राज्य का धर्म बनाया गया। राजा गरीबनवाज के पहले मणिपुर का राज्य धर्म सनामही था। राजा गरीबनवाज के राज्यकाल में श्रीहट ज़िले से नरसिंह और टिल्लाद से शान्तिदास गोसाईं अपने सेवक भगवानदास और नारायणदास के साथ मणिपुर आये। राजा ने इनका स्वागत किया। शान्तिदास गोसाईं से राजा ने सबसे पहले रामानन्दी धर्म की दीक्षा ली। साथ ही इन्होंने रामानन्दी धर्म को राज्य धर्म घोषित किया। शान्तिदास गोसाईं ने रामानन्दी धर्म को सबसे पवित्र, उत्तम, बल एवं शान्तिसम्पन्न धर्म बताया। असल में इस धर्म को अपनाने का अर्थ है एक उत्तम क्षत्रिय बनना। अतः राम की आराधना करना इस धर्म में परम आवश्यक बताया है। इसी कारण राजा पामहैबा यानी राजा गरीबनवाज ने सन् 1699 के माघ महीने की पूर्णिमा (बुधवार) के दिन उपनयन संस्कार करवाकर इस धर्म की दीक्षा ली और सारी प्रजा को भी इस धर्म में दीक्षा लेने का आदेश दिया। रामानन्दी धर्म को पूरे राज्य का धर्म घोषित किया। इसके पश्चात् पूरे राज्य में रामानन्दी धर्म का प्रचार बड़े ज़ोर-शोर से होने लगा। महाराज गरीबनवाज के शासनकाल की एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना यह भी थी कि इस देश का नाम 'कङलैपाक' था जिसे 'मणिपुर' नाम दिया गया था। यह घटना मणिपुर के इतिहास के पन्नों में काले अक्षरों से अंकित है। सन् 1729 ई. में आषाढ़ महीने की द्वादशी (रविवार) के दिन एक बड़े स्मारक पत्थर से हनुमान की मूर्ति, श्रीराम की मूर्ति, लक्ष्मण की मूर्ति साथ-ही-साथ कालिका की मूर्ति का भी निर्माण किया गया। श्रीराम, लक्ष्मण, सीताजी की मूर्तियों को राजा के राजमहल कङला की उत्तर पूर्वी दिशा में स्थित एक स्थान पर मन्दिर का निर्माण करके स्थापित किया गया। उस मन्दिर का नाम 'रामजीप्रभु मन्दिर' रखा गया। इस मन्दिर के पूर्व में एक बड़ा पोखर खुदवाया गया जो 'निङथेम पुख्री' कहलाया। कङला के पूर्व दक्षिण में इम्फाल नदी के किनारे 'मोङबहनब' नामक स्थान पर हनुमान मन्दिर का निर्माण किया गया। उस मन्दिर का नाम 'हनुमान मन्दिर' रखा गया। इस मन्दिर के निर्माण के बाद मोङबहनब नामक स्थान को 'महाबली' के नाम से पहचानने लगे। इस तरह राजा ने राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न एवं सीता की मूर्तियों का अभिषेक किया। महाबली में मन्दिर बनवाकर सन् 1729 में कार्तिक के 11वें दिन से हनुमान जी की पूजा मणिपुर में शुरू हुई। इस तरह गरीबनवाज के समय मणिपुर में रामजी की पूजा रामजी प्रभु मन्दिर में और हनुमानजी की पूजा हनुमान मन्दिर में शुरू हुई। इसके साथ-साथ राम नवमी, हनुमान जयन्ती, विजय दशमी (क्वाक यात्रा) आदि धूमधाम से मनाये जाने लगे है। राजा गरीबनवाज के समय रामायण, महाभारत आदि पुराणों और बांग्ला भाषा के धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर धार्मिक पाठ शुरू हुआ। राजा गरीबनवाज के समय पुरानी मणिपुरी भाषा में रामायण लिखना भी शुरू हुआ।

उदाहरण—

प्राचीन मणिपुरी—

शागै पुम्नमकना शीङेल लैचननबा ओइबा
चीङङू लीकलाई लैरेम्बबु ओइनबा,
दशरथ निङथौ मपारी अहेनबा
पलेम ममा पोकचबी
सती कौशल्या निङथिबिना नुङाइबा,
चिङलेन मीकोय थोङबु,
थम्बाल लैराङ लैगुम्बा।।

हिन्दी अनुवाद—

सारे वंश का मनमोहित पुष्प
देवों का देव
राजा दशरथ का श्रेष्ठतम कुमार
माँ जननी
सती कौशल्या का आनन्द कुशल
सुनाम है आपका
अरविन्द पुष्प जैसा

राजा गरीबनवाज के समय अङोम गोपी ने 'कृत्तिवास रामायण' का मणिपुरी भाषा में अनुवाद किया। वस्तुतः यह अनुवाद नहीं है, मौलिक रचना है।

प्राचीन मणिपुरी—

रघुवंश शागै पुम्नमक की
लाइबक खेल्लाइ थोङदा
शीङलेन चन्दन लैबु ओइनरिबा
चीङङू लिकलाङ सुमेरू
दशरथि अहेनबा
× × ×
चीङू रघु राम नामुङबा
सना नखोङखादा
राम राम शोनना पुरूमगे।

(लंका काण्ड)

हिन्दी अनुवाद—

सभी रघुवंश के
सुन्दर मस्तक स्थल पर,
श्रेष्ठ सुगन्धित चन्दन जैसा,
पर्वतों में सुमेरु जैसा,
राजा दशरथ नन्दन
श्री दाशरथि श्रेष्ठतम

× × ×

देवों के देव श्रीराम
तेरे श्री चरणों में
राम-राम जपते प्रणाम करूँ।

(लंका काण्ड)

इस तरह अङोम गोपी ने राजा गरीबनवाज के समय (सन् 1709-1748) कृत्तिवास रामायण का अनुवाद किया। अङोम गोपी ने 'परीक्षित' नामक ग्रन्थ भी लिखा। इस ग्रन्थ को इन्होंने गंगादास सेन द्वारा रचित महाभारत को देखकर लिखा था। लेकिन अनुवाद नहीं था मौलिक ग्रन्थ था। 'रामनोङगाबा' नामक ग्रन्थ को कवि लबंग सिंह कौनथौजम्ब ने लिखा है।

उदाहरण–

वाल्मीकि महा मुनिरेनगी
चीनगोइ मयाथङना
पुरान लाइरिक अचौबदा वाइनलिए
रामायण मशा तरुक शुना हौखिबा
उत्तरकान्द मशा अकोनबा
वारी ममै हुइथरकपदा
विष्णु श्याम अहेनबना
कोरौ नोङगाखिबा मतिक

हिन्दी अनुवाद–

वाल्मीकि महा कवि की रचना
राजा के आदेशानुसार
पुराण महाग्रन्थ का अनुवाद
रामायण के छह काण्ड
उत्तर काण्ड अन्तिम काण्ड
कथा का अन्तिम भाग
श्रेष्ठ श्याम रंग विष्णु
स्वर्गवास होने की बात ऐसी

मणिपुर का जनमानस आज भी महाबली में स्थित हनुमान मन्दिर और वांखे में स्थित रामजी प्रभु के मन्दिर में दर्शन व पूजा करने जाता हैं। हर साल रामजी प्रभु मन्दिर में राम नवमी, सीता नवमी, क्वाक यात्रा आदि का आयोजन बड़े धूमधाम से होता है। राम नवमी उत्सव चैत्र नवमी के दिन आयोजित किया जाता है। इस दिन राम का जन्म हुआ था। इस दिवस को आयोजित करने के लिए चैत्र की अष्टमी से पूजा अर्चना प्रारम्भ होती है। इस दिन की तैयारी सन्ध्या बेला में आदिवासी करते हैं। पूरी रात प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं। इसके बाद कीर्तन होता है। कीर्तन रामायण राग से प्रारम्भ होता है। रामजी प्रभु के अभिषेक के पश्चात् उन्हें नये वस्त्र धारण कराते हैं। भगवान राम के सिंहासन पर आसन ग्रहण करने के पश्चात् आरती होती है और यज्ञ में अन्तिम आहुति प्रदान करते हुए यज्ञ को अन्तिम चरण दिया जाता है।

मणिपुर में दशहरे के पाँच दिन पहले से ही रामायण का कथावाचन शुरू हो जाता है। विजय दशमी को मणिपुर में क्वाक यात्रा कहते हैं। क्वाक का हिन्दी पर्याय कौवा है। कौवे का रंग काला होता है। काले को अपशकुन माना जाता है। क्वाक यात्रा को क्वाक तानबा भी कहते हैं। क्वाक तानबा का अर्थ है क्वाक को भगाना अर्थात् बुरे को भगाना या नष्ट करना। इसी दिन गोविन्दजी के मन्दिर से भाला, छाता, शंख-वादन करने वाले के संग कीर्तन के साथ श्रीराम, लक्ष्मण, हनुमान जी की मूर्ति को मन्दिरों में से लेकर दुर्गा पूजा के आयोजन स्थल तक ले जाते हैं। वहाँ आसन सजाकर श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान जी की मूर्तियों को स्थापित करते हैं। विधिवत रूप से राजा और राजा के सेनापति भगवान राम की पूजा करते हैं, आशीर्वाद लेते हैं, राजा अपने मुकुट को श्रीराम और लक्ष्मण के आसन के सामने रखते हैं और राम जी को भोग लगाते हैं। भोग में 108 तरकारियाँ होती हैं। फल और फूल के साथ भगवान राम की आरती की जाती है। राजा के संग सेनापति भगवान श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान जी की मूर्तियों की परिक्रमा और आराधना करते हैं। अन्त में श्रीराम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान जी की मूर्तियाँ मन्दिर में पुनः वापस ले जायी जाती है। दुर्गा पूजा के पहले दिन गेहूँ तथा धान के बीज पुण्य पात्र में मिट्टी डालकर रखे जाते हैं और उसे क्वाक यात्रा के दिन निकालकर देखा जाता है, इससे यह पता चलता है कि आने वाले साल में सुख-समृद्धि, फसलों की पैदावार कैसे होगी।

हनुमानजी के मन्दिर में हर मंगलवार हनुमानजी के दर्शन एवं पूजा करने के लिए लोग आते हैं। मंगलवार को मणिपुरी भाषा में लैबाकपोकपा कहते हैं। हनुमानजी की पूजा के लिए लैबाकपोकपा यानी मंगलवार का दिन बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। महाबली के हनुमान मन्दिर में हर साल हनुमान जयन्ती का आयोजन किया जाता है। यह आयोजन चैत्र की पूर्णिमा को आयोजित किया जाता है। हनुमान जयन्ती के दिन सुबह की पूजा होने के पश्चात् हनुमान जी को रथ में विराजमान करके यात्रा निकाली जाती है और हनुमानजी के दर्शन करते हैं। हनुमान सम्बन्धी कई लोक विश्वास भी प्रचलित हैं। सात बार लगातार महाबली मन्दिर जाकर हनुमान ठाकुर के दर्शन करने से सभी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं। यह लोक विश्वास भी है कि मन्दिर की तीन, सात बार या 108 परिक्रमा करने से बच्चों के शरीर में ताक़त आती है। बन्दरों की जूठन या प्रसाद बच्चों को खिलाने से बच्चों को बीमारी नहीं होती आदि।

मणिपुर में महाभारत, रामायण का कथावाचन राजर्षि भाग्यचन्द्र महाराज (1763-1798) के शासन से शुरू हुआ। उन्होंने अपने समय में श्री श्री गोविन्द जी के नाट्य मन्दिर में वाचस्पति कथावाचक श्री जिउराम शर्मा नामक एक ब्राह्मण जो तेखाओ के निवासी थे, के मुख से मणिपुरी कथावाचन का श्रीगणेश कराया था। उसी समय से मणिपुर में कथावाचन की यह कला विकसित हुई और अनुकूल वातावरण पाकर फलती-फूलती गयी। आज भी यह कला किसी-न-किसी रूप में हमारे बीच मौजूद है।

इस तरह मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से मणिपुर के मेइती लोगों में अपने पुराने सनामही धर्म के साथ रामभक्ति का प्रचार हुआ। यह परम्परा अभी तक चल रही है। मणिपुर के लोग श्रीराम और हनुमान जी के परम भक्त हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्ययन', उदयाचल प्रकाशन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2002
2. प्रेमशंकर, 'भक्ति काव्य भूमिका' रा.कृ. प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 1977, पृ. 99
3. डॉ. एम. कृति, 'रिलीजन डेवलपमेंट इन मणिपुर', 1981, पृ. 120-122
4. श्री निङ्थौखोंजम खेलचन्द्र एवं लाइरेनमयुम इबुङोहल सिंह, 'चैथारोल कुम्बाबा', इम्फाल, 1967
5. कलाचन्द शास्त्री, 'असम्बा मणिपुरी साहित्यगी इतिहास इम्फाल', 1973, पृ. 101
6. निङ्थौखोंजम खेलचन्द्र सिंह, 'अरिबा मणिपुरी साहित्य का इतिहास', 1969
7. कृष्णदत्त पालीवाल, 'भक्ति काव्य से साक्षात्कार' भारतीय ज्ञानपीठ, 2007, नयी दिल्ली
8. शिवकुमार मिश्र, 'भक्तिकाव्य और लोकजीवन', पीपुल्स लिटरेसी, 1983
9. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'भक्ति काव्य यात्रा', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, 2003
10. मैनेजर पाण्डे, 'भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2003
11. डॉ. नन्दकिशोर पाण्डेय, 'संत रज्जब', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007
12. आर.के. झलाजित, 'ए हिस्ट्री ऑफ़ वैष्णविज्म ऑन द लिटरेचर ऑफ़ ईस्टर्न इंडिया', साहित्य परिषद्, इम्फाल, 1985
13. एच. रणवीर सिंह, 'एन्फ्लुएंस ऑफ़ वैष्णविज्म ऑन द लिटरेचर ऑफ़ ईस्टर्न इंडिया', मणिपुरी साहित्य परिषद्, इम्फाल, 1985
14. चौ. मनिहार सिंह, 'ए हिस्ट्री ऑफ़ मणिपुरी लिटरेचर', साहित्य अकादेमी, दिल्ली, 2003
15. 'हिस्टोरिकल एंड कल्चरल रिलेशन बिटबीन मणिपुर, असम एंड बंगाल', मणिपुरी साहित्य परिषद्, इम्फाल, 1986

मिजो रामायण एवं मिजोरम के समाज का अन्तःसम्बन्ध : एक अनुशीलन

प्रो. दिनेश कुमार चौबे

भारतीय साहित्य की एकता से परिचित होना तभी सम्भव होता है जब हम उसे अनेकता या भारतीय साहित्य की विविधता के सन्दर्भ में देखते हैं। भारतीय चिन्तन पश्चिमी विचारधारा के विपरीत समन्वयवादी दृष्टि में विश्वास करता है जिसके फलस्वरूप एकता-अनेकता जैसे विरोधी तत्त्वों को एक-दूसरे के सम्परिपूरक के रूप में स्वीकार करना सहज हो जाता है और स्थानीय, प्रादेशिक तथा सर्वभारतीयता एवं राष्ट्रीय अस्मिता में एक जीवन्त सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव हो जाता है। भारतीय साहित्य अपनी एकता विविधता को स्वीकार करते हुए इस सम्बन्ध को दर्शाता है और यही विश्व को भारत की देन है। अनेकता या विविधता से एकता की ओर ले जाने वाला यह स्वरूप भारत की अनन्यता है। भारतीय साहित्य में हमें विषय-वस्तु की एकता मिलती है और शैली की विभिन्नता भी, साथ ही सांस्कृतिक विशिष्टतायों का एक वैविध्यमय संसार तथा साहित्यिक परम्पराओं की एकता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। लेखकों द्वारा अनवरत खोजबीन से प्राप्त तथ्यों के अनुसार भारत एक वैविध्यमय देश है जो बहुत-सी जातियों, सभ्यताओं, प्रदेशों, धर्मों तथा भाषाओं का समाहार है। इसके किसी एक भाग का आविष्कार दूसरे भाग की खोज के लिए हमें मार्ग दर्शाता है। हिन्दी का भक्तिकाल हमें अन्ततः तमिल अख़बारों तक पहुँचा देता है और इस प्रकार एक सम्पूर्ण भारत का पता लगता है। भक्ति काव्य जोड़ने का काव्य है जो भक्त को ईश्वर से मिलाता है। मिलन का आधार प्रेम है। सांसारिक प्रेम बाँधता है, किन्तु भक्त का भगवान के प्रति प्रेम उसे सांसारिकता से मुक्त कर अनन्तता की ओर ले जाता है। भक्ति का आदर्श बन्धनहीनता है। लौकिक प्रेम काम है, भक्ति ईश्वरीय प्रेम है, आनन्दात्मक खुलेपन की अनुभूति है जो व्याख्यायित यथार्थ की ओर संकेत करती है। भक्ति आन्दोलन के कुछ सर्वभारतीय तत्त्व जैसे—ईश्वर का गृहस्थीकरण, मनुष्य का ईश्वर से प्रेम, सशक्तीकरण का काव्य होने के साथ क्रियात्मक पद्धति का प्रोत्साहन, स्त्री-पुरुष, सवर्ण-दलित भाव से ऊपर उठकर सामान्य भाषा का प्रयोग, जाति-प्रथा का विरोध, कवि और सन्त में अभेद आदि उल्लेखनीय हैं। भक्ति साहित्य अनेक भाषाओं में रचा गया है। भाषा भेद के कारण इनमें अन्तराल बना हुआ है। इस अन्तराल को दूर करने में तुलनात्मक अध्ययन की भूमिका का अपना महत्त्व है। भाषाएँ भिन्न होने पर भी साहित्य में समानता है। यह समानता विषय-वस्तु और प्रयोजन को समझने पर स्पष्ट हो सकती है। उदाहरणार्थ—रामकथा अनेक भाषाओं में लिखी गयी है। रामकथा की विषय-वस्तु को केन्द्र में रखकर अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग कालों में लिखी गयी, सभी साहित्यिक सामग्रियों को एक क्रम में रखकर उसका अध्ययन फ़ादर कामिल बुल्के ने किया है। भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं में 'रामकथा' के अलग-अलग रूप हैं। इन सबको स्वतन्त्र रूप में जानने और अन्य भाषाओं में उपलब्ध रूपों के परिप्रेक्ष्य में उन्हें पहचानने से सामान्य

और विशेष दोनों का बोध हो सकता है। साहित्य का अध्ययन अन्ततः विशेष का ही अध्ययन है। विशेष की पहचान हो जाये तो हमें साहित्य की गहराई और उसके निजी रूप का ज्ञान होगा। इस दृष्टि से यहाँ मिजो भाषा में रामाख्यान अध्ययनीय है।

भारतीय साहित्य में अनादि काल से राम और रामकथा का महत्त्व मान्य है। रामकथा का मूल स्रोत आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण है। विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं में उसी कथा के आधार पर सैकड़ों रामायण लिखी गयी हैं। आज भी रामकथा विषयक अनेक नयी रचनाएँ विभिन्न भाषाओं में हो रही हैं। पूर्वोत्तर भारत भी इससे अछूता नहीं है। पूर्वोत्तर भारत में रामाख्यान आधारित लोक-रचनाएँ, लोक कथाएँ, लोक-गीत विभिन्न जनजातीय भाषाओं एवं विभाषाओं में पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—

असमिया रामायण, कार्बी रामायण, खामति रामायण (लिक-चाउे लामाङ), बोडो रामायण, त्रिपुरी रामायण, गारो रामायण आदि। राम से सम्बन्धित लोक कथाएँ, पूर्वोत्तर भारत की सभी भाषाओं-उपभाषाओं में उपलब्ध हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि सभी जनजातियों में राम से सम्बन्धित लोक कथाओं के रूप में विविधता है। यह विविधता उनके सामाजिक-सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को दर्शाने में सक्षम है। यहाँ मिजो भाषा में उपलब्ध रामाख्यानों का विवेचन अभीष्ट है।

अन्य भारतीय भाषाओं की तरह मिजो भाषा में रामायण से सम्बन्धित अधिक प्रसंग मिजो लोककथाओं में पाये जाते हैं। यहाँ रामाख्यान से सम्बन्धित लोककथाओं के माध्यम से रामायण के मिजो साहित्य में उपलब्ध स्वरूप को परखा जा सकता है। मिजो में रामकथा का मुख्य स्रोत 'मिजो लेह वाइक थोन थू' (मिजो एंड नॉन मिजो टेल्स) जे. शेक्सपियर द्वारा सम्पादित पुस्तक है जिसमें दस कथाएँ संकलित हैं। इसमें एक कथा खेना और राम की वर्णित है।

मिजो में उपलब्ध रामायण में वर्णित कुछ पात्र तो रामायण के हैं, जैसे—राम और सीता। किन्तु कुछ रूपान्तरित हैं—खेना, हावलावमान, वावम्नुमान, लुफिराबन और लुसारिहा—जिन्हें मूल पात्रों के समकक्ष क्रमशः रखा जा सकता है—लक्ष्मण, हनुमान, जाम्बन्त, महिरावण और रावण। रामायण के कुछ पात्र इसमें वर्णित नहीं हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि लुसारिहा (रावण) के सात सिरों का मिजो भाषा में उल्लेख है जो दशानन से भिन्न अवधारणा है।

मिजो रामाख्यान के प्रमुख प्रसंग

मिजो रामाख्यान संक्षिप्त है किन्तु प्रायः सभी प्रमुख प्रसंग इसमें वर्णित हैं, कुछ उल्लेखनीय प्रसंग हैं—

1. राम और उनके भाई खेना जुड़वे हैं। जन्म के पूर्व वे गर्भ में बात कर रहे हैं। ताउनू (ड्रेगन की तरह नारी आत्मा जो मानव प्राणी को बुरी आत्मा में बदल देती है) के डर से उनका प्राकृतिक रूप से जन्म नहीं हुआ, ताउनू से बचने के लिए उन्होंने अपनी माँ के पैरों से जन्म लिया जिसके फलस्वरूप वह मर गयी और वे स्वयं पले-बढ़े।

2. जब वे दोनों बड़े हुए तो जल पीने आये स्वर्णिम हिरन का शिकार किया। उस समय एक बुलबुल पक्षी का जोड़ा जो पानी पीने की प्रतीक्षा कर रहा था, ने राम और उनके भाई पर यह आरोप लगाया कि वे दोनों दुर्बल जीवों के प्रति दया के भाव नहीं रखते। इसलिए वे दोनों इसका विरोध जताने के लिए समुद्र के पार रहने वाले लुसारिहा (रावण) के पास जाने का निर्णय लेते हैं। रास्ते में वे देवताओं के सात भाइयों के विवाद में पड़ जाते है—जहाँ विवादित मुद्‌दा था कि पिता की मृत्यु के पश्चात उत्तराधिकारी कौन होगा। कई लोगों के अनुरोध पर राम इस समस्या का समाधान करते हैं।

इस तरह बड़े भाई के दूसरे भाइयों का अभिभावक बनने और पैतृक सम्पत्ति पर छोटे भाई के अधिकार की परम्परा शुरू हुई।

3. एक दिन-देवकन्या अँधेरे में राम के तालाब में पानी भरने आयी और ग़लती से उसे मृग समझकर दोनों भाइयों ने तीर चला दिया जिससे वह घायल हो गयी। उसके प्रायश्चित्त के लिए दोनों को तीन वर्ष तक उसकी सेवा करने का आदेश दिया गया, बाद में इस सेवाकाल को आठ माह कर दिया गया।

4. जब दोनों भाई बड़े हुए तो सुना कि दूर किसी देश में सीता नामक सुन्दरी है जिसे एक लोहे के बक्से में रखा गया है। उसके विवाह के लिए शर्त रखी गयी है कि जो उस भारी बक्से को उठा लेगा उसी के साथ सीता का विवाह कर दिया जायेगा। अनेक प्रतिभागियों ने दूर-दूर से आकर उस बक्से को उठाने का प्रयास किया किन्तु सफल न हो सके। अन्त में राम उस भारी सन्दूक़ को उठाने में सफल हुए और सीता से विवाह किया।

5. लुसारिहा ने स्वर्ण मृग बनकर सीता को आकर्षित किया। सीता के अनुरोध पर राम मृग को पकड़ने के लिए दौड़े किन्तु वापस नहीं लौटे। सीता के अनुरोध पर खेना अपने भाई की तलाश में गये। देवताओं द्वारा उन्हें राम की मृत्यु का समाचार मिला और वे राम का शव लेकर वापस आये। तत्पश्चात विशेष वनस्पति के पत्तों और पानी से उन्हें जीवित किया। राम के द्वारा सीता के बारे में पूछे जाने और लक्ष्मण के चुप रहने पर राम ने कई तरह के प्रश्नों से लक्ष्मण की परीक्षा ली। इसमें राम-लक्ष्मण का कथोपकथन एक सामान्य व्यक्ति की तरह हुआ है।

6. राम और खेना जब घर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें हावलावमान मिले जो अपने बड़े भाई से प्रताड़ित थे। दोनों भाइयों ने उनको मुक्त कराया और बाद में वे दोनों भाइयों के मित्र बन गये।

7. एक दिन राम और खेना की अनुपस्थिति में लुसारिहा भिखारी बनकर आया और भीख माँगने के बहाने सीता का हरण कर समुद्र के पार दूसरे देश में ले गया।

8. सीता की खोज के दौरान राम, खेना और हावलावमान तथा उनके रक्षक जंगल में भटकते रहे। इसी बीच लुफिरावन (रावण का पुरोहित) राम और खेना को बलि देने के लिए दूर ले गया किन्तु हावलावमान ने सही समय पर पहुँचकर लुफिरावन से राम और खेना की रक्षा की, जब वह उन दोनों भाइयों की 'तुइफूल' को बलि चढ़ाने वाला था।

9. इस घटना के पश्चात हावलावमान ने अकेले लुसारिहा के नगर पहुँचकर राम की अँगूठी सीता को दिखाकर अपना परिचय दिया। उन्होंने देखा कि रावण के द्वारा प्रताड़ित किये जाने के बावजूद सीता पवित्र एवं सकुशल हैं।

10. अभियान पूरा कर वापस आते समय सीता ने उन्हें तीन सन्तरे राम, खेना और उनके लिए दिये, किन्तु वे अकेले ही तीनों सन्तरे खा गये। फिर सीता से पता लगाकर बगीचे में गये जहाँ बन्दी बना लिए गये।

11. हावलावमान ने पूरे नगर को जलाने की योजना बनायी। उन्होंने लंका के लोगों को समझाया कि वे उनकी पूँछ में तेल में भीगे कपड़े बाँधकर आग लगा दें ताकि जलकर उनकी मृत्यु हो जाय। लेकिन आग लगाये जाने के बाद एक घर से दूसरे घर पर कूदते हुए उन्होंने पूरे नगर को जला दिया।

12. सीता का पता चलते ही पूरी तैयारी कर राम और उनकी सेना साँप के सहारे पार उतरी। साँप को सीधे लेटने के लिए कहा गया था ताकि उस पर खड़े होकर पत्थरों से पुल बनाया जा सके। पुल बन जाने पर सभी लोग पुल से पार उतर गये। युद्ध में ख़ून-खराबे से बचने के लिए लुसारिहा

से यह अनुरोध किया गया कि वह सीता को वापस कर दे, किन्तु लुसारिहा युद्ध के लिए अड़ा रहा। इसके बाद उसका एक भाई पक्ष बदलकर राम के पक्ष में आकर पूरी रणनीति एवं हथियारों की सूचना देने लगा। युद्ध में राम के गम्भीर रूप से घायल होने पर हावलावमान लुसारिहा की वाटिका में औषधि लाने गये किन्तु जल्दवाज़ी में पौधे की पहचान न कर पाने के कारण वहाँ उपलब्ध सभी पौधों की पत्तियाँ तोड़ लाये और राम के जीवन की रक्षा की।

13. युद्ध के पश्चात जब राम सीता के साथ लौट रहे थे। रास्ते में राम ने लुसारिहा की मूर्ति बनाने के लिए कहा और सीता द्वारा मूर्ति बनाये जाने पर उस मूर्ति द्वारा सीता पर आक्रमण किया गया। इसके पश्चात् राम के मन में सीता के सतीत्व को लेकर सन्देह होने पर राम ने सीता को वनवास दे दिया। जहाँ सीता ने जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया। कालान्तर में राम के साथ उन दोनों बच्चों ने युद्ध किया। बाद में पूरी जानकारी मिलने पर सभी एक साथ मिलकर शान्तिपूर्वक रहने लगे।

इन प्रसंगों के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि मिजो में प्रचलित रामकथा रामायण की कथा के अनुरूप तो है किन्तु कुछ स्थानीय विशेषताएँ भी इसमें देखी जा सकती हैं। मिजो लोक-साहित्य एवं लोक संस्कृति का प्रभाव इस पर देखा जा सकता है। इस दृष्टि से निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

(क) मिजो परम्परा के अनुसार मिजो रामायण में सात भाइयों में उत्तराधिकारी का चयन किया गया। पैतृक सम्पत्ति पर मिजो की परम्परानुसार सबसे छोटे बेटे का अधिकार होता है, बड़े का नहीं।

(ख) स्वर्ण मृग के ऊन से कपड़े बुनने का प्रभाव मिजो संस्कृति का प्रभाव है। मूल कथा के अनुसार मृग की छाल का उपयोग वर्णित नहीं हुआ है।

(ग) 'तुइफूल' पूजा में बलि देने की प्रथा मूल रामायण से भिन्न अवधारणा है।

(घ) समुद्र पार सीता के पास पहुँचने के समय हावलावमान द्वारा मक्खी, फिर बन्दर बनना यहाँ की लोककथा 'जावनग्रेनमेट्र्या' से प्रभावित है।

(ङ) यहाँ रामाख्यान सुखान्त है जिसमें अन्त में सभी मिलकर खुशी से रहते हैं जबकि मूल कथा दुखान्त है।

रामायण का प्रभाव मिजो साहित्य पर ही नहीं लोक-विश्वास पर भी दिखाई पड़ता है। मिजो समाज में व्यक्तियों के नाम राम, खेना, लालखावसियामा, फालामा, डार्जोथांगी आदि मिलते हैं। राम और खेना मिजो के देव वर्ग में शामिल हैं। मिजो में रामाख्यान लोककथा में प्रचलित हैं। इसका लोक-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मिजो रामायण पर सम्भवतः बौद्ध धर्म का प्रभाव है। यह माना जाता है कि मिजो और पूर्वोत्तर की अन्य जातियाँ बर्मा होते हुए चीन से भारत आयी हैं। इस तरह प्रथम शताब्दी में चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। दक्षिण-पूर्व एशियाई क्षेत्र में भी भाई की पत्नी के साथ सम्बन्ध बनाने पर प्रताड़ना के प्रसंगों का उल्लेख प्रायः सभी रामायणों में मिलता है। रामायण में बाली-सुग्रीव का प्रसंग इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

इस तरह हम कह सकते हैं कि मिजो समाज पर रामकथा का परोक्ष प्रभाव सहज अनुमेय है। पूरे भारतीय समाज-साहित्य पर रामायण, महाभारत, पंचतन्त्र का प्रभाव है। यह भारत की विकसित भाषाओं—हिन्दी, बंगला, उड़िया, असमिया, मराठी, तेलुगु, तमिल तथा जनजातीय भाषाओं—बोडो, खामति, त्रिपुरी, कार्बी, गारो, मिजो आदि में देखा जा सकता है। विषय-वस्तु की दृष्टि से हिन्दी भाषा साहित्य के साथ पूर्वोत्तर की भाषाओं का अध्ययन देश की सांस्कृतिक एकता-अखण्डता को

अक्षुण्ण रखने में अधिक सहायक बनेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस दिशा में पर्याप्त अध्ययन की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मिजो हेहवेइक थॅन थू (मिजो एंड नॉनमिजो टेल्स) जे. शेक्सपीयर, असम सचिवालय प्रेस, शिलांग, 1897
2. रामकथा इन असम एंड इट्स नेवरहुड पापुलर फोक एण्ड ट्राइबल ट्रेडिशन, वीरेन्द्रनाथ दत्त, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, 1988
3. ए स्टडी ऑफ़ मिजो फोक लिटरेचर, लाल रूआङा, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, 1984
4. संगकिमा, सम सोर्सेज ऑफ़ अर्ली मिजो हिस्ट्री, एक्रोनोलॉजिकल स्टडी, नेहा जोरहाट, 1983
5. असम प्रान्तीय रामसाहित्य, कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', हिन्दी विकास पीठ, मेरठ, 1985
6. रामायण इतिबृत्त, डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा, डिब्रुगढ़ विश्वविद्यालय, 1984
7. तुलनात्मक साहित्य, भारतीय परिप्रेक्ष्य, इन्द्रनाथ चौधुरी, वाणी प्रकाशन, 2006

कोकबोरोक-भाषी लोक में रामकथा

डॉ. मिलनरानी जमातिया

त्रिपुरा पूर्वोत्तर का एक ऐसा प्रदेश है, जहाँ बंगाली और जनजातीय समाज के लोग एक-साथ निवास करते हैं। भौगोलिक स्थान एक होने के कारण दोनों के बीच दशकों से अनेक स्तरों पर आदान-प्रदान जारी है। मेरा उद्देश्य कोकबोरोक यानी त्रिपुरा के आदिवासी या जनजातीय लोक में मौजूद रामकथा पर अपनी बात रखना है। साथ ही यह बताना भी कि यहाँ के लोक में राम का चरित्र किस रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

राम का स्वरूप और उससे सम्बन्धित मूल्यों को खोजने के लिए सबसे पहले मैंने अपने आसपास के लोगों पर नज़र दौड़ायी, अगरतला शहर में रह रहे और त्रिपुरा के सुदूर गाँवों में जीवनयापन कर रहे जनजातीय समाज पर विचार किया। जमातिया से लेकर मुरासिंह, उचई, कलई, देबबर्मा आदि कई जनजातियों के पढ़े-लिखे, अनपढ़, पुरुष, स्त्री, बुज़ुर्ग, युवा और कोकबोरोक के प्रतिष्ठित साहित्यकारों तक से इस पर बात की। कई जगहों की यात्राएँ भी कीं। कहीं मुझे लोक में विभिन्न रूपों में राम के दर्शन हुए तो कहीं कृष्ण के। आप जानते हैं, हम किसी से भी बात करते समय पहले उसका नाम आदि पूछते हैं, फिर आगे की बात करते हैं। तो ज़ाहिर है, ऊपर बताये लोगों से बात करते समय मैंने भी सबसे पहले उनसे उनके नाम पूछे। और जो नाम मुझे मिले, वे इस प्रकार हैं—रामपद जमातिया, रघुदयाल जमातिया, रामचरण नोवातिया, दशरथ देबबर्मा, राम बहादुर कलई, परशुराम रियांग, मन्दोदरी देबबर्मा, अहिल्या त्रिपुरा, कैकेयी जमातिया, सीता रानी देबबर्मा, भरत देबबर्मा, दशरथ जमातिया, जाम्बुबान जमातिया आदि। ये नाम कोकबोरोक भाषी लोक में राम की उपस्थिति का स्पष्ट पता दे रहे हैं। अगर बंगाली समाज में खोजने जायेंगे तो वहाँ ऐसे नामों की भरमार मिलेगी, पर मैं फिलहाल कोकबोरोक-भाषी लोक में राम पर फोकस कर रही हूँ।

लोगों के नाम जानने के बाद मैंने उनके यहाँ, उनकी स्मृति में, उनके सामाजिक जीवन में राम और उनकी अन्तःकथाओं को जानने का प्रयास किया। मेरी नज़र सबसे पहले अपनी ही जनजाति के बाबा गॉरिया की ओर गयी। बाबा गॉरिया जमातिया जनजाति के लोक देवता हैं। जमातिया लोग हर वर्ष 14 से 21 अप्रैल के मध्य बाबा गॉरिया का सामूहिक उत्सव मनाते हैं। त्रिपुरा के दो अलग-अलग जमातिया क्षेत्रों में इन्हीं तारीख़ों में दो बाबा गॉरिया उत्सव मनते हैं। उनमें एक राम का प्रतीक है और दूसरा कृष्ण का। संयोग से इस बार मैंने जिन बाबा गॉरिया के साप्ताहिक उत्सव में भाग लिया, वे राम का प्रतीक माने जाते हैं। और इस बार का यह वार्षिकोत्सव 414वाँ था, यानी जमातिया जनजाति द्वारा 414 वर्ष से बाबा गॉरिया की पूजा की जा रही है। जमातिया जनजाति के कई सुवारि गीतों* में बाबा गॉरिया को नृसिंह (विष्णु के एक अवतार) सम्बोधित किया गया है।

* सुवारि गीत - भक्ति गीत

गॉरिया रोचापमोङ (कोकबोरोक)–

राङचाक खामप्लाय आचकदि बाबा
हामखोराय खुकफांग कोलांगदि बाबा
मकलनि मोकतोय खिख्लायवुई चोङले
खुकफांग सांसकखा चोङले जोतो पालखे
नरसिंहयई! बाबा गॉरियायई! बाबायई
राङचाक खामप्लाय आचकदि बाबा

ईमांग नुकमानि मोकथांगले नुकखा
सुवारिरगनो लगेवो खायवुई
चुराई फांगसिनि खोनाय फायमानि
ताबकबो तंगखो नुकवुई
नरसिंहयई! बाबा गॉरियायई! बाबायई!
राङचाक खामप्लाय आचकदि बाबा

सावाबो रोङ्या कुवाबो रोङ्या
बाबानि महिमानो केबो सामाया
निनि तंगमोंगनो बाचाय सादि
चोङले खासिया तंगवानि रोङ्या
नरसिंहयई! बाबा गॉरियायई! बाबायई!
राङचाक खामप्लाय आचकदि बाबा

याकां रोकफेरेवुई याप्रि सेवुई
तंगसिनाय चोङबो निनि लगेवो
रोङ्यानो रोङनाय सियानो सिनाय
सोरोङ नासिनाय निनि तंगमोङनो
सोरोङ नासिनाय निनि तंगमोङनो
नरसिंहयई! बाबा गॉरियायई! बाबायई!
राङचाक खामप्लाय आचकदि बाबा
हामखोराय खुकफांग कोलांगदि बाबा

गॉरिया गीत (अनूदित)–

बाबा गॉरिया राजा!
हमने आपके लिए सोने की खामप्लाय* बिछाई है
आकर विराजिए
हमें आशीष दीजिए...

---

* खामप्लाय–चौकी।

हम सभी आँसू बहाते हुए निवेदन करते हैं
आशीष देते जाइए
नरसिंहयई![*] बाबा गॉरियायई![*] बाबायई!

हमने अपने सपने में रोज जिसे देखा
आज उसे सामने देख पा रहे हैं
बाबा अपने भक्तों के साथ पधारे हैं
बचपन से जिसकी कहानी सुनते आये
आज उनके दर्शन मिल रहे हैं
हे बाबा गॉरिया राजा!
हमने आपके लिए सोने की खामप्लाय बिछाई है
आइए, आकर विराजिए..

हमारी भाषा साथ नहीं दे रही है
कैसे कहें...आँसू भी भाव नहीं बता पा रहे हैं
हे बाबा गॉरिया राजा!
तेरी महिमा अनन्त है
इसको कौन जान सकता है
अपनी महिमा आप ही बता सकते हैं
हे बाबा गॉरिया, विनती है आपसे
हमें अपनी महिमा बतायें न
हम तो हे बाबा
ठीक से रहना भी नहीं जानते
नरसिंहयई! बाबा गॉरियायई! बाबायई!

अब हम आपके पदचिह्नों पर चलना चाहते हैं
हमारा हर कदम आपकी ही ओर उठे
हम तो बस आपके साथ ही रहना चाहते हैं

हम अब नादान नहीं रहना चाहते
जो नहीं आता, उसे सिखाओ बाबा
हम तो आपके बताये रास्ते पर ही चलना चाहते हैं
जो आप सिखाओगे, हम सीखना चाहते हैं
हम आपके होकर रहना चाहते हैं
नरसिंहयई! गॉरियायई! बाबायई!

---
* नरसिंहयई—बाबा के प्रति अपनी दीनता प्रदर्शित करते हुए किया गया सम्बोधन।
* गॉरियायई—बाबा के प्रति अपनी दीनता प्रदर्शित करते हुए किया गया संशोधन।

बाबा गॉरिया राजा!
हमने आपके लिए सोने की खामप्लाय बिछाई है
आकर विराजिए
हमें आशीष दीजिए...

बहरहाल, कुछ लोककथाएँ भी हैं, एक लोककथा का नाम है—मायुंग कुफूर। इसके अनुसार एक बार एक गर्भवती स्त्री मचान पर बैठकर रिगनाई बना रही थी, मचान के नीचे ही एक गाय आराम कर रही थी, वह भी गर्भवती थी। काम करते-करते उसकी थुरी* बार-बार गिर जाती थी, गाय उसे उठा-उठाकर दे देती थी। दो-तीन बार के बाद गाय ने थुरी उठाकर देने से मना कर दिया। तो स्त्री उससे बात करने लगी...बातों-बातों में उसने गाय से कहा कि तुम भी गर्भवती हो, मैं भी। चलो समय आने पर हम एक-दूसरे के बच्चों का विवाह करवायेंगे। गाय ने इस बात की हामी भर ली और फिर से थुरी देने लगी। नियत समय पर स्त्री को बेटी पैदा हुई और गाय को बछड़ा। स्त्री तो वह बात भूल गयी पर जब बछड़ा बड़ा होकर साँड़ बन गया तो गाय ने उसे सारी बात बतायी। इधर बेटी भी युवती हो चुकी थी तो साँड़ ने युवती का पीछा करना शुरू कर दिया। जब उसने अपनी माँ को बताया कि एक साँड़ रोज उसका पीछा करता है। तो स्त्री को गाय के साथ हुई पुरानी बात याद आयी और उसने अपनी बेटी को पूरी बात बतायी। यह सुनकर युवती बहुत दुखी हो गयी और एक बुरीफांग* पेड़ से फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। जब साँड़ को युवती की आत्महत्या की ख़बर मिली तो वह भी बेहद दुखी हो गया और उसी पेड़ से सिर टकरा-टकराकर मर गया।

कुछ दिन बाद उस युवती ने एक राजा के यहाँ जन्म लिया। उसी राजा के यहाँ एक सफ़ेद हथिनी रहती थी। साँड़ ने उसी हथिनी के गर्भ से हाथी के रूप में जन्म लिया। हाथी को अपने पिछले जन्म की सारी बातें याद थीं। उसने राजकुमारी का अपहरण कर लिया और जंगल में जाकर छिप गया। इससे राजा और रानी सहित राज्य के सारे नागरिक परेशान हो गये। किसी को कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। तभी वहाँ लक्ष्मण और राम के रूप में फते और रांगिया नाम के दो भाई आये। राजा और रानी ने उन्हें अपनी व्यथा सुनायी। तब फते और रांगिया ने हाथी से राजकुमारी को छुड़ाया। आज भी जमातिया जनजाति में फते और रांगिया को राम और लक्ष्मण का प्रतीक मानकर याद किया जाता है। देखा जाये तो यहाँ राम या लक्ष्मण उत्तर भारतीय समाज की तरह प्रमुख चरित्र की तरह मौजूद नहीं हैं, पर उनके मूल्य, उनकी मर्यादा, उनके सन्देश यहाँ आसानी से देखे जा सकते हैं। एक और बात, उत्तर भारतीय समाज में राम बड़ा भाई है और लक्ष्मण छोटा, लेकिन कोकबोरोक-भाषी लोक में लक्ष्मण बड़ा भाई है और राम छोटा। इसकी वजह ये है कि यहाँ बड़े भाई को बेहद सीधा माना जाता है जबकि छोटे भाई को समझदार और तेज।

राम से सम्बन्धित कुछ लोक गीत भी कोकबोरोक-भाषी समाज में मिलते हैं। यद्यपि गीतों की यह संख्या बहुत कम है। उदाहरण के लिए शवयात्रा में गाये जाने वाले गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

हरे क्रिसनो, हरे क्रिसनो क्रिसनो क्रिसनो, हरे हरे
हरे रामो, हरे रामो रामो रामो हरे हरे...

---

* थुरी—रिगनाई बनाने का औजार।

* बुरीफांग—बरगद।

यह आश्चर्य की बात है कि जिस समाज के लोगों ने कभी ठीक से रामायण और रामचरितमानस की कहानी भी न सुनी हो, वे राम के जीवन मूल्यों को जीते हैं, उन्हें अपना आश्रयदाता मानते हैं, उनमें जीवन मुक्ति का मार्ग खोजते हैं। इसी तरह मृतक के घर पर मृत्यु के दिन से लेकर 13वें दिन तक रोज शाम को मृतक के नाम से कीर्तन किया जाता है। एक उदाहरण निम्न है—

कोथोय रोचापमोङ (कोकबोरोक)

ओ राम ओ मोताय
निनि बोसा थोयजाखा
निनि लगेवो तोइदि
निनि लगेवो तोइदि
करमोबो सिया, दरमोबो सिया
तोइदि याक तलोय
मोताय खोलायवुई तोइदि
तोय बाय, हर बाय,
नकबार बाय, बंगबार बाय
ओ हामाय प्रिथिबीवो
जतोबाय तंगलाङखा बले
तोइदि बाबा बनो निनि लगेवो
ताबकले हिनखा लामा कलकमा
सायचुंग हिनवानि
केबो कोरोई खा बनि लगेवो
तोइदि बनो निनि लगेवो

मृत्यु गीत (अनूदित)

हे राम जी
ओ मोताय*
तेरा पूत यहाँ से विदा हो चला
बस तुम इसे अपने पास रखना
इसे न धर्म पता है न कर्म
हरे राम जी
हे राम जी
इसे अपने हाथ का सहारा देकर रखना
अपना ही अंश बना लेना
हे राम जी
हरे राम जी
जल, अग्नि, हवा, तूफ़ान के साथ
वह इस दुनिया में रहा

* मोताय—ईश्वर।

पर अब उसे साथ में रखना
अभी उसे चलना है लम्बा रास्ता
कोई नहीं है अब उसका
उसे आपका ही सहारा है
बस अब उसे साथ में रखना
हे राम जी
हरे राम जी

जाहिर है, कोकबोरोक-भाषी समाज में भी भारत के अन्य बहुत सारे समाजों की तरह यही मान्यता है कि मृत्यु के बाद मनुष्य राम के पास ही जाता है।

कोकबोरोक-भाषी लोक में राम सिर्फ़ लोक तक सीमित नहीं हैं। वह लोक की स्मृति से आगे बढ़कर समकालीन रचनाशीलता तक में चले आये हैं। इन दिनों लेखन में सक्रिय एक कवयित्री प्रियबाला देबबर्मा की एक कविता मुझे याद आ रही है—

मैं दूर बहुत दूर जाऊँगी
गहन वन में
मैं निर्भय हूँ
क्षमता है मुझमें चलने की
तुम क्यों चिन्तित हो माँ
क्या तुम्हें याद नहीं
प्राचीन कथा
क्या भूल गयी हो
राम-लक्ष्मण का चौदह वर्षीय वनवास
धनुष लेकर गये थे
करने राक्षसों का संहार
मैं जाऊँगी
मारने बाघ
जंगल के बीच
घूमूँगी जंगल में
नदी किनारे-किनारे
जैसे घूमे थे राम
धनुष उठाये
पंचवटी में
तुम डरो मत माँ...

तो इस तरह कोकबोरोक-भाषी लोक में राम सिर्फ़ लोगों के नाम तक सीमित नहीं है, बल्कि वह हमारी सोच से बहुत आगे जाकर उनकी पूजाओं, उनके उत्सवों, उनकी कहानियों, कहना चाहिए उनके जीवन-व्यवहार का हिस्सा बन गये हैं। वैसे अभी भी बहुत सारा लोक-साहित्य कोकबोरोक-भाषी समाज के कण्ठ में मौजूद है, जिसे यथाशीघ्र लिपिबद्धकर शोध करने की ज़रूरत है ताकि इस विषय पर और गहराई से प्रकाश डाला जा सके।

रामकाव्य की परम्परा और तुलसी के राम

प्रो. चन्दन कुमार

रामकाव्य परम्परा की शुरुआत भक्ति साधना से हुई है। उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ब्रह्म और जीव विषयक विभिन्न मतों और मतावलम्बियों से जुड़ी हुई है। गुप्तकाल के अवसान के बाद भारतीय इतिहास में अनेक तरह के उतार-चढ़ाव देखने को मिलते हैं। धार्मिक विश्वास कई-कई कारणों से बनते-बिगड़ते हुए राम की अपरिमित शक्ति और भक्तोद्धार की छवि के साथ जुड़ गये। इस जुड़ाव में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पारस्परिक रंग और स्वर तो अक्षुण्ण रहे, किन्तु उनकी प्रस्तुति का ढंग बदलता रहा। इतना स्पष्ट है कि रामानुजाचार्य की दार्शनिक परम्परा जैसे-जैसे मज़बूत और शक्तिमान होती गयी, वैसे-वैसे रामभक्ति और रामकाव्य परम्परा का विकास होता गया।

भारतीय लौकिक साहित्य की शुरुआत ही रामकाव्य से होती है। आदिकवि वाल्मीकि के 'रामायण' के बाद भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' और कालिदास के 'रघुवंशम्' से होती हुई यह काव्य परम्परा अन्य भारतीय भाषाओं में भी विकसित और परिवर्तित-परिवर्धित होती रही। यही नहीं, वैदिक साहित्य में भी राम का सन्दर्भ आया है। रामकथा के इतने आयाम और प्रसंग हैं कि कुछ आलोचकों की राय में राम 'कवि-सत्य' हैं और 'कवि-सत्य' के सन्दर्भ में कालभेद अर्थहीन हो जाता है। रामकाव्य परम्परा के अनुशीलन क्रम में यह सर्वमान्य है कि राम का चरित्र जितना वेद या शास्त्रसम्मत है, उससे अधिक लोकसम्मत है। सम्भवतः यही कारण है कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं कि, "राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाये, सहज सम्भाव्य है"। भारत की हर भाषा में प्रत्येक काल में ज़्यादातर सामाजिक प्रसंगों में रामकथा मौजूद है। अलग-अलग सन्दर्भों और तत्त्वों से बुनी रामकथा लोक कथाओं, लोक-श्रुतियों, वेदों, उपनिषदों, पुराणों और नास्तिक दर्शन के प्रणेताओं की कृतियों में चर्चित और विवादित है। विवादों और चर्चाओं की लम्बी परम्परा ही रामकाव्य परम्परा को इतिहास से बाहर ले जाती है और भावनात्मक अर्थ प्रदान करती है। इस परम्परा की ऐतिहासिकता ही प्रमाणित करती है कि राम ऐतिहासिक पुरुष भी हैं और आस्था-विश्वास के प्रतिबिम्ब भी।

राम को लेकर नितान्त विपरीतार्थक चरित्रों की सृष्टि रचनात्मकता के स्तर पर होती आयी है। इन कथाओं में सामान्य तत्त्व यह है कि सभी में राम एक व्यवस्था के व्यवस्थापक और एक सामाजिक आदर्श के संस्थापक के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। हिन्दी में तुलसीदास से पूर्व रामकाव्य परम्परा के विषय में सन्दर्भ सामग्री का प्रायः अभाव है। हिन्दी में रामकाव्य परम्परा की सर्वाधिक समृद्ध काव्यकृति तुलसीदास का 'रामचरितमानस' है। मानस की रचना के बाद रामकाव्य परम्परा की एक नयी और तीव्र गतिमान धारा प्रवाहित हुई। तुलसी ने रामकाव्य की समस्त प्राचीन परम्पराओं का गहन अध्ययन किया और उसके आधार पर नयी संवेदनशीलता के साथ मानस की रचना की।

असमिया भाषा में माधव कन्दलि समेत अनेक कवियों ने रामायण लिखे। सब का आधार वाल्मीकि रामायण था। कथा के कुछ प्रसंग स्थानीय लोकाचार के अनुरूप रहे। इसी तरह मणिपुर, नागालैंड, सिक्किम की संस्कृति और लोक परम्पराओं को यदि खँगाला जाये तो रामायण से जुड़े अन्य प्रसंग भी मिलना सम्भव है। डॉ. साँवरमल सांगानेरिया कहते हैं, "यह जानकर हमें सुखद आश्चर्य होगा कि उत्तर भारतीय आर्य भाषाओं में सर्वप्रथम रामायण असमिया भाषा में लिखी गयी। इतना ही नहीं असम की जनजाति कार्बी में 'छबिन आलुन' रामायण की अति प्राचीन वाचिक परम्परा चली आयी है। मिजो जनजाति में रामकथा लोककथा के रूप में प्रचलित है।"

डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' ने अपनी पुस्तक 'असम-प्रान्तीय रामायण' में असम में वैष्णव मत के उद्भव तथा विकास के साथ-साथ कुल बत्तीस असम प्रान्तीय कवियों की अड़तीस रामकथात्मक काव्य कृतियों एवं 66 नाट्यकारों के 76 नाटकों का विस्तार से वर्णन किया है। असम प्रान्तीय रामकाव्य का मूल आधार वाल्मीकि रामायण ही है, किन्तु काव्यों और नाटकों की कथावस्तु के लिए ज़्यादातर रचनाकार वाल्मीकि की अपेक्षा माधव कन्दलि और कृत्तिवास रामायण (बांग्ला) पर निर्भर रहे हैं।

अगर हम रामकथा के वैश्विक स्वरूप की बात करें तो—"भारत के बाहर भी रामकथा का प्रचार शताब्दियों से रहा है। पूर्वी एशिया के कम-से-कम तीन देशों में रामायण राष्ट्रीय काव्य घोषित किया जा चुका है। इंडोनेशिया में बौद्धों और मुसलमानों के विवाह के समय भी रामायण अथवा महाभारत का कोई-न-कोई दृश्य प्रस्तुत किया जाता है। वहाँ एक विशाल रंगमंच बनाया गया है जिस पर 400 अभिनेता एक साथ अभिनय कर सकते हैं। थाई देश की अपनी अयोध्या है। वहाँ के एक मन्दिर में सम्पूर्ण रामायण दीवारों पर अंकित है। वहाँ जब तक रामायण के किसी प्रसंग का पाठ नहीं करा जाता, तब तक अनुष्ठान पूरा नहीं होता। इन देशों के अतिरिक्त बर्मा, श्रीलंका, लाओस, मलेशिया, फिलीपींस, मंगोलिया, चीन, जापान, तिब्बत, खोतान आदि एशियाई देशों में रामकथा शताब्दियों पूर्व पहुँच गयी थी। कई देशों की कला संस्कृति तथा जनजीवन पर आज भी रामकथा का गहरा प्रभाव लक्षित होता है।"

जॉर्ज ग्रियर्सन को पढ़ रहा था। आपको पता है कि ग्रियर्सन हिन्दी साहित्येतिहास के प्राथमिक लेखकों में से हैं। आप जानते हैं कि जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित 'द मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान' सही मायने में हिन्दी का पहला इतिहास-ग्रन्थ है। इसे सन् 1888 ई. में 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल' ने अपनी पत्रिका के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया था। ग्रियर्सन ब्रिटिश थे। पुस्तक के शीर्षक में उन्होंने इंडिया नहीं 'हिन्दुस्तान' लिखा और इस पुस्तक में 952 कवियों को विवेचन में शामिल किया। ग्रियर्सन का उल्लेख एक ख़ास कारण से कर रहा हूँ। जॉर्ज ग्रियर्सन हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन में ग्यारह शीर्षक बनाते हैं। इन ग्यारह शीर्षकों में छह शीर्षक 'तुलसीदास' हैं और आठवाँ शीर्षक 'तुलसीदास के अन्य परवर्ती' हैं। विद्वान मानते हैं कि ग्रियर्सन हिन्दी का प्रवृत्तिगत काल विभाजन कर रहे थे। उनकी नज़र हिन्दी के सांस्कृतिक इतिहास पर थी। आप भी पढ़ियेगा—किशोरीलाल गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास', नाम से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है जो 1957 ई. में प्रकाशित हुआ है। मेरा संकेत उस ओर है जहाँ ग्रियर्सन हिन्दुस्तान के मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर के इतिहास को तुलसीदास की केन्द्रीयता में पढ़ने की कोशिश करते हैं। तुलसीदास और तुलसीदास के अन्य परवर्ती—'एक तेरे आने के पहले एक तेरे जाने के बाद।' भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग बताने वाले पहले व्यक्ति आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 1929 ई. में प्रकाशित 'हिन्दी शब्द सागर'

की भूमिका के रूप में पहली बार आता है। शुक्ल जी जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन की कहानी लिख रहे हैं। इस कहानी के नायक बनते हैं—तुलसीदास।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की काव्य-दृष्टि और इतिहास-दृष्टि के हैं केन्द्र में तुलसी हैं, राम हैं, मर्यादा है और लोकमंगल है। आज से लगभग 88 वर्ष पूर्व प्रकाशित यह पुस्तक हिन्दी के भावबोध को बताती है। शुक्ल जी का एक रोचक प्रसंग है कि उन्होंने हिन्दी के जिस कवि को जहाँ चपत मारी वह वहीं अभी तक सहला रहा है। सोचना दीगर है कि आख़िर क्या कारण है कि हिन्दी के दो प्रारम्भिक और प्रामाणिक इतिहासकारों के यहाँ तुलसी केन्द्रीयता में हैं। ग्रियर्सन और शुक्ल जी साहित्य परिषद् के सदस्य नहीं थे और न उन्हें ऐसा करके किसी पुरस्कार समिति का सदस्य ही होना था। मैं तो पूरब का आदमी हूँ। मेरा बचपन मानस की चौपाई की छाँव में बीता है। अक्षर ज्ञान की प्राथमिक यादें राम से जुड़ी हुई हैं। सुबह की शुरुआत दालान में प्रेम बढ़ई के रामकथा वाचन और बाबा पण्डित ब्रह्मदेव चौबे की व्याख्याओं से होती थी। इसीलिए जब अनुशब्द जी ने आदेश किया तो सोचा ज़रूर बोलूँगा। तुलसीदास हिन्दी के विश्वविद्यालयी कवि नहीं है, उनको कवि संगठनों, पाठ्यक्रमों और विभागों ने नहीं बनाया है, वे हिन्दी समाज के कवि हैं। हिन्दी समाज अपनी जय-पराजय, जीवन-मरण, यश-अपयश को उनकी कविताओं में देखता है। उनकी कविताएँ जीवन को एक ऐसा वैरागी बनाती हैं जहाँ आस्तिक मन अपनी जागतिकता का समाधान ढूँढ़ लेता है। तुलसीदास इसलिए नहीं पढ़े जाते कि वे संगठन या सत्ता के लिए 'पॉलिटिकली करेक्ट' या 'इनकरेक्ट' हैं बल्कि इसलिए पढ़े जाते हैं कि वे जीवन सन्दर्भ के पाठ हैं, लाइफ़ टेक्स्ट हैं। कविता कैसे मन्त्र में बदल जाती है—यह जानना हो तो—'वर्णानां अर्थसंघानाम् रसानाम् छन्दसामपि' के रचयिता को देखा जा सकता है। तुलसी भक्त कवि अवश्य हैं पर सभी भक्त कवि तुलसी जैसे लोकप्रिय नहीं हैं। तुलसी की भक्ति और उनके नायक राम जागतिकता से परे नहीं हैं। आशय यह है कि उनके दर्शन एवं चिन्तन के राम भले ब्रह्म हों लेकिन उनकी कविता के राम लोकनायक हैं। यह लोक सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी का भारत है—जो म्लेच्छाक्रान्तिशुदेशेशु है और जहाँ "खेती न किसान को/ भिखारी को न भीख भली/ बनिक को बनिज न/चाकर को चाकरी/जीविकाविहीन लोग/सिद्धमानसोच बस/ कहै एक एकन सौ/ खां जायें का करीं" का सच विद्यमान है। ऐसे कठिन समय में मर्यादा और विवेक का संस्कार नायकत्व के रूप में रचना एक कठिन काम है। ध्यान दीजिएगा कि विवेक और मंगल शब्द रामचरितमानस में इतनी बार प्रयुक्त हुए हैं कि वे तुलसी की जीवन-दृष्टि के आधार ज्ञात होते हैं। तुलसी के राम और उनका रामराज्य इसी विवेक, मंगल और मर्यादा की निर्मिति है—'मंगल करनी कलिमल हरनी तुलसी कथा रघुनाथ की' वाली बात यूँ ही नहीं है। रामराज्य कोई थियोक्रिटिक स्टेट नहीं है, वह जागतिक समस्याओं का आदर्श समाधान है—'दैहिक, दैविक, भौतिक तापा रामराज्य काहू नहीं व्यापा' वह मर्यादा है एक पत्नीव्रता होने की, लोकापवाद सहने की। निन्दा लोग राम की भी करते थे पीठ पीछे। वह षड्यन्त्रों और कुचक्रों से बेदाग निकल जाने की जिजीविषा है। राजसत्ता को त्याग कर वनवासियों को संगठित करने और समाज सत्ता से खलनायकों को नष्ट करने की इच्छा और ताक़त का नाम है—राम। मित्रों अच्छा तो लगता ही है न यह। बाबा पण्डित ब्रह्मदेव चौबे को अक्सर किसी दुराचारी के शक्तिशाली होने पर कहते सुना कि जब रावण चले गये तब इनकी क्या बिसात! कविता की चरम सार्थकता काव्य-पाठ के जीवन-पाठ बन जाने में होती है है। तुलसीदास इसके प्रमाण हैं। तुलसीदास के राम मनुजवपुधारी ईश्वर हैं। तुलसी ने राम का चित्रण किया है मनुज के रूप में और बीच-चीच में पाठक, श्रोता और भक्त को सूचित भी करते आये हैं कि इन्हें मनुज मत समझ लेना—

भोजन करत बोल जब राजा, नहिनावत तजि बाल समाजा
कौसल्या जब बोलन धाई, ठुमुक-ठुमुक प्रभु चलहीं पराई।

राम अयोध्या के सभी वासियों—नर-नारी, वृद्ध, बालक को प्राणों से प्रिय लगते हैं। तुलसी के परम विश्वनीय आलोचक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'तुलसीदास' में नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम की इसी अकिंचता को गौरवान्वित करते हैं। कौन नहीं जानता कि तुलसी के राम ईश्वर हैं, सीता लक्ष्मी हैं और लक्ष्मण 'सेष सहस्रसीस जग कारण/जो अवतरु भूमि भय तारण' हैं, किन्तु तुलसी की श्रेष्ठता का आधार वे पति (राम) हैं जो अपनी पत्नी को थकी हुई जानकर बड़ी देर तक उसके पैर से काँटे निकालते हैं। वो पत्नी (सीता) हैं जिनके माथे पर चार क़दम चलते ही पसीने की बूँदें चमकने लगती हैं और वे लक्ष्मण हैं जो लरिका हैं। माफ़ कीजिएगा गोस्वामी तुलसीदास को हिन्दी का श्रेष्ठ कवि ब्रह्म, लक्ष्मी और शेषनाग ने नहीं बनाया है अपितु सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के भृत्य गार्हस्थ्य बोध के पर्यवेक्षण ने बनाया है—

"पुरतें निकसीं रघुवीर वधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की, पुट सोखी गये मधुराधर वै।।
फिर बूझति हैं, चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौं कित ह्वै?
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारू चलीं जल च्वै।।"

तुलसी को राम का यह सहज रूप अत्यन्त प्रिय रहा होगा तभी उन्होंने इसका वर्णन इतना जमकर और इतना रस लेकर किया है। स्वाभाविक और सजीव वर्णनों के कारण ही तुलसीदास लगभग 400 साल बाद भी प्रीतिकर और सन्दर्भवान बने हुए हैं। ऐसे राम कोल-किरातों, निषाद, गिद्ध, शबरी और बन्दर-भालुओं के अत्यन्त प्रिय हैं। राम के विरोधी साधन सम्पन्न सत्तावान रावण स्वर्ण लंका में विराजमान हैं—

"रावन रथी विरथ रघुवीरा"

निषाद राम से जिस अनौपचारिक और आत्मीय शैली में बात करता है वह सत्ता की भाषा नहीं है, वह भागीदारी की भाषा है। सत्ता की भाषा अहं की भाषा होती है इसीलिए क्षणभंगुर होती है। भागीदारी की भाषा प्रेम की भाषा होती है, इसीलिए टिकाऊ होती है।

गोस्वामी तुलसीदास की भाषा भागीदारी की भाषा है, साधनहीन लोगों के संकल्प की भाषा है। रावण राम का विरोधी है, वह तुलसी के सारे मूल्यों के विरोध का प्रतीक है। वह दुराचारी है, परदेशी है और परपीड़क है लेकिन अत्यन्त शक्तिशाली और सम्पन्न भी है। उसकी तरफ़ कुम्भकर्ण और मेघनाद जैसे वीर हैं। सम्पत्ति की हालत यह है कि उसकी नगरी स्वर्ण की है। वह अत्यन्त सुरक्षित है। राक्षस वीरों की तुलना में बन्दर-भालुओं की क्या हैसियत है। बन्दर-भालू तो राक्षसों के आहार हैं। रावण अन्याय का प्रतीक है, वह इतना शक्तिशाली है कि युग के सारे विकास, समस्त सद्गुण और सारी सम्भावनाओं को दबोचे बैठा है जिसका विनाश साधनहीन समाज के संगठन से सम्भव है। यह सम्भावना संगठित समाज का सपना है। गोस्वामी तुलसीदास और उनकी कविता इस सपने के पक्ष में कड़ी कविता है इसीलिए बड़ी कविता है। कविता कहती है कि 'तुझसे पहले यहाँ जो शख़्सतख़्त नशीं था, उसे अपने ख़ुदा होने का तुझसे ज़्यादा यकीं था' जब रावण नहीं रहा तो तुम भी नहीं रहोगे, इसीलिए मानवीय बनो। मनुष्यता अब भी एक सम्भावना है। इसीलिए तुलसीदास की कविता अब भी एक सम्भावना है, एक रास्ता है। भारतीय समाज का, सत्ता का और हिन्दी साहित्य का।

गुणों के समुच्चय : राम

प्रो. सूर्यकान्त त्रिपाठी

राम के गुण अनन्त हैं, ईश्वर हैं, फिर भी उन्हें इसका अभिमान नहीं है। वे एक सामान्य व्यक्ति की तरह अधर्म से बचते हुए धर्म की मर्यादा में स्थित रहते हैं, इसीलिए सबकी दृष्टि में वे 'मर्यादा पुरुषोत्तम' हैं।

महर्षि वाल्मीकि को अपने आदिकाव्य के लिए एक ऐसे नायक की तलाश थी, जिसमें सभी सद्‌गुणों की विद्यमानता हो, जिसका जीवन धर्म और सदाचरण का निकष हो और जो सम्पूर्ण लोकों का एकमात्र प्रिय हो। वाल्मीकि ने ऐसे लोकोत्तर गुणों की एक सूची तैयार की और अपने आश्रम पर पधारे देवर्षि नारद को देते हुए प्रश्न किया—

''कोन्वस्मिन् साम्प्रतम लोके गुणवान् कच
वीर्यवान्। धर्मज्ञ च कृतज्ञ च तस्यवाक्यो दृढ़व्रतः।।
चरित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को पितः। विद्वान् कः कः समर्थ च क
चैकः प्रियदर्शनः।। आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
क च विभ्यति देवा च जातरोशस्य संयुगे।।''[1]

अर्थात् इस समय संसार में गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है? सदाचारी, समस्त प्राणियों का हितसाधक, विद्वान, सामर्थ्यवान और एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है? मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, कान्तिमान और किसी की भी निन्दा नहीं करने वाला कौन है? तथा संग्राम में कुपित होने पर जिससे देवता भी डरते हैं। महर्षि वाल्मीकि का इस प्रकार का प्रश्न सुनकर नारद जी ने उत्तर दिया—

''इक्ष्वाकुवंशप्रभो रामोनामजनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो वाग्मी द्युतिमान धृतिमान वशी।।
बुद्धिमन्नितिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिवर्हणः ।''[2]

अर्थात् राजा इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगों में रामनाम से विख्यात हैं। वे मन को वश में रखने वाले महाबलवान, कान्तिमान, धैर्यवान और जितेन्द्रिय हैं। बुद्धिमान, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा शत्रु के संहारक हैं।

''विपुलांशो महाबाहु कम्बुग्रीवो महाहनुः।।
महोरस्को महेश्वासो गूढ़जत्रुपुरिन्दमः।
आजानुबाहु सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।।
समः समविभक्तामः स्निग्धवण्रः प्रतापवान्।
पिनवक्षः विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्धुलक्षणः।।''[3]

अर्थात् उनके कन्धे मोटे और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, गर्दन शंख के समान और ठुड्डी मांसल है। उनकी छाती चौड़ी तथा धनुष बड़ा है। हसली मांस से छिपी हुई है। वे शत्रुओं का दमन करने वाले हैं। भुजाएँ घुटने का स्पर्श करती हैं। मस्तक सुन्दर है। ललाट भव्य और चाल मनोहर है। औसत क़द का सुडौल शरीर है। त्वचा चिकनी है। वे बड़े प्रतापी हैं, वक्षस्थल भरा हुआ है, आँखें बड़ी-बड़ी है, लक्ष्मीवान और शुभ लक्षणों से सम्पन्न हैं।

इसके बाद भी वे—

''धर्मज्ञः सत्यसंध च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसंपन्नः सुचिर्वश्यः समाधिमान्।।
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुसूदनः।
रक्षिताः जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।।
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञो धनुर्वेद च निश्ठितः।।
सर्वज्ञास्त्रर्थतत्त्वराः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदिनात्मा विचक्षणः।।
सर्वदाविगतः सद्भिः समुद्र इव सिंधुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः।।
स च सर्वगुणोपतेः कौशल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।।
विशुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथ्वीसमः।।
धनदेनः समस्त्यागे सत्ये धर्म युवापरः।''[4]

अर्थात् ये धर्म के ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ और प्रजा के हितसाधन में लगे रहने वाले हैं। ये यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय तथा मन को एकाग्र रखने वाले हैं। प्रजापति के समान पालक, श्रीसम्पन्न, शत्रुनाशक और जीवों तथा धर्म के रक्षक हैं। स्वधर्म और स्वजनों के पालक हैं। वेद-वेदांगों के तत्त्ववेत्ता और धनुर्वेद में दक्ष हैं। वे अखिल शास्त्रों के मर्मज्ञ, स्मृतियुक्त तथा प्रतिभासम्पन्न हैं। अच्छे विचार तथा उदार हृदय वाले, वार्तालाप में निपुण समस्त लोकों के प्रिय हैं। जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार साधु पुरुष सदा उनसे मिलते रहते हैं। वे श्रेष्ठ हैं और सबके प्रति समान भाव रखने वाले हैं। उनका दर्शन हमेशा प्रिय प्रतीत होता है। सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न वे अपनी माता कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले हैं। गम्भीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं। वे विष्णु के समान बलवान हैं उनका दर्शन चन्द्रमा के समान मनोहर है वे क्रोध में कालाग्नि के और क्षमा में पृथ्वी के सदृश्य हैं। त्याग में कुबेर और सत्य में द्वितीय धर्मराज के समान हैं।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और देवर्षि नारद ने संसार को यह अवगत करा दिया कि तीनों लोकों में सर्वाधिक गुणवान राम ही हैं। उनके सद्गुणों और न्यायोचित व्यवहार से लोग इतने मन्त्रमुग्ध थे कि उनके विपरीत कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे। बतौर उदाहरण राम को वन में भेजने वाली विमाता कैकेयी कुब्जा के बहकाने पर भी राम की प्रशंसा करती नहीं अघातीं। वह कहती हैं—

''संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनं।।
यथावै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।

कौशल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूयष्ते हि माम्।।
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।''[5]

अर्थात्, कुब्जे! तू राम के राज्याभिषेक का शुभ संवाद सुनकर जलती क्यों है? मेरे लिए जैसे भरत आदर के पात्र हैं वैसे ही, बल्कि उनसे भी बढ़कर राम आदरणीय हैं। वे अपनी सगी माता कौशल्या से भी बढ़कर मेरी सेवा करते हैं। यदि राम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत का भी समझ ले।

गुण हों और पराक्रम न हो तो उन गुणों का कोई अर्थ नहीं। लोक में उसी का समादर होता है जो गुणवान के साथ ही पराक्रमी भी हो। इस लिहाज़ से राम ही सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। जनकपुर का वह दिव्य धनुष जो देव, दनुज और मनुज किसी से भी हिलाया न जा सका, यहाँ तक कि–

''भूप सहस दस एकहिं बारा।
लगे उठावन टरइ न टारा।।''[6]

राम ने उसे सहज ही–**''लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े काँहु न लखा देख सब ठाढ़ें।।''[7]** –त्वरित गति से तोड़ दिया। परशुराम जैसे दुर्धर्ष वीर को जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कर दिया था। अपने पराक्रम से सन्तुष्ट करना राम का ही काम था। पंचवटी में चौदह हज़ार राक्षसों, खर, दूषण और त्रिशिरा का अकेले ही बिना किसी की सहायता के अल्प समय में ही संहार कर डालने वाले राम के पराक्रम की तुलना किससे की जा सकती है? बालीवध, समुद्र-निग्रह और रावण-कुम्भकर्णादि का संहार भी मात्र उन्हीं के पराक्रम से सम्भव हुआ। हनुमान ने तो रावण के दरबार में पहले ही घोषित कर दिया था–

''ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्यातुं न शाक्ता युधि राघवस्यां।।''[8]

अर्थात् औरों की तो बात ही क्या चार मुख वाले स्वयंभू ब्रह्मा, त्रिपुरसंहारक त्रिनेत्रधारी रुद्र और देवराज इन्द्र भी राम के सामने युद्ध में नहीं ठहर सकते।

गुणवान और वीर्यवान होने के साथ ही धर्मज्ञता भी ज़रूरी है नहीं तो पराक्रम अधर्मोन्मुख हो सकता है। राम के लिए 'धर्मकामार्थ तत्त्वज्ञः' (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों के ज्ञाता) जैसा विशेषण प्रयुक्त हुआ है। वे धर्म और अर्थ के तत्त्व को बख़ूबी जानते थे। इसका बड़ा ही अच्छा उदाहरण बाली-वध का प्रसंग है। बाली ने जब राम के कार्य को अन्याय बताते हुए धर्म की दुहाई देनी शुरू की तो उन्होंने उसकी हर बात का खण्डन करते हुए बड़ी सुन्दर उक्तियों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि तुम्हें तुम्हारे पाप का ही दण्ड मिला है–

''अनुज वधू भगनी सुत नारी। सुन सठ ए कन्या समचारी।।
इन्हहिं कुदृष्टि विलोकइ जोई। ताहिं बधे कछु पाप न होई।।''[9]

उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में पूर्वजों के द्वारा अपनायी हुई नीति और मनुस्मृति के मत का भी उल्लेख किया है–

''श्रूयेते मनुना गीतौ श्लोको चारित्रवत्सलौ।''[10]

राम की धर्मज्ञता का दूसरा उदाहरण विभीषण-शरणागति का प्रसंग है। शरण में आये हुए भयभीत पुरुष की रक्षा करना हरेक शक्तिशाली वीर पुरुष का धर्म है। राम की तो यहाँ तक प्रतिज्ञा है कि–

''सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो तदाम्येतद् व्रतं मम।।''[11]

अर्थात्, जो एक बार भी मेरी शरण में आकर यह कह दे कि मैं आपका हूँ, उस शरणागत जन को मैं सब प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ। जब विभीषण अपने मन्त्रियों सहित आकर कहता है कि मैं आपकी शरण में आया हूँ तो उस समय राम की वानरी सेना चौकन्नी हो जाती है। किसी को विश्वास नहीं कि विभीषण सद्भाव से आया है। सेनापतियों की गुप्त मन्त्रणा होती है। राम सबसे परामर्श के बाद विभीषण को अपनाने का अपना निर्णय सुनाते हैं और प्रण 'शरणागत रक्षण रूपी धर्म' का परित्याग नहीं चाहते हैं। वे कहते हैं—''यदि शत्रु भी शरण में आये और दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करे तो उस पर चोट नहीं करनी चाहिए। शत्रु हो या अभिमानी यदि वह अपने विपक्षी की शरण में आ जाय तो धर्मात्मा पुरुष को अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिए।''

''बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचंत शरणागतम्।
न हन्यदा नानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतपं।।
आर्तो वा यदि वा वृत्तः परेषां शरणंगतः।
अरिः प्राणान् परित्यज रक्षितव्यः कृतात्मना।।''[12]

अर्थात् 'हे वानर श्रेष्ठ सुग्रीव! वह विभीषण अथवा स्वयं रावण ही क्यों न आया हो मैंने उसे अभयदान दे दिया। अब तुम उसे मेरे पास ले आओ।

''आनयेनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याव्यय मया।
विभीषणों वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्।।''[13]

यह है मर्यादा पुरुषोत्तम राम की धर्मज्ञता, धर्मपरायणता और शरणागत वत्सलता। तीनों लोकों में कौन ऐसा है जो उनकी समानता कर सके।

धर्मज्ञ होने के साथ राम कृतज्ञ भी हैं। उनके कृतज्ञ स्वभाव का वाल्मीकि ने निम्नवत परिचय दिया है—

''न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया।
कथंचदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।।''

अर्थात्, मन पर नियन्त्रण रखने के कारण वे दूसरों द्वारा किये हुए सैकड़ों अपराधों को भुला देते हैं, कभी एक को भी याद नहीं रखते। लेकिन कोई किसी प्रकार एक बार भी उपकार कर दे तो उसी से हमेशा सन्तुष्ट रहते हैं, हमेशा उस एक ही उपकार को याद रखते हैं।

गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ और कृतज्ञ राम सत्यवादी भी हैं। इस विषय में उनका स्वयं का कथन है—

''अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्षये कदाचन।''

अर्थात्, मैंने पहले कभी न तो असत्य कहा है और न आगे कभी कहूँगा—**'रामो द्विर्नाभिभाषते'** राम दो तरह की बात नहीं बोलता।

सत्यवादी के साथ-साथ राम दृढ़प्रतिज्ञ भी हैं। चौदह वर्षो का वनवास स्वीकार कर लेने पर उन्होंने कष्ट सहकर उसे निभाया। बहुत सारे प्रलोभन आये, माता ने रोका, लक्ष्मण ने बलपूर्वक राज्य पर अधिकार कर लेने का प्रस्ताव रखा और अन्त में भरत स्वयं अयोध्या लौट चलने का आग्रह करने वन में आये लेकिन राम विचलित नहीं हुए। उन्होंने वन में रहकर पिता की तथा अपने सत्य की पूर्णरूपेण रक्षा की। ये सारी बातें उनके दृढ़व्रती होने की परिचायक हैं। सीता से राम स्वयं कहते हैं—

''अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न हि प्रतिज्ञां संश्रुत्य...।।''

अर्थात्, सीते! मैं अपने प्राण त्याग सकता हूँ, तुमको और लक्ष्मण को भी छोड़ सकता हूँ लेकिन प्रतिज्ञा करके उसे टाल नहीं सकता।

इस प्रकार वाल्मीकि द्वारा बताये गये सभी गुण राम में पूरी तरह पाये जाते हैं। किन्तु ये सभी गुण हों और चरित्र-बल न हो तो इनका कोई अर्थ नहीं रह जाता है। इसीलिए वाल्मीकि पूछते हैं— 'चारित्रेण च को युक्तः' (सदाचार से युक्त कौन है?) इस चारित्र्य-गुण में भी राम अद्वितीय हैं। उनका एक पत्नीव्रत सर्वत्र प्रसिद्ध है। राजा जनक की फुलवारी में जानकी के सौन्दर्य को देखकर जब उनका मन सीता की ओर आकृष्ट हुआ तो वे चकित हो उठे। यह राम के जीवन में पहली घटना थी। उन्होंने अपने मन को टटोला और वहाँ कलुषित वासना की गन्ध भी न पाकर लक्ष्मण से बोले—

''मोहिं अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ पर नारी न हेरी।।
सो सब कारन जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुन भ्राता।।''[14]

अर्थात् मेरा सहज पुनीत मन आज क्षुब्ध क्यों हुआ? इसका कारण विधाता ही जानते हैं। लगता है सीता अनादि काल से मेरी है और मेरी ही रहेगी। मानो यही सूचित करने के लिए मेरे दायें अंग फड़क रहे हैं अन्यथा मैं तो उस रघुकुल का हूँ जहाँ—'नहिं पावहिं परतिय मनु दीठि।।' यह है राम का आत्मविश्वास।

महर्षि का नौवाँ प्रश्न है—'सर्वभूतेषु को हितः?'(समस्त प्राणियों का हितकारी कौन है?) और उत्तर एक ही है—राम। राम के अलावा दूसरा कौन—जो सबका हितसाधन कर सके। उनका अवतार, उनका हँसना, बोलना, चलना, उनकी अनुपम छवि सभी कुछ तो सबको सुख देने के लिए है। अवतार धारण करके पहले अयोध्यावासियों को सुख दिया—

''एहि विधि शिशु विनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरवासिन्ह सुख दीन्हा।।''

पश्चात जनकपुरवासियों को आनन्दित किया—

''हिय हरषहिं बरसहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि वृन्द।
जाहिं जहाँ जहँ बन्धु दोउ तहँ तहँ परमानन्द।।''

वनवास के समय भी वे गाँव-गाँव आनन्द बाँटते फिरे—

'गाँव-गाँव अस होहिं अनन्दु। देखि भानुकूल कैरव चन्दु।।
एहि विधि रघुकुल कमल रवि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहि चले देखत बिपिन सीय सौमित्र समेत।।'[15]

एकमात्र प्रियदर्शन तो राम ही हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या है—'खग मृग मगन देखि छवि होहिं।' आत्मवान (मन पर अधिकार रखने वाले) होने के कारण ही वे हर्ष और विषाद से ऊपर उठ चुके थे। राज्य पाकर वे प्रसन्न नहीं हुए और वनवास से उन्हें दुख भी नहीं हुआ—

''प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।''

जो आत्मवान है वह क्रोध पर विजय पा ही लेता है। उन्होंने मन्थरा के अपराध की कभी चर्चा भी न की और जब लक्ष्मण ने कैकेयी पर आक्षेप किया तो उन्हें तुरन्त रोक दिया—

''न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन्।''

उनकी द्युतिमानता का क्या कहना त्रिलोक में कौन ऐसा देहधारी है जो उनकी मोहिनी छवि पर मुग्ध नहीं होता—

''कहहू सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी।।
वय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग-अंग पर वारिहिं कोटि-कोटि सतकाम।।''

राम अनुसूयक हैं वे कभी किसी के दोष नहीं देखते। इस प्रकार उनके अलौकिक गुणों का पार कौन पा सकता हैं। उन्होंने माता-पिता की अनुपम भक्ति का आदर्श उपस्थित किया है। माता की आज्ञा मानने वाले तो बहुत हो सकते हैं लेकिन विमाता की भी कठोरतम आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले केवल राम हैं। पिता की आज्ञा के पालन में उनका कितना उत्साह था—

''अहं हि वचनाद्रासः पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।।''[16]

अर्थात् मैं पिता के कहने से आग में भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष का भी पान कर सकता हूँ और समुद्र में भी गिर सकता हूँ।

उनका भ्रातृप्रेम भी अद्वितीय है। उन्होंने सदा अपने भाइयों के प्रति स्नेह का भाव रखा। उनकी सुख-सुविधा का ख़याल रखा। वे आदर्श राजा थे। अपनी प्रजा का हमेशा ख़याल रखते थे। आदर्श पति थे, आदर्श स्वामी थे, सेवकों पर उनका पुत्रवत् स्नेह था। इसी प्रकार वे आदर्श मित्र और शरणागत पालक भी थे। राम का सारा जीवन ही धर्ममय था। वे गुणों के आगर थे, गुणों के समुच्चय थे।

सन्दर्भ

1. वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 1/2, 4
2. वही, 1/8, 9
3. वही, 1/9, 11
4. वही, 1/12, 19
5. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 8/15, 16/19
6. तुलसीदास रामचरितमानस, बाल काण्ड
7. वही
8. वाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड, 51/44
9. तुलसीदास रामचरितमानस, किष्किन्धा काण्ड
10. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड 18वाँ सर्ग
11. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड 18/33
12. वही, 17/28
13. वही, 18/14
14. तुलसीदास रामचरितमानस, बाल काण्ड
15. वही, अरण्य काण्ड
16. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 18/28-29

भोजपुरी लोकजीवन में राम

डॉ. सुनील कुमार तिवारी

लोकजीवन एक जीवन्त तथ्य है, जाग्रत अनुभूति है, प्रामाणिक सन्दर्भ है और निरन्तर विकासोन्मुख चेतना है। जिस प्रकार पृथ्वी पर नानाविध और अनन्त उत्पादन हैं, उसी प्रकार हमारे चतुर्दिक विस्तृत लोकजीवन का स्वरूप भी अपरिमित है। किसी देश की सभ्यता-संस्कृति, रीति-नीति, कला, काव्य, संगीत, धर्म-आचार, सामाजिक आकांक्षाओं और अभ्युदय का सूक्ष्म अवलोकन वस्तुतः लोकजीवन के गहन पर्यवेक्षण के बिना नहीं किया जा सकता। संसार के प्रत्येक क्षेत्र के ज्ञान-अनुभव-विचार, व्यवहार का आदि निवास लोककण्ठ में ही है। लोक ही निरन्तर देदीप्यमान आलोक है, जिसकी उपस्थिति में हम अपने बाहर-भीतर को भली-भाँति देख-पहचान सकते हैं। वस्तुतः लोक का प्राणी, समूह की वाणी में जीवन की भावस्थितियों को हमेशा ही प्रकट करता आया है, फलतः हमारी जितनी भी परम्पराएँ-कथाएँ-विधाएँ हैं, उन सबका निहित बीज हम लोक-साहित्य में देख सकते हैं।

'रामकथा का वैदिक स्नायु मण्डल' शीर्षक निबन्ध में कुबेरनाथ राय ने उचित ही प्रतिपादित किया है कि—''रामकथा के मुख्य स्रोत वैदिक साहित्य और आर्य-आर्येतर लोक-साहित्य रहे होंगे। इन्हीं में रामकथा के बीज निहित हैं।'' इस सन्दर्भ में भोजपुरी लोक गीतों को देखें तो वहाँ राम का वृत्त बहुत ही मुखर, व्यापक, विविधवर्णी, लोकजनीन, बहुवचनिक और बहुरंगे रूप में उपस्थित है। राम वहाँ आमजन की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, लाभ-हानि, संकल्प-विकल्प से घिरे-लिपटे मानव हैं, बहुत ढूँढ़ने पर भी वहाँ मर्यादा के प्रकाश-वृत्त में आप्लावित उनकी न कोई अभिजात मूर्ति मिलती है, न ही देवत्व का दुर्लभ अभिधान प्राप्त होता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के अनुसार, ''लोक के विरोध में खड़ा होने वाला व्यक्ति रावण है, पर जो लोक में रमकर जल बने, बह जाये, वायु बने, सबको शीतल करे, वही राम है।'' वस्तुतः हिन्दू, जैन, बौद्ध, ब्राह्मण, अब्राह्मण, आर्य-आर्येतर, भारत और भारत के बाहर, दक्षिण एशिया आदि में सर्वत्र राम और रामकथा इसी रूप में लोक विश्वास का अंग बनकर प्रतिष्ठित है। कोई भी कल्पित अभियानमूलक या आरोपित कथा इतनी व्यापकता और गहराई में सदियों तक लोक-स्मृति का अभिन्न हिस्सा हो ही नहीं सकती। लोकसम्मत राम शास्त्रसम्मत राम के मुकाबले आमजन के ज़्यादा क़रीब इसीलिए ठहरते हैं, क्योंकि उनमें मानवीयता की गहरी अनुगूँज मिलती है। मैथिलीशरण गुप्त कितना सटीक फरमाते हैं—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।।

भोजपुरी लोक-साहित्य में अभिचित्रित राम लोकजन के प्रतीक हैं। फलतः रामकथा में वर्णित-चित्र आमजन के जीवन की आशा-अभिलाषा, सरलता, रोष, आशंका और हास-परिहास के समतुल्य हैं। एक प्रसिद्ध सोहर में चित्रित प्रसंगों पर विचार कीजिए—राम का जन्म होने को है, कौशल्या आम

स्त्री की भाँति पति दशरथ से पूछती हैं कि पुत्र जन्म की ख़ुशी में आप क्या-क्या दान देंगे, क्या-क्या लुटायेंगे? दशरथ सर्वस्व लुटा देने की बात कहते हैं। राम का जन्म होता है। पण्डित उनके 12 वर्ष के वनवास की भविष्यवाणी करते हैं। यह सुनकर दश रथ दुखी हो जाते हैं, पर राम के पुनः वन से लौट आने की बात कौशल्या को दुख सहने का धैर्य देती है। सबसे बड़ी प्रसन्नता कौशल्या के लिए यह है कि राम-जन्म से उनका बाँझपन छूट गया।

लोकमानस कैकेयी को लेकर आक्रोशित है और इसकी वजह कैकेयी का अशोभन व्यवहार है। एक गीत में वर्णित है कि रामजन्म के उछाह में दशरथ जब पूरी अयोध्या लुटा देने की बात करते हैं तो कैकेयी सोच-समझकर राज लुटाने की चेतावनी देती हैं, क्योंकि भरत आधे के हक़दार हैं।

राम वन के लिए प्रस्थान करते हैं और उन्हें रोकने हेतु बच्चों से धमार रचने को कहा जाता है, पर राम नहीं रुकते। कौशल्या का मातृ-हृदय चीत्कार कर उठता है। वे तत्क्षण बेर के वृक्ष से प्रार्थना करती हैं और बेर के काँटे राम की पगड़ी में फँस जाते हैं, जिससे राम कुछ देर के लिए रुक जाते हैं। माता बेर को आशीष देती हैं कि तुम्हारी जड़ पाताल तक जाये ताकि तुम्हें कोई उखाड़ नहीं सके। माता चकवे से पता पूछती हैं, वह बहाना करता है कि मैं तो अपनी प्रियतमा चकवी के साथ सोया था, पता नहीं, राम कब चले गये। दुखी होकर कौशल्या शाप देती हैं कि रात में तुम दोनों को एक-दूसरे के वियोग में तड़पना पड़ेगा। फिर वे धोबी-धोबिन से पूछती हैं। दोनों कहते हैं कि हम लोगों ने राम-लक्ष्मण की पगड़ी धो दी थी। माता प्रसन्न होकर आशीष देती हैं कि तुम बहुत से कपड़े धोओगे, लेकिन कभी किसी का एक भी कपड़ा इधर-उधर नहीं होगा। यानी स्मृति सम्पन्न होओगे। सोहर की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

ओबरिन बोलेली कोसिलारानी, सुनीं राजा दसरथ हो।
आहो, जहु घरे राम जनमिहेन, त काइ लुटाइबि हो।।
भले बउरइलु कोसिला रानी, काइ बउरावेला हो।
आहो, जहु घरे राम जनमिहें, त कूछो ना राखबि हो।।
सेर जोखि सोनवा लुटाइबि, पसेरी जोखि रूपवा हो।
आहो, सगरो लुजोधेया जुटाइबि कुछो ना राखबि हो।।
अधे राति गहले पहर राति, अवरू तीसर राति हो।
आहो, बाजे लागल अनन्द बधावा, महल उसे सोहर हो।।
मोरा पिछुअरवा बिपर बसे बेगे चलि आबहु हो।
ए बिपर, खोलहु पोथिया पुरान, कवन लगने राम जनमले हो।।
रोहनी नछतरे राम जनमले, बहुत सुख पइहन हो।
आहो, बारहे बरिस राम होइहन, त बन के सिधरिहेन हो।।
अतना बचन राजा सुनलन सूनहिं न पावेले हो।
आहो, गोड़ मुड़ तनले चदरिया, सूतेले घर बाहर हो।।
सउरिन बोलेली कोसिला रानी छतिया दबा देइ हो।
आहो, छुटेले बंझिनिया के नाम, बलइया राम बने जास हो।।
ओबरिन बोलेली केकइया रानी, सूनु राजा दसरथ ए।
आहो, जानि बूझि अवध लुटाइबि, भरथ आधा चाहेले हो।।

× × ×

कवन असीस हम दीहीं धोबिया, त जिआरा अनन्द कएलऽ हो।
आहो, लदिआ धोइहऽ सौ साठ, साम सुधि राखहु हो।।

उपर्युक्त गीत में करुणा के साथ-साथ निःसन्तानता की कसक, कैकेयी का अशोभन आत्मकेन्द्रण और सद्भाव-सहयोग रखने वाले स्थावर-जंगम सबके प्रति कौशल्या की असीम कृतज्ञता की निर्मल लोकभावना प्रकट है। कहते हैं, बेर की जड़ पाताल तक रहती है, धोबी कभी किसी का कपड़ा नहीं भूलता तथा चकवा-चकवी दिन में तो साथ रहते हैं, पर उनकी रातें वियोग में ही व्यतीत होती हैं। इस जनविश्वास को जनमानस ने राम और कौशल्या से जोड़ दिया है।

रामायण के अनुसार दिन के ठीक बारह बजे अभिजीत मुहूर्त में राम जन्म लेते हैं, लेकिन निम्नलिखित सोहर में राम-लक्ष्मण का जन्म रात में होता है। अँधेरे के कारण जन्म संस्कार के विधान की वस्तुएँ मिल नहीं रही हैं, फलतः पुत्र प्राप्ति की ख़ुशी में महँगी चीज़ों से उन विधियों को सम्पन्न करने की प्रतिज्ञा की जाती है। यहाँ एक बहुत ही सहज-स्वाभाविक हुलास का बड़ा ही प्रामाणिक दृश्य बनता है—

सांझहिं जनम लेले रामचन्दर, आधी रात लखन हे।
ललना भोरहिं तीनों घर बाजेला बधइया महल उठे सोहर हे।।
सांझहिं रखनी हँसुअवा, हँसुअवा नाहिं मीलेला हे।
ललना, सोने के हँसुअवा से नार छीलब, राम जी जनम लिहले हे।।

एक अन्य सोहर गीत में राम के बाल-सौन्दर्य की झाँकी के साथ कौशल्या के औदार्य का सुन्दर वर्णन है। प्रस्तुत गीत में बालक राम की छोटी-छोटी लाल-लाल दोनों हथेलियों की उपमा दो लालों से दी गयी है। राम के भव्य ललाट पर माणिक प्रकाशित हो रहे हैं। कौशल्या अपनी दोनों गोतनियों को पत्र लिखकर पुत्र को देखने का अनुरोध करती हैं। वे दोनों आ जाती हैं और उनके बैठने के लिए उचित आसन का प्रबन्ध किया जाता है, पर कैकेयी-सुमित्रा पहले राम को दिखाने का अनुरोध करती हैं और बच्चे को देखकर प्रसन्नता से वापस जाने के लिए उद्धत हैं—

जब रघुनन्दनन भुइयाँ लोटे, अवरू से भुइयाँ लोटे हो
ललना, हथवा में दुइ दुइ लाल, त लिलरा मानिक बरे हो।।

× × ×

तोहरा उठवले नाहिं ऊठब, बइठवले नाहिं बइठब हो।
रानी, रामजी के देहु ना देखाइ, बिहँसि घरवा जाइब हो।।

लोक की आँखों में स्थित राम के इस सौन्दर्यमण्डित स्वरूप को तुलसी 'कोटि मनोज लजावनहारे' कहकर मण्डित करते हैं। राम सौन्दर्य के सिन्धु हैं, वे बाहर-भीतर दोनों से सुन्दर हैं—'काम कोटि छबि स्याम सरीरा, नील कंज बारिद गम्भीरा।'

एक दूसरे गीत में कौशल्या को राम जैसे पुत्र की प्राप्ति सूर्यनारायण की आराधना के फलतः बतायी गयी है। राम के सूर्यवंशी होने के लोकप्रमाण के साथ-साथ सूर्य पूजा की प्राचीन लोक-परम्परा और पुत्र-प्राप्ति के अगणित उत्साह का यहाँ बड़ा ही लोकरंजक चित्र मिलता है। बीच-बीच में मार्मिक प्रसंग भी अनुस्यूत हैं। कौशल्या की पुत्र प्राप्ति की सूचना उनके पितृगृह को भेजी जाती है, पर नाई के सन्देश पर सहज विश्वास न कर कौशल्या की माता अत्यन्त मार्मिक वचन कहती हैं—

मोर धिया लड़िका से बूढ़ी भइली, अवरू से बढ़ी भइली हो।
चेरिआ, मोर धिया नान्हें के बँझिनिआ, होरिला कहाँ पाई नू हो।।

अर्थात्, मेरी बेटी तो बूढ़ी हो गयी। वह जन्म से ही बाँझिन है, उसे पुत्र की प्राप्ति कैसे हो सकती है। वस्तुतः दशरथ का दर्पण में अपने श्वेत केश देखना, अवस्था ज्ञान और पुत्रहीनता का विक्षोभ यह सन्दर्भ तो मानस में वर्णित है, पर लोक गीत का यह संकेत कि रानी की भी उम्र हो गयी है, फलतः लोक में वे बन्ध्या के रूप में जानी जा रही हैं। इस कारण कौशल्या की माता का नैराश्य जितना स्वाभाविक, मार्मिक और लोकानुभूत है, रामजन्म की प्रामाणिक सूचना के साथ उनकी प्रसन्नता का चित्र भी उतना ही वास्तविक और सजीव है। नाई कहता है–

रानी, रउरा भइले दीनदयाल, जनमले रघुनन्दन हो।

राम सामान्य बालक नहीं हैं। एक दीन के हृदय का यह गहरा लोकविश्वास है कि रघुनन्दन जन्मजात दीनदयाल हैं। तुलसी भी कहते हैं–

भए प्रकट कृपाला-दीनदयाला।

सन्देशवाहक प्रसन्न होकर अयोध्या लौटे, उसने धन्य-धन्य कर देने वाली ख़बर दी है। कौशल्या के पिता से उनकी माँ का अनुरोध इस रूप में प्रकट है–

ए राजा, देई दीं ना हाथी से घोड़ा, लोचन नउआ लावेला हो।
ए राजा, देई दीं ना पाँचों टुक कपड़वा त होई जाई नू हो।।

रामावतार हेतु दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ के सम्पादन को मानसकार अपने कथन में शामिल करते हैं, जबकि लोक गीत उसके पीछे सामान्य व्रत को हेतु बताकर लोक सहजता और लोकोपलब्धता पर बल देते हैं। पुत्र सबको चाहिए और सुशील, सुन्दर, गुणवान, शीलवान पुत्र ही चाहिए, पर आमजन पुत्रेष्टि यज्ञ तो नहीं करा सकते, कदाचित् यही यथार्थता, यही सोच रामजन्म के मूल में कौशल्या की सूर्य पूजा और एकादशी व्रत के महत्त्व-निरूपण की वजह हो–

मोहिं तोहिं पूछिला कोसिला रानी अवरू सुमितरा रानी हो।
ऐ बहिनी, कवन बरत रउरा कइनीं, रमइया फतवा पाइला हो।।
बरत में कइलीं एकादशी, दोआदसी के पारन हो।
एक खलना, विधि से कइलीं अतवरवा, रमइया फलवा पाइला हो।।

ऐसे और भी कई गीत हैं, जिसमें रामजन्म को लेकर लोकमानस ने ऐतिहासिक तथ्य से भिन्न घटनाओं की चर्चा की है। एक गीत में एकादशी व्रत, सूर्य भगवान की आराधना, ब्राह्मण भोज, माघ स्नान तथा अग्नि तप जैसे व्रतों का महत्त्व वर्णित है। कौशल्या से स्त्रियाँ पूछती हैं कि इतना सुन्दर बालक राम किसकी कृपा का सुफल है। कौशल्या बड़ी श्रद्धा और प्रेम से अपनी तपश्चर्या को रेखांकित करती हैं–

कातिक कइलीं एकादसी दोआदसी के पारन हो।
ललना, अगहन कइलीं एतबार, त राम फल पइलीं हो।।
माघहिं मास नेहइलीं अगिन नाहिं तपलीं हो।
बहिनी, बइसाख मास बेनिया ना डोलइलीं, त राम फल पइलीं हो।
बहिनी भूखल बाभन जेवइलीं त राम फल पइलीं हो।।

वस्तुतः लोक प्रतीति तो यही है कि रामफल प्रयत्न साध्य है। 'तपः पूत' राम कौशल्या के व्रत-तपनिष्ठ आचरण तप से अवतीर्ण हैं। इस तरह, लोक दृष्टि कर्म-साधना में अपनी निष्ठा अभिव्यक्त कर रही है। केवल मन्त्रविद्ध फल खाने से राम नहीं प्राप्त होते। राम को पाने के लिए रमना पड़ता है। साधना में गहरे उतरना पड़ता है।

एक अन्य गीत में स्वयं राजा दशरथ पुत्र जन्मोपरान्त अपनी बड़ी रानी से पूछते हैं कि तुमने कौन-सा व्रत किया, जिसके फलस्वरूप तुम्हें राम जैसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई?

सभवा बइठल राजा दसरथ, मचिया कोसिला रानी हो।
रानी, कवन बरत तुहूँ कइलू, त राम फल पावेलू हो।।

कौशल्या ने जो उत्तर दिया, उससे उनकी गहन साधना, दयालुता, उदार हृदयता और आदर्श भारतीय नारी का कर्तव्यपूर्ण स्वरूप उजागर होता है—''मैंने एकादशी व्रत करके द्वादशी में पारण किया, विधि-विधान के साथ रविवार का व्रत किया, सास और जेठ का पूर्ण सम्मान किया तथा सास द्वारा पूजा के लिए लीपे हुए स्थान को न धाँगा और न जेठ (भसुर) की परछाईं तक का स्पर्श किया। नंगे को वस्त्र दिया और भूखे भानजे को खाना खिलाकर तृप्त किया, रूठी हुई ननद को मनाया, भूखे और दुखी लोगों का ख़याल किया, जिससे राम जैसे पुत्र-रत्न को पाने का फल प्राप्त किया—

सासु के लिपल नाहिं धँगलीं, भसुर परछाँहि ना हो।
राजा, रूसल ननदी मनवलीं, त राम फल पाइला हो।।
भूखा दुखा हम मानिला, लंगटा के बस्तर हो।
राजा, भूखल भगिना जेववलीं, त राम फल पाइला हो।।

दरअसल, लोक गीतों में निर्वंशता-निःसन्तानता एक अभिशाप की तरह अभिचित्रित है और इससे जुड़ी समाज की मान्यताओं के भी प्रामाणिक सन्दर्भ मौजूद हैं। एक गीत में वर्णित है कि राजा दशरथ का मुँह प्रातःकाल एक मेहतरानी देख लेती है, पर वह महाराज के दर्शन से स्वयं को धन्य या प्रसन्न न महसूस कर उदास हो अपने पति से शंका प्रकट करती है कि आज सुबह-सुबह निःसन्तान का मुँह देख लिया है, पता नहीं दिन कैसा कटेगा? उधर उसकी यह बात दशरथ के कानों में जा पड़ती है, फलतः राजा ग्लानि से भर उठते हैं। दशरथ की उदासी देखकर कौशल्या कारण पूछती हैं और कारण जानकर सुपुत्र प्राप्ति हेतु व्रत, आराधना, नियम-निष्ठा में अपने को पूरी तरह झोंक देती हैं। शीघ्र ही पुण्य लाभ मिलता है और पुत्रोत्सव की धूमधाम सर्वत्र छा जाती है। ऐसे अवसर पर कौशल्या, राजा से उस दलित स्त्री को सम्मानित करने की जो मनुहार करती हैं, वह कौशल्या की नम्रता, औदार्य, सजगता और स्नेहशीलता का परिचायक है—

कइसे के उठीं हम कोसिला रानी, हमरा बड़ा सोच बाटे हो।
आरे नीचहिं जात के हेलनिया, हमें निरबंसिया कहे हो।।
आरे कोसिला के भइले राजा रामचन्दर, सुमितरा के लछुमन हो।
आरे, केकई के भरत भुआल, तीनों रे घरे सोहर हो।।
ओबरी से बोलेली कोसिला रानी, सुनीं राजा दशरथ हो।
ए राजा, सोने के तिलरिया गढ़ाईं, हेलनिया पहिरावहु हो।।

कौशल्या पुत्र प्राप्ति के लिए कोई भी प्रयत्न नहीं छोड़ती हैं। वे गंगा की आराधना करती हैं कि यदि मुझे पुत्र की प्राप्ति होगी तो एक सहस्त्र मुनियों को निमन्त्रित करूँगी और उनका जूठन बटोरूँगी—

ए गंगाजी, एक सहसर मुनि नेवतबि जूठन बटोरबि हो।

उन्हें निश्चित समय पर पुत्र की प्राप्ति होती है, मुनियों और गोतिया लोगों को निमन्त्रित करते-करते राजा दशरथ के पाँव घिस जाते हैं, कौशल्या का आँचल जूठन बटोरते-बटोरते धूमिल हो जाता है और गोतनियों की माँग में सिन्दूर भरते-भरते उनकी उँगली घिस जाती है—

राजा दसरथ के पइयाँ खिआइ गइले मुनि लोग नेवतत हो।
ए ललना कोसिला के अँचरा धूमिल भइले, जूठन बटोरत हो।।
राजा दशरथ के पउआँ खिआइ गइले गोतिया बटोरत हो।
ए ललना, कोसिला के चुटकी खिआइ गइले, गोतनी बहोरत हो।।

सन्तान प्राप्ति के लिए आज बड़े-बड़े विज्ञापन दिखते हैं, तकनीक का प्रचार दिखता है, पर समाज से न तो अभी तक निःसन्तानता का दंश मिटा है, न ही हृदय की वह टीस ही ख़त्म हुई है। इस स्थिति में मौजूद हम अपने कई नाते-रिश्तेदार और मित्रों को याद कर सकते हैं और बार-बार इस गीत को अपने भीतर गूँजता हुआ पाते हैं।

वस्तुतः लोक गीतों में राम विशिष्ट और आम के बीच लगातार आवाजाही करते हैं। तुलसी भी अपनी कथा में इसी शैली को अपनाते हैं। राम की साधारणता बनी-बची रहे, इस पर उनका पूरा बल है, पर जहाँ-जहाँ उनका दास्य भाव जागता है, वह लोक को चेताते है कि राम की लीला को मानव की सामान्य संसारी चेष्टा मत समझ लेना, राम साक्षात् ब्रह्म हैं।

लगातार एक-दूसरे के आगे-पीछे सामान्यतः और देवत्व का आरोपण प्रायः लोक गीतों में द्रटव्य है। राम तारकनाथ हैं, रामनाम तारक मन्त्र है—लोक में इस सहज विश्वास की जड़ बड़ी गहरी है।

जहाँ जहाँ राम मोरे नहइहें, तऽ धोतिया सुखइहें नू हो।
ए ललना, तहाँ तहाँ पापी लोग नहइहें, सेहो रे तरि जइहें नू हो।।

यानी जहाँ-जहाँ राम स्नान करेंगे और धोती सुखायेंगे, वहाँ कोई पापी अगर स्नान करेगा, तो उसे भी मुक्ति मिल जायेगी।

कुछ गीतों के अन्त में काव्य के 'शिवेतरक्षतयेते' के आदर्श के अनुगमन का निर्देश भी मिलता है कि जो इस गीत को गाता या गाकर सुना है, उसका सौभाग्य जन्म-जन्मान्तर तक अच्छा रहता है और पुत्र-फल की प्राप्ति होती है—

इहे मंगल जे गावेला, गाइ के सुनावेला हो।
ए ललना, जनम जनम एहबात पुतर फलवा पावेला हो।।

मूलतः रामकथा जिजीविषा, करुणा और अभय की गाथा है, जिसकी पुष्टि में कई लोक गीत रखे जा सकते हैं। एक गीत में प्रियतम के प्रति प्रियतमा की चरम आसक्ति का बड़ा ही कारुणिक सन्दर्भ मिलता है। रामायण, रामचरितमानस आदि में ऐसी कथाएँ नहीं मिलतीं, पर लोक-कल्पना से जो प्रादुर्भूत है, वह अद्‌भुत है।

राजा दशरथ की रानी गर्भवती हैं। उन्हें हिरण का माँस खाने की इच्छा होती है। फलतः शिकारी वन में भेजे जाते हैं। हिरणी बहेलिये से हिरण को छोड़ देने की प्रार्थना करती है, पर कोई सुनवाई नहीं होती। हिरणी हिरण से अपनी आशंका ज़ाहिर करती है, पर हिरण यह कहकर कि 'मेरा हरिआइन माँस कोई नहीं खायेगा' सान्त्वना बँधाता है। पर ऐसा होता नहीं, शिकारी हिरण को मार देते हैं। हिरणी पीछे-पीछे कौशल्या के पास जाती है और प्रार्थना करती है कि 'रानी जी जिस हिरण का माँस आपके यहाँ बन रहा है, उसकी खाल मुझे देने की कृपा करें।' रानी यह कहकर कि राम उस खाल से खँजड़ी और ढोलक मढ़वाकर बजायेंगे, खाल सौंपने से मना कर देती हैं। निराश होकर हिरणी वन में लौट जाती है, पर उसका यह मार्मिक कथन हर किसी के दिल को बेध देता है—

आँगन सून चउकिया बिना, मंदिल दियरा बिना हो।
ललना, ओइसन सून बिरदाबन, एक रे हिरना बिना हो।।

हिरणी सोचती है, अगर मेरे हिरण की खाल मुझे मिल जाती तो उसे पेड़ पर टाँग देती। घूम-घूमकर चरती और उस खाल को देख-देखकर अपने हृदय को शान्त करती—

अपन खलड़िया जहुँ हम पइतों, त पेंड़ टाँगि दिहतो हो।
ललना, घुरुनि घुरुनि वन चरतों, त जिअरा बुझइतों नू हो।।

आज के स्मृतिविहीन समय में यादों के सहारे सन्तोष अर्जित करने की सोच सचमुच चकित करती है और लोक की गहन अनभूति-प्रवणता मन को मोह लेती है।

इसी भावभूमि की तर्ज पर किंचित परिवर्तन के साथ उपर्युक्त गीत के कई अन्य संस्करण भी उपलब्ध हैं। एक अन्य गीत में हिरणी की प्रार्थना को रानी स्वीकार ही नहीं करतीं, वरन् पुरस्कार देने का वचन भी देती हैं—

सोनवे मढ़इबो दुनो सींगिआ, भोजनिया तिलचाउर हो।
हरिनी, भुभूतऽ जंगल बीचे राज, हरिनवा नाहिं मारबि हो।।

यहाँ पूर्वार्द्ध का थीम वही है, पर उत्तरार्द्ध कौशल्या के स्वार्थी रूप को नहीं दिखाता। इस गीत में प्रेम, करुणा और दया का उत्कृष्ट सम्मिश्रण हुआ है।

कुछ लोक गीत प्रचलित रामकथा से पूर्णतया विलग कथा को लेकर चलते हैं, जहाँ लोकमन की कल्पना और साहस पर अचरज होता है। एक गीत में सीता निष्कासन के बदले राम का गृहत्याग, सीता का उनकी खोज में जाना, पुनः दोनों का मिलन, मानिनी सीता का मान तथा राम द्वारा पुनः गृहत्याग करने की धमकी का उल्लेख हुआ है—

अइसन बोली जनि बोलऽ, त तुहूँ मोर सीता हो।
सीता, फेरू से जाइबि मधुबनवा, लवटि नाहिं आइबि हो।।

एक दूसरे गीत में लोकमानस ने राम वनगमन का सारा दोष कैकेयी के माथे से हटाकर सीता के सिर पर थोप दिया गया है। सीता का मन अयोध्या में नहीं लगता। हमेशा जनकपुर की याद आती है। राम से भी वे कटी-कटी रहती हैं, नहीं बोलतीं। सब चिन्तित हैं, अन्त में राम असहाय हो सीता से कहते हैं कि, ''सीता, तुम अयोध्या के राज का उपभोग करो, मैं वन को चला।''

डासत सेजिया उड़ास देलि, हमसे ना बोलेली हो।
ए सीता, भुभूतऽ अजोधेया के राज, त हम चलली बने नू हो।।

एक अन्य गीत में भी सर्वविदित एवं प्रचलित कथ्य के विपरीत वर्णन है। यहाँ राम सीता को अयोध्या में छोड़कर वन जाते हैं और माँ से सीता की देखरेख की प्रार्थना करते हैं। कौशल्या स्पष्ट कह देती हैं कि अगर सीता मेरे कथनानुसार चलेगी तो मैं यथेष्ट सत्कार करूँगी। सीता राम से पूछती हैं, ''जिस प्रकार बिना केवट की नाव का क्या ठिकाना, उसी पकार पति के बिना स्त्री का स्थान कहाँ है?'' राम उत्तर देते हैं, ''बिना केवट की नाव जाते-जाते समुद्र में लगेगी, उसी प्रकार पतिविहीन स्त्री का ठिकाना उसके पिता के घर (नैहर) है।'' सीता कुछ ही दिनों में नैहर के लोगों के बदले हुए व्यवहार को जान लेती हैं और विह्वल होकर सोचती हैं कि किसी भाँति राम यदि घर में रह जाते तो पास रहतीं, रानी कहलातीं—

आरे, कइसहुँ राम घर रहितें, रनिया कहइतीं, जइतीं घरवा आपन हो।

सीता वनवास की कथा रामचरितमानस में नहीं है, पर लोक गीतों में तो नवीन उद्‌भावनाओं की झड़ी-सी लगी है। एक गीत के अनुसार सीता वनवास में भयभीत हैं कि प्रसवकाल में कौन सँभालेगा? वनदेवी आगे बढ़ देखरेख करती हैं। पुत्रोत्पत्ति की ख़बर के साथ सीता सन्देशवाहक को

हिदायत देती हैं कि राम को कुछ नहीं बताना। पर संयोग से सन्देशवाहक को सबसे पहले पोखरे पर दातुन करते राम ही मिल जाते हैं और सीता का आदेश भी जान लेते हैं। सभी सीता के सन्देशवाहक को भली-भाँति पुरस्कृत करते हैं। यह गीत बहुत ही कारुणिक है। इसमें राम की मानसिक दशा का अनुमान सहज ही किया जा सकता है–

दशरथ चढ़े के घोड़वा, कोसिला देली पियरी नू हो।
आरे, बाबू लछुमन हाथू के मुनजरिया, त राम जनि देखसु हो।।

सीता निष्कासन की प्रचलित कथा से विलग वर्णन वाले भी ढेरों गीत मिलते हैं। एक गीत में राम सन्तान नहीं होने के कारण सीता को वन में निष्कासित कर देते हैं, पर सन्देशवाहक द्वारा ख़बर को राम से छुपाये जाने के बावजूद पोखरे पर उन्हें पुत्रोत्पत्ति की सूचना मिल जाती है तो बड़ी बेचैनी में राम सीता के पास पहुँचकर घर लौटने का आग्रह करते हैं। वनदेवी भी सीता को समझाती हैं, पर सीता का स्त्री स्वाभिमान अनुमति नहीं देता–

ललना हम न सहब सामी बात, धरती तर समायेब हो।

इस गीत में राम पोखरे पर दातुन करते जनसाधारण की तरह चित्रित हैं और दूसरी ओर धोबी की व्यंग्योक्ति के बदले पुत्रवती नहीं होने के कारण सीता का निष्कासन वर्णित है।

एक अन्य गीत में सीता का स्वाभिमान और गुरुभक्ति वर्णित है। राम किसी मतभेद के कारण सीता का वन-निष्कासन कर देते हैं, पर एक यज्ञ के आयोजन हेतु सीता को वापस बुलाना आवश्यक हो जाता है। राम समस्या लेकर गुरु वशिष्ठ के पास जाते हैं और गुरु वशिष्ठ वन में आकर सीता को समझाते हैं। गुरु के कहने पर सीता लौटने को तैयार हैं, लेकिन उन्हें शंका है कि जब राम की बातों का स्मरण आयेगा, तब वहाँ रहना कैसे सम्भव होगा? सीता राम के व्यवहार से कितनी मर्माहत हैं, देखिए–

कहल करबो ए गुरु कहल करबो, रउरो कहल करबो हे।
गुरुजी राम के कहल मनवा परिहेन, अजोधा में ना रहबि हे।।

राम के कटु व्यवहार के आगे सीता जैसी पतिपरायणा नारी का ऐसा कथन अनुचित नहीं जान पड़ता, बल्कि पुरुष-प्रधान समाज की प्रताड़ना का प्रामाणिक वृत्त बनता है। हमारा स्त्री-विमर्श पश्चिम की ओर दौड़ लगायेगा, पर लोक में मौजूद ज्ञानराशि से मुँह फेर लेगा–

जनि कहीं ए गुरुजी जनि कहीं, केहु कहेले नू हो।
गुरुजी लागेला करेजवा में आग, त धरती सरन दीहें हो।।

सीता के मन में कितनी गहरी टीस है, एक अन्य गीत में इसकी झलक इस तरह है–

ए गुरुजी पाँच डेग अजोधेया में जाइबि, फेरू चलि आइबि हो।

गुरु का मान भी बचे और अपना स्वाभिमान भी बचे इसलिए सीता बीच का रास्ता लेती हैं। वे अयोध्या जाने को राजी होती हैं, पर कहती हैं केवल पाँच क़दम चलकर वे वापस लौट जायेंगी।

कुल मिलाकर राम से सम्बद्ध लोक गीतों में लोकजीवन के सभी पहलुओं को सम्मिलित किया गया है। इस चित्रफलक में लोकप्रचलित नीतिवाक्य, अन्धविश्वास, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, रीति-रिवाज, लोकानुभूति, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, खेती-बाड़ी सभी तत्त्व सम्मिलित हैं।

भोजपुरी लोकजीवन का राम के साथ अटूट नाता उनके लोक गीतों में पूरी तरह निबद्ध है। दरअसल, पूर्वांचली समाज का कोई प्रतीक पुरुष है तो राम हैं। कोई ऋतु है तो बसन्त, जिसमें राम नवमी आती है, कोई त्योहार है तो दीपावली, जिस दिन राम अयोध्या लौटते हैं, कोई लोक नाट्य है

तो रामलीला, जिसमें राम बड़े ही स्वाभाविक और आत्मीय रूप में उपस्थित होते हैं। इन्हीं प्रतीकों और उपकरणों से भोजपुरी लोकजीवन और संस्कृति की पहचान बनती है।

वस्तुतः हर भाषा-बोली में शास्त्र से विलग होकर लोक ने अपनी उद्भावनाओं और कल्पनाओं की इतनी बृहत् यात्रा की है, इतना सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया है, स्वानुभव की प्रामाणिकता के साथ जिस भाँति सहजता और सरसता की भावधारा बहायी है कि हमें यह स्वीकारना होगा कि यही हमारी वास्तविक थाती है। आज आश्चर्य होता है, साधारण जन की उस अक्षय शक्ति पर, जो देवता को भी अपने वृत्त में बाँधने में समर्थ हैं।

पुरातन कथा को नवीन रंगों से उकेरने का प्रयास

(नरेन्द्र कोहली के राम केन्द्रित उपन्यासों के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. अनिता पी.एल.

साहित्य मानव समाज की सांस्कृतिक धरोहर है। साहित्य देश के इतिहास और संस्कृति का निर्माण करता है। साहित्य रचना ऐसी मानव क्रिया है जो सामाजिक जगत से सामग्री ग्रहण कर उसे एक विधान में इस तरह गुम्फित करती है कि व्यक्ति उसे पढ़कर या देखकर मुग्ध हो जाये, उसमें तल्लीन हो जाये। जो कृति इतना काम करने में सक्षम होती है, उसे ही हम साहित्य कृति कहने का दावा करते हैं। प्रत्येक युग में युगीन आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य के नये-नये रूप आकार लेते हैं। साहित्य कभी निरुद्देश्य नहीं होता। किसी-न-किसी उद्देश्य को समाज के सामने लाने के उद्देश्य से ही साहित्य सृजन होता है। किसी देश को पूरी तरह जानना चाहें तो उस देश का साहित्य ही हमें मार्गदर्शन देने में सहायक सिद्ध होता है। साहित्यकार की दृष्टि इतनी पैनी और सूक्ष्म होती है कि समाज में व्याप्त सत्-असत् का, अत्याचारों का, शोषणों का पर्दाफ़ाश करती है।

उपन्यास मानव जीवन की सम्पूर्णता को यथावत् प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। उपन्यास का काम इस नये युग के नये मानव की वास्तविकताओं और समस्याओं को प्रस्तुत करना है, जो आधुनिक सभ्यता के साथ उत्पन्न हुए हैं। उपन्यासकार के लिए आज मानव जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं रहा। मानव जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी पक्ष बहुत खुलकर आज उपन्यासों में आने लगे हैं। स्वाधीनता के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनेक विषयगत एवं रचनागत प्रयोग हुए हैं।

हर एक साहित्यकार का अपना अलग-अलग दृष्टिकोण होता है, जिसके अनुसार वह साहित्य सृजन करता है। उनकी रचनाओं से हमें यह बात ज़ाहिर होती है कि वह अपने समाज के प्रति कितने जागरूक हैं? और समस्याओं को सुलझाने में उनकी प्रतिक्रिया कितनी है? वास्तव में लेखक की प्रतिक्रिया पाठकों के लिए ऊर्जा बन जाती है। लेखक अपने विशेष जीवन दृष्टिकोण पर दृढ़ रहते हुए समाज की हर विडम्बना को, हर सच्चाई को साहस से उद्घाटित करता जाता है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में कालजयी मनीषी कथाकार के रूप में नरेन्द्र कोहली प्रख्यात हैं। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, व्यंग्य, निबन्ध, जीवनी, संस्मरण, आलोचना, बाल-साहित्य, कविता आदि साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है। उनके कई उपन्यासों को महाकाव्यात्मक कहा जा सकता है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से आधुनिक समाज की समस्याओं का विश्लेषण कोहली जी की अन्यतम विशेषता है। अतः उनको सांस्कृतिक-राष्ट्रवादी साहित्यकार कहा गया है। उनकी रचनाओं पर भारत की पारम्परिक जीवन दृष्टि का गहरा प्रभाव पड़ा है।

नरेन्द्र कोहली पुराकथाओं को समकालीन सन्दर्भों से जोड़कर युगीन समस्याओं को मुखरित करने में विशेष रूप से समर्थ हैं। रामायण और महाभारत के विस्तृत कथा सन्दर्भों को कोहली जी ने अत्यन्त सरलता से, लेकिन तर्क और युक्तिपूर्ण ढंग से वर्तमान से जोड़ा है। रामायण कथा से सम्बन्धित उपन्यास है 'अभ्युदय', जो पाँच शीर्षकों में—दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, युद्ध भाग-1, युद्ध भाग-2 में विभक्त है।

1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान जो भीषण नरहत्या हुई उसने कोहली जी के मन पर बड़ा आघात किया, तब उन्होंने रामकथा के उस सन्दर्भ को स्मरण किया जब राक्षसों द्वारा निरपराध ऋषि-महर्षि को मारने और उनका वंशनाश करने का भीषण कार्य हो रहा था। फलस्वरूप उन्होंने 'अभ्युदय' उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास रामकथा के उस सन्दर्भ का पुनराख्यान नहीं है बल्कि उस माध्यम से वर्तमान समाज का प्रत्यक्षीकरण है।

तात्कालिक अन्धकार, निराशा, भ्रष्टाचार एवं मूल्यहीनता के युग में नरेन्द्र कोहली ने ऐसा कालजयी पात्र चुना है जो भारतीय जनता के लिए हमेशा फ़ख्र की बात रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। कोहली जी ने भगवान राम को भक्तिकाल की भावुकता से निकालकर आधुनिक यथार्थ की ज़मीन पर खड़ा कर दिया। उनका आग्रह है कि यह मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा है। वर्तमान में चारों ओर जो मूल्य च्युति हो रही है उसकी ओर समाज का ध्यान आकर्षित करना भी उनका लक्ष्य है। नैतिक मूल्यों पर विश्वास करने वाले कोहली जी ने, राम के पात्र को चुनकर अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है। कोहली जी का स्वप्न है कि भारतीय आदर्शों का पुनरुत्थान हो। क्योंकि वर्तमान समय में हमारे भारत में सब प्रकार के आदर्शों की पराजय हो रही है। आदर्शों को लेकर जीने वालों को अनेक कठिनाइयों और षड्यन्त्रों से गुज़रना पड़ता है।

युग-युगान्तर से प्राचीन होती जा रही रामकथा को अपने राम केन्द्रित उपन्यासों के द्वारा वर्तमान के अनुकूल प्रस्तुत करके रामकथा की गरिमा एवं रामायण के जीवन मूल्यों का लेखक ने सम्यक् निर्वाह किया है। रामायण कथा की मूल घटनाओं को परिवर्तित किये बिना उन्होंने जो प्रयत्न किया है, वह सराहनीय है।

किस प्रकार एक उपेक्षित और निर्वासित राजकुमार अपने आत्मबल से शोषित, पीड़ित एवं त्रस्त जनता में नये प्राण फूँक देता है। उसका उत्तम उदाहरण है कोहली जी के राम केन्द्रित उपन्यास। इन उपन्यासों के माध्यम से कोहली जी ने तत्कालीन भारत के सामाजिक-राजनीतिक वातावरण का सजग अवलोकन किया है। एक-एक उपन्यास को लेकर चिन्तन-मनन करने पर एक बात तो अवश्य सामने आती है कि हम कैसे मूल्यों से दूर हो रहे हैं? और अपने भारतीय आदर्शों से कितना दूर हो गये हैं? सिर्फ़ प्रश्नचिह्न मात्र खड़ा करना उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं है बल्कि कैसे हम वापस अपने आदर्शों की ओर लौट सकते हैं? इसके लिए हमें कौन-सा पथ अपनाना है? उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द भी अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक जीवन में व्याप्त शोषण के विविध रूपों का चित्रण कर उसके विरुद्ध जन-भावना विकसित करने का प्रयास करते हैं ठीक वैसे ही कोहली जी ने भी अपने राम केन्द्रित उपन्यासों के ज़रिये, एक नये आदर्श रूपी भारत का निर्माण करने का भरसक प्रयत्न किया है।

'दीक्षा' उपन्यास की रचना के पीछे कोहली जी के अपने कुछ अनुभव भी जुड़े हुए हैं। बंगाल में पाकिस्तानियों का बर्बर अत्याचार और विशेषकर बुद्धिजीवियों का व्यापक संहार, बिहार में हरिजन हत्याकाण्ड आदि घटनाओं ने उन्हें प्राचीन कथा की ओर जाने के लिए विवश किया।

आज हमारे देश में दिखाई पड़ने वाली अनेक घटनाओं एवं शोषणों का सूक्ष्म चिन्तन-मनन करने पर पता चलेगा कि रावण और अन्य असुर हमारे बीच जन्म ले रहे हैं और आदर्श पुरुष राम कहीं खो गया है। हम प्रतीक्षा कर रहे हैं कि एक-न-एक दिन राम आयेगा और हमारी रक्षा करेगा। लेकिन कोहली जी ने अपनी प्रतीक्षा को राम केन्द्रित उपन्यासों में उकेरने का प्रयास किया है वह सफल भी रहा।

'दीक्षा' उपन्यास ऐसी भी नवीन उद्‌भावनाओं को लेकर प्रकट हुआ है। रामकथा का वर्णन करना मात्र उनका लक्ष्य नहीं था। बल्कि राम के चरित्र और कार्यों का तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना चाहते थे। उन्होंने पौराणिक कथा में दिखाई पड़ने वाली काल्पनिकता और अलौकिकता से राम को मुक्त करके तार्किक और मनोवैज्ञानिक सूझबूझ से कथा का नया संस्कार किया।

'दीक्षा' उपन्यास के द्वारा लेखक ने दो मुद्दों को पाठकों के सम्मुख रखने की कोशिश की है। पहला, गुरुकुल की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण का विश्वामित्र के आश्रम में जाना, ऋषिकुल बुद्धि और चिन्तन के केन्द्र हैं। राजा का प्रथम कर्तव्य है इनकी रक्षा करना। प्रतिगामी राक्षसी शक्तियाँ इन केन्द्रों का नाश कर रही थीं। विश्वामित्र ने इनके लिए राम को अपना माध्यम बनाया और दीक्षित किया। दूसरा प्रमुख मुद्दा दो राष्ट्रों के बीच सौहार्द स्थापित करने को लेकर है जिसको विश्वामित्र ने राम और सीता के विवाह द्वारा पूरा किया। पूरे उपन्यास में हम राम को एक आज्ञाकारी चरित्र के रूप में देखते हैं। विश्वामित्र ने अपनी रक्षा के लिए राम को जानबूझकर ही चुना, इस चयन के पीछे उपन्यासकार का तर्क है कि, जो अन्याय सहता है वही उस अन्याय का प्रतिरोध और प्रतिशोध कर सकने में पूर्ण सक्षम होता है। उनका मतलब है स्वयं राम अपने ही राज्य में अन्याय सह रहे थे, तब वह न्याय करने में कभी पीछे नहीं होंगे। यह तर्क वास्तव में सत्य निकला। राम ने ताड़का, सुबाहु, मारीच के अन्याय को रोकने के लिए उनका वध करके आश्रमवासियों में जीवन और विश्वास का संचार किया। उनकी यह प्रवृत्ति सभी के हृदय को जागरूक करने वाली थी। इस प्रकार उनके द्वारा समाज में जागृति लाने का प्रयास भी लेखक ने किया है। इस उपन्यास में राम ईश्वरीय राम न होकर मानवीय प्रतीत होते हैं और वे इसी रूप में सर्वत्र दिखाई देते हैं। वह आधुनिक मानव की भाँति संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ते हैं, अपनी सौतेली माँ के कारण अपने पिता से तिरस्कार सहन करने वाले एक सीधे-सादे पुत्र बन जाते हैं। परम्परागत कथा से राम को अलग करके सच्चे मानव के रूप में चित्रित करना उपन्यास में नवीनता लाने की कोहली जी की यह कोशिश वास्तव में सराहनीय है।

जब एक रचना अलौकिकता के स्तर से नीचे उतरकर पाठकों के बीच रहने योग्य बन जाती है, तब पाठक उस रचना को आत्मसात कर लेता है। कथा में वर्णित घटनाओं में तत्कालीन समाज के स्वरूप को देखकर पाठक और भी प्रभावित हो जाते हैं। कोहली जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से तत्कालीन भारत के सामाजिक-राजनीतिक वातावरण का सजग अवलोकन किया है। तत्कालीन समाज की घटनाओं का नयी दृष्टि से मूल्यांकन किया है। राजनीतिक सतर्कता, त्याग और वीरता का एक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ दीक्षा उपन्यास में राम के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है। राम विश्वामित्र को वचन देते हैं, "ऋषिवर, मैं आपको यह वचन देता हूँ कि मेरे जीवन का लक्ष्य राजभोग नहीं, न्याय का पक्ष लेकर लड़ना, अन्याय का विरोध करना, वैयक्तिक स्वार्थों का त्याग, जनकल्याण के मार्ग में आने वाली बाधाओं का नाश तथा सबके हित और सुख के लिए अपने जीवन को अर्पित

करना होगा।"[1] राम का लक्ष्य पारम्परिक और धार्मिक संस्कृति को बनाये रखने तथा इस मार्ग से जन-जीवन की सुरक्षा और मंगल करना है।

'अवसर' राम वनवास के सन्दर्भ पर आधारित है। कैकेयी की कूटनीति, राम वनवास, दशरथ की मृत्यु, सीता और लक्ष्मण दोनों का राम के साथ वन की ओर जाना जैसी पौराणिक घटनाओं के माध्यम से लेखक ने यहाँ आधुनिक राजनीति और शासकों की दुर्बलता जैसी बातों का वर्णन किया है। इसके विविध पात्रों द्वारा कथाकार ने नागरिकों को आह्वान किया है कि वे जाग उठें, अत्याचारों, अधर्मों और भ्रष्टाचारों से युक्त शासकों के विरुद्ध आवाज बुलन्द करें, स्वयं अपनी रक्षा करें। इस उपन्यास में भी कोहली जी ने समूचे राजनीतिक वातावरण का चित्रण किया है। राजनीति के सम्बन्ध में राम की अपनी मान्यता देखिए—"राज्य जन कल्याण के लिए होना चाहिए। प्रजा के दमन और हत्या के लिए नहीं, अतः राजसिंहासन से अनावश्यक चिपकना मेरे लिए आसक्ति से अधिक कुछ नहीं और आसक्ति सदा अन्याय की जननी होती है।"[2] इस उपन्यास में राम का ऐसा चित्र अंकित हुआ है जहाँ राम वनवास का दण्ड पाकर निराश नहीं होते बल्कि अपने सम्मुख आये जीवन चक्रों को घुमाते हुए आगे ले जाते हैं। जीवन की मुश्किलें बढ़ने पर भी राम अपनी निष्ठा में अडिग रहकर अपनी चेतना को गतिशील कर देते हैं। आधुनिक युग में मानव चेतना के एक प्रमुख अंग के रूप में गतिशीलता स्वीकृत हुई है, यह एक गत्यात्मक प्रक्रिया है, जो प्रगति का रास्ता खोल देती है। इससे व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र युगानुसारी कर्मों में प्रवृत्त होते जाते हैं।

कोहली जी ने दशरथ और अयोध्या के माध्यम से आज के राजनीतिक वातावरण का ही चित्र खींचा है। हम जानते हैं कि सत्ता में आते ही व्यक्ति अपनी सुख-सुविधाओं की ओर अधिक उन्मुख हो जाता है। अपने स्वार्थ के लिए सत्ता का उपयोग करता है। जनता का रक्षक नहीं बल्कि भक्षक बन जाता है। दशरथ में हम आज के शासक को देख सकते हैं। 'अवसर' उपन्यास में कोहली जी ने अयोध्या के महल और वहाँ के षड्यन्त्र का चित्रण और राम के वनवासी जीवन के प्रारम्भ का वर्णन किया है। राम को अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए वनगमन स्वीकार कर अपनी कर्मभूमि की ओर अग्रसर होते हुए चित्रित किया है। अपने कर्तव्यों के प्रति राम इतना निष्ठावान है कि वह लक्ष्मण से कहता है, "यह वनवास नहीं, मेरे जीवन का अभ्युदय है, संकीर्ण राजनीति से उबर, व्यापक मानवीय कर्तव्य निभाने का अद्वितीय अवसर है।"[3] राम चित्रकूट के शोषित, उपेक्षित लोगों को संगठित कर अन्याय और अत्याचार की ओर अग्रसर होती शक्तियों का प्रतिकार कर उनके मार्ग में प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं।

कोहली जी ने अपने उपन्यासों को नये रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। वर्तमान युग का प्रधान लक्षण इसकी बौद्धिकता है। समस्त तथ्यों को बुद्धि की कसौटी पर कसकर ही आज का मानव स्वीकार करता है। राम जैसे पात्र के माध्यम से लेखक ने यह दिखाने का भरसक प्रयत्न किया है कि सिर्फ़ एक व्यक्ति के द्वारा संघर्ष करने से समाज में परिवर्तन नहीं ला सकते इसके लिए शोषण से पीड़ित पूरी जनता को जाग्रत करना है। राम के अनुसार, "जन-सामान्य में जागृति लाकर, उन्हीं को प्रबुद्ध बनाकर, उसी पीड़ित, जाग्रत जनता के बीच में से तैयार की गयी सेना से हो सकता है।"[4] कोहली जी के माध्यम से राम उपेक्षित वर्गों को संगठित होकर संघर्ष करने के लिए आह्वान देते हैं। भारत को एक सशक्त राष्ट्र के रूप में निर्मित करने के उद्देश्य से ही कोहली जी ने राम जैसे सशक्त पात्र को चुना।

कोहली जी ने पुराण कथा को नये सिरे में प्रस्तुत करके यह दिखाने की कोशिश की है कि भारत का मंगलपूर्ण भविष्य तभी सम्भव है जब हम पाश्चात्य और पौरस्त्य संस्कृतियों के गुणात्मक और

युगानुरूप परिवर्तनों को समन्वित रूप से आत्मसात् करके अपना पथ प्रशस्त करें, नहीं तो एक-न-एक दिन भारत अपना अस्तित्व खो बैठेगा। उन्होंने वर्तमान भारत की अनेक समस्याओं को जैसे राजनीतिक खोखलापन, नैतिक मूल्यों का ह्रास, स्त्री का शोषण, भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक पतन आदि को अपने उपन्यासों में रामकथा के माध्यम से हमारे सामने रखने की कोशिश की है।

परिवार मनुष्य को सुरक्षा और शान्ति का वातावरण देता है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति का विभिन्नमुखी विकास होता है, यहीं व्यक्ति-जीवन नियन्त्रित और नियमित होता है। परिवार के सदस्यों के स्नेह और आत्मीयतापूर्ण आपसी व्यवहार से मानवीयता की भूमिका तैयार होती है, जिससे सामूहिक चेतना का भी उदय होता है। फलतः राष्ट्रीय और भावात्मक एकता दृढ़ होती है और सम्पूर्ण जनता शान्तिपूर्ण जीवन बिताने के लायक हो जाती है। 'अवसर' में संयुक्त परिवार के सदस्य हैं राम। उनका पूरा परिवार कई प्रकार की विडम्बनाओं से भरा है। सभी सदस्य एक-दूसरे को असन्तोष और आशंका की दृष्टि से देखते हैं। इन सारी बातों से राम अवगत हैं। राज्याभिषेक के पूर्व एक बार राम सीता से कहते हैं—"मुझे लगता है, सीते! इस कुटुम्ब में अनेक सन्देह, शंकाएँ, विरोध, द्वन्द्व, ईर्ष्याएँ स्वार्थ, द्वेष और जाने क्या-क्या विषैले जीव-जन्तुओं के समान मौन सो रहे थे। अब मेरे राज्याभिषेक की चर्चा से वे सारे जीव-जन्तु जाग उठे हैं। वे परस्पर लड़ेंगे। इस राज प्रसाद में बहुत कुछ विषैला हो जायेगा। इधर माँ के मन में आशंकाएँ हैं, उधर पिताजी के मन में। और मैं कैसे कह दूँ, सीते! कि मेरे मन में आशंका नहीं है"।[5]

कोहली जी ने नारी सम्बन्धित अनेक प्रसंगों को राम केन्द्रित उपन्यासों में लाने की कोशिश की है। 'दीक्षा' उपन्यास में अपने पति द्वारा उपेक्षित जीवन व्यतीत करने वाली कौशल्या को देख सकते हैं। उस समय यह परम्परा थी कि धनाढ्य एवं राजा-महाराजा की एक नहीं अनेक पत्नियाँ होती थीं। ये स्त्रियाँ अपने व्यक्तित्व, अपनी अभिलाषाओं को परिवार की सुख-सुविधा के लिए बलिदान कर देती थीं। दशरथ की दूसरी पत्नी सुमित्रा कौशल्या से एकदम अलग थी। उसकी आत्मा ने उस समय के पुरुषों द्वारा बहुविवाह की प्रथा को स्वीकार नहीं किया, तथा इस भावना का खुलासा वह दशरथ के सम्मुख भी कर देती है। ऐसे क्रान्तिकारी विचार होते हुए भी उसका ऐसे पुरुष के साथ विवाह होना इस बात का सबूत है कि उस समय नारी के अस्तित्व, उसके विचारों की कोई मान्यता नहीं थी। कैकेयी का चित्रण राम के प्रति क्रूर व्यवहार दर्शाता है लेकिन इसके पीछे वास्तव में दशरथ के प्रति प्रतिशोध की भावना थी। "मैं इस घर में अपने अनुराग का अनुसरण करती हुई नहीं आयी थी। मैं पराजित राजा की ओर से विजयी सम्राट को सन्धि के लिए दी गयी एक भेंट थी। सम्राट और मेरे वय का भेद आज भी स्पष्ट है। । मैं इस पुरुष को पति मान पत्नी की मर्यादा निभाती आयी हूँ, पर मेरे हृदय से इनके लिए स्नेह का उत्स कभी नहीं फूटा। ये मेरी माँग का सिन्दूर तो हुए, अनुराग का सिन्दूर कभी नहीं हो पाये। मैं इस घर में प्रतिहिंसा की आग में जलती, सम्राट से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु से घृणा करती हुई आयी थी।"[6]

इसके अलावा अहल्या, वनजा आदि स्त्री पात्रों के द्वारा भी स्त्री मानसिकता को दर्शाने की कोशिश की है। 'अवसर' उपन्यास में सीता को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया गया है। सीता आधुनिक, स्वतन्त्र और स्वावलम्बी नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं। नारी-पुरुष सम्बन्धों की समता समसामयिक युग की एक उल्लेख योग्य विशेषता है। यह हम सीता स्वयंवर के समय देख सकते हैं। कोहली जी ने नारी सम्बन्धित अनेक प्रसंगों से अपने उद्देश्य को स्पष्ट किया है। नारी के ऊपर होने वाले शोषण आदिम काल से ही चलते आ रहे हैं, इनमें आज भी परिवर्तन नहीं हुआ है।

पुराण कथाओं में राक्षस जाति, और असुर लोग है तो आज असुरों के रूप में जन्मे मनुष्य ही अत्याचार करते हैं। शासन का भार सँभालने की शक्ति भी स्त्री में है, क्योंकि राम निषादरानी से निषादराज पर अंकुश लगाने को कहते हैं, और यह विश्वास भी दिलाते हैं कि न वे स्त्री का अंकुश मानें, न आप पुरुष का बन्धन मानें, किन्तु बुद्धि-विवेक, सन्तुलन और प्रेम की मर्यादा तो सब ही मानेंगे। अपने इन्हीं गुणों का उपयोग करना। आपकी प्रजा भाग्यवान है कि उन्हें आप जैसी रानी मिली।"[7]

कोहली जी जैसे सफल साहित्यकार हमेशा जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का परीक्षण, निरीक्षण करते रहते हैं, और जीवन की जटिलताओं से नये-नये अनुभव प्राप्त करते हैं। वे सिर्फ़ वर्तमान भारत को ही नहीं देखते बल्कि भविष्य भारत को भी ध्यान में रखकर रचना करते हैं। जीवन के प्रति सबका अपना-अपना दृष्टिकोण है। लेखक भी जीवन के प्रति अपना एक दृष्टिकोण रखता है। कोहली जी ने भारतीयों की सांस्कृतिक परम्परा को बनाये रखने के लिए अपने राम केन्द्रित उपन्यासों में जो प्रयास किया है वह बिल्कुल सफल रहा।

कोहली जी के राम केन्द्रित उपन्यास को पढ़कर कभी भी हमें नहीं लगेगा कि वह किसी अपरिचित और अद्‌भुत देश की कथा है। ख़ुद उन्होंने अपने राम केन्द्रित उपन्यासों के सम्बन्ध में कहा है कि—"यह किसी अपरिचित और अद्‌भुत देश तथा काल की कथा नहीं है। यह इसी लोक और काल की, आपके जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर केन्द्रित एक ऐसी कथा है जो सार्वकालिक और शाश्वत है और प्रत्येक युग के व्यक्ति का इसके साथ पूर्ण तादात्म्य होता है।"[8] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अखिल मानवता को ऊँचा उठाने वाली शक्ति नरेन्द्र कोहली जी के राम केन्द्रित उपन्यासों में है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. दीक्षा, नरेन्द्र कोहली, पृ. 51
2. अवसर, नरेन्द्र कोहली, पृ. 65
3. वही, पृ. 64
4. वही, पृ. 65
5. वही, पृ. 39
6. वही, पृ. 48
7. वही, पृ. 94
8. अवसर, दीक्षा, नरेन्द्र कोहली, मुखपृष्ठ

रामलीला के विविध रूप

डॉ. मीरा दास

रामकथा भारतीय संस्कृति की अमूल्य तथा अमर कथा है। रामकथा का मूलस्रोत आध्यात्मिक दृष्टि से जिस प्रकार भगवान शिव को माना गया है उसी प्रकार ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस कथा का स्वतन्त्र रूप वाल्मीकि रामायण में आता है। वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण की रामकथा का महत्त्व देवकथा के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कथा के रूप में है। कवि ने नायक का चयन दुर्लभ गुणों के आधार पर तथा मूल प्रेरणा मानव मंगल की थी। वाल्मीकि जी ने अपनी रामायण में श्रीरामचरित के माध्यम से विश्व और विश्व के मानव को मानवता का उपदेश दिया है। आदिकवि वाल्मीकि के समय से अब तक इस कथा में अनेक रूप देखने में आये हैं। भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं के साथ-साथ विदेशी भाषाओं में रामकथा लिखी जाती रही है। देश के मन्दिरों में गाये जाने के साथ-साथ मधुबनी और अन्य लोक-चित्रकलाओं तथा राजस्थान, कांगड़ा और पहाड़ी शैली के लघु-चित्रों में और आज के आधुनिक चित्रकारों द्वारा भी रामायण की घटनाओं तथा पात्रों को अंकित किया गया है। इसके अलावा देश के अलग-अलग लोक गीत गाथा और लोक नृत्यों में रामकथा का आख्यान अनेक रूपों में देखने को मिलता है। रामकथा के अनेक रूपों में से ‘रामलीला’ पारम्परिक भारतीय नाट्य रूप का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह नाट्य रूप मात्र नाटकीय प्रदर्शन ही नहीं है, बल्कि हमारा प्रमुख सांस्कृतिक पर्व बन गया है। आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो इससे परिचित न हो।

रामलीला के उद्भव की कहानी अस्पष्ट है। वैसे रामकथा और रामलीला के उद्देश्य और संरचना दोनों ही दृष्टियों में अन्तर है। रामकथा के प्रस्तुतीकरण में संवाद के साथ-साथ रामचरितमानस को आधार के रूप में लिया जाता है। इसके विपरीत रामलीला के धार्मिक नाट्य रूप के साथ-साथ इसका उद्देश्य मनोरंजन तथा रामभक्ति का प्रचार और प्रसार करना है। रामलीला के इसी नाट्य रूप के विविध रूप देखने को मिलते हैं। जैसे—पारम्परिक शैली की अभिनयपरक रामलीला, संवादमूलक रामलीला, गेय रामलीला, मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत मंचीय रामलीला आदि।

इस रामलीला को प्रस्तुत करने के लिए रंगमंच की ज़रूरत होती है। इसलिए रामलीला के विविध रूपों पर आलोचना करने से पहले रंगमंच की परिकल्पना कैसे की जाती है उस पर आलोचना करेंगे।

इस आलेख पत्र को प्रस्तुत करने के लिए अलग-अलग समय में प्रकाशित पुस्तकों के साथ ई-पत्रिका का सहारा लिया गया है। साथ ही वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग हुआ है।

नाट्य साहित्य एक ऐसी विधा है जिसे पढ़ने के साथ-साथ दर्शक मंच पर भी उसकी प्रस्तुति देख सकते हैं। आचार्य भरतमुनि ने नाट्य शब्द का जो प्रयोग किया था वह केवल नाटक तक ही

सीमित नहीं था, बल्कि रंग और अभिनय, नृत्य, संगीत, वेशभूषा, पात्र तथा दर्शक से भी सम्बद्ध है। दृश्यत्व के कारण इसकी अपनी महत्ता और सार्थकता है। प्राचीनकाल से ही रंगमंच की अपनी सीमाएँ और विशेषताएँ हैं तथा उसी को ध्यान में रखकर नाटक लिखा जाता है। कारण नाटक की पूर्णता रंगमंच पर ही होती है। कोई भी नाटक चाहे जैसा भी हो, रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा के बिना सम्पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है।

हमारे देश की रंगमंच परम्परा अति प्राचीन है। माना जाता है कि जब देवताओं के भोग-विलासपूर्ण जीवन के साथ त्रेतायुग का आरम्भ हुआ था, तब समस्त लोक में दुख एवं निराशा छा गयी थी तब सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि ब्रह्माजी एक ऐसा साधन बनायें जो दृश्य भी हो और श्रव्य भी हो। इसके चलते ब्रह्मा जी ने चारों वेदों से पाठ्य, गीति, अभिनय और रस लेकर नाट्यवेद की रचना की थी। इस प्रकार भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के रूप में ग्रन्थ रचना की। इस ग्रन्थ में नृत्यकला, नाट्यकला, वेशभूषा, अभिनय और नाट्य-विधान आदि का सविस्तार से विवेचन किया गया है। भारतवर्ष में नाट्य प्रदर्शन के क्षेत्र में काफ़ी विविधता देखी जा सकती है। उनमें से लोक नाट्य, कथकली, पुतली रंगमंच, नृत्य नाट्य या बैले, संगीत नाट्य या ऑपेरा तथा बाल रंगमंच आदि प्रमुख हैं।

लोक नाट्य–लोक नाट्य हमारे रंगमंच का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। आज रंगमंच के प्रति निरन्तर बढ़ती हुई रुचि के कारण देश-भर में लोक नाट्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट हुआ है। स्थान-स्थान पर रंगकर्मी केवल प्रादेशिक लोक नाट्यों के ही नहीं बल्कि अखिल भारतीय स्तर पर भी पुनरुत्थान और पुनरुद्धार के साथ-साथ उस पर विचार करने और उसके मूल्यांकन में लगे हुए हैं। लोकजीवन में बचे रहने वाले इस रंगमंच ने न केवल हमारे विशाल भू-भाग की रंगमंचीय निरन्तरता बनाये रखी बल्कि संस्कृत रंगमंच तथा सहज-स्वाभाविक स्थानीय लोक नाट्य की परम्पराओं को बचाये रखा। इस परम्परा के चलते देश-भर में आज हम यात्रा, नौटंकी, तमाशा, दशावतार, अंकिया नाट, रासलीला, रामलीला जैसे विभिन्न स्तर के लोक नाट्य देखते हैं। बाह्याडम्बर इसमें नहीं है बल्कि सादगी से मंचन करना इस नाट्य परम्परा की सबसे बड़ी विशेषता है। रंगमंच चारों ओर से खुले होते हैं ऐसे में नाट्यकर्मी और दर्शकों में एक गहरा सम्बन्ध तथा भाव उत्पन्न होता है।

हमारे इस आलेख-पत्र का विषय रामलीला, इस रंगमंचीय तथा लोक नाट्य परम्परा के अन्तर्गत आता है।

कथकली–कथकली मुद्राओं और अंगचेष्टाओं द्वारा खेला जाने वाला एक प्रकार का नृत्य नाट्य है। यह मूलतः केरल प्रदेश का एक क्षेत्रीय नाट्य रूप है। इस नृत्य नाट्य परम्परा में मुख-शृंगार अत्यावश्यक है। नाट्य के विषय पौराणिक गाथाओं से लिए जाते हैं और इसके पात्र असुर, देवता, वीर और महारथी होते हैं जो आदिम शक्तियों का प्रतीक होते हैं। कथकली में ताण्डव गुण होने के कारण समस्त पात्रों की भूमिकाओं में अभिनय पुरुष करते हैं।

पुतली रंगमंच : पुतली रंगमंच हमारे देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूपों में पाया जाता है। यह विश्व की सबसे प्राचीन और अनोखी नाट्य परम्परा मानी जाती है। उत्तर भारत में राजस्थानी कठपुतली के साथ, असम में भी जगह-जगह पर यह नाट्य परम्परा प्रचलित है।

नृत्य नाट्य या बैले : इस नाट्य परम्परा में सम्पूर्ण कथा मंच पर केवल नृत्य द्वारा प्रस्तुत की जाती है तथा नर्तक अभिनय या अपने मूक संकेतों के द्वारा सम्पूर्ण आन्तरिक भावों को अभिव्यक्त करते हैं। बैले का प्रचलन पश्चिमी प्रवृत्ति के आधार पर कुछ वर्ष पहले भारत में हुआ है। इसमें दोनों संस्कृतियों का समन्वय हुआ है।

संगीत नाट्य और ऑपेरा : जिस प्रकार चित्रकारों का माध्यम रंग और रेखाएँ हैं, उसी प्रकार संगीत नाट्य का माध्यम केवल संगीत होता है। इसमें कहानी, पात्रों का पारम्परिक संघर्ष और नाटक के भाव की अभिव्यक्ति केवल संगीत के माध्यम से होती है।

बाल रंगमंच : जो रंगमंच बच्चों से जुड़ा होता है, उसे बाल रंगमंच कहा जाता है। इस रंगमंच का आरम्भ कलकत्ते में हुआ था। इस बाल रंगमंच का उद्देश्य स्वर, लय, गति और रंगों के माध्यम से बच्चों में कलात्मक अभिरुचि को विकसित करना था।

इस प्रकार रंगमंच के सभी रूपों पर नज़र डालने के बाद यह ज्ञात होता है कि भारतीय रंगमंच केवल लोक नाट्य के ही सर्वथा निकट है।

ज़्यादातर लोक नाट्य खुले रंगमंच पर अभिनीत होते हैं। मंच पर दृश्य-सज्जा की सामग्री कम होती है तथा मंच पर केवल छोटे-छोटे उपकरण मात्र होते हैं। दृश्यसज्जाहीन वही मंच कभी महल बन जाता है, कभी उपवन, तो कभी नदी का किनारा। इसके अलावा मंच कभी ऊँचा चबूतरा होता है तो कभी समधरातल। कभी-कभी सजावट के लिए केवल एक पिछला पर्दा टाँग दिया जाता है। पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान, दृश्य-परिवर्तन आदि सभी कुछ दर्शकों के सामने होता है। इस प्रकार के नाट्य रूप रामलीला में देखे जा सकते हैं कारण रामलीला बहुस्थलीय रंगमंच है।

मूल विषय पर आलोचना—रामकथा का रामलीला नाम कब से प्रचलित हुआ यह तथ्य उपलब्ध नहीं है। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में इसका संकेत अवश्य मिलता है—

''खेलहुँ तहुँ बालकन्ह मीला। करउ सकल रघुनायक लीला।।''

(उत्तर काण्ड 109 : 110)

सगुण भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थों में अवतारी के सांसारिक चरित को अलग-अलग ग्रन्थों में लीला कहने का चलन बहुत पुराना है। इसके अलावा कहा जाता है कि तुलसीदास जी ने ब्रजभूमि यात्रा के दौरान रासलीला देखी होगी और उसी के प्रारूप पर रामलीला नाम दिया।

देश के अन्य पारम्परिक नाट्य रूपों की तरह रामलीला का देश की अनेक जगहों पर प्रदर्शन होता है। हिन्दीभाषी राज्य—उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान के अलावा पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र तथा असम में भी जगह-जगह पर रामलीला नाट्य प्रदर्शित होते हैं। अलग-अलग राज्य की क्षेत्रीय विविधता के वावजूद रामलीला में एकरूपता देखी जा सकती है।

रामलीला की कई दिनों तक प्रदर्शन क्रम में प्रस्तुत होती है। रामजन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा को अलग-अलग नाटकीय दिवसों में विभाजित करके दिखाया जाता है। इससे देखने वाले तथा अभिनय करने वालों में भक्तिपरक आत्मीयता तथा सुपरिचितता आ जाती है। धार्मिक नाट्य रूप होने की वजह से रामलीला का पर्व भक्ति भावना से जुड़ा होता है। रामनगर की रामलीला के तिथिपत्र में परम्परा के रूप में लिखा जाता है—

अथ लीलानुकरणं प्रवक्ष्यामि महामुने। यत्कृत्वा चाथदृष्टावा च मुच्यते पात नरः।।

अर्थात् रामलीला का अनुकरण अथवा देखने मात्र से मनुष्य पाप-मुक्त होता है।

रामलीला एक धार्मिक अनुष्ठान होने के कारण दर्शकों का सक्रिय सहयोग होता है। कारण सभी लोग इससे अपना अनिवार्य सम्बन्ध अनुभव करते हैं। दर्शकों का इतना सहयोग अन्य किसी भी नाट्य रूप में नहीं मिलती।

रामलीला में अभिनय करने वाले कलाकार अव्यवसायी होते हैं, साथ ही इसमें अभिनय कर पाना बड़े गौरव की बात समझते हैं। अभिनेता पुरुष होते हैं कारण इसमें स्त्री पात्रों का निषेध है।

अभिनेताओं का चयन करते समय स्वरूप तथा स्वर आदि का ध्यान रखा जाता है, जिससे ईश्वर के 'स्वरूप' की कल्पना की जा सके। रामलीला को सही ढंग से प्रस्तुत किया जा सके इसके लिए रामलीला समिति होती है। रामलीला में रुचि रखने वाले लोग समिति में होते हैं जो प्रदर्शन से सम्बन्धित सभी कार्यभार सँभालते हैं।

रामलीला के विविध रूप–रामलीला का जो नाट्य प्रदर्शन होता है, उसे पारम्परिक रामलीला कहा जाता है। रामलीला चाहे किसी रूप में प्रदर्शित क्यों न हो प्रस्तुतीकरण एक ही तरह का होता है। जहाँ रामजन्म; राम का राज्याभिषेक, रावणवध लीला में रावण और कुम्भकर्ण के बड़े-बड़े पुतले बनाकर आग लगाना आदि हर रामलीला का प्रमुख आकर्षण होता है। ज़्यादातर लोग रामलीला का अर्थ दशहरे का मेला मानते हैं। पारम्परिक रामलीला प्रदर्शनों के दो प्रमुख रूप हैं–

1. झाँकी दृश्यों और शोभायात्रा से युक्त अभिनटनपरक पद्धति।
2. संवादों से युक्त नाटकीय पद्धति।

अभिनटनपरक रूप में रामचरितमानस पाठ के अलावा अभिनेता अभिनय करते हैं और बीच-बीच में जुलूस यात्रा निकाली जाती है। दूसरी पद्धति में प्रसंगों को संवादों में रूपान्तरित कर आलेख तैयार कर दिया जाता है।

इसके अलावा रामलीला गेय रूप में भी की जाती है। यहाँ पर रामचरितमानस का पाठ रागबद्ध किया जाता है और सभी संवाद गेय होते हैं।

रामलीला किसी भी रूप में क्यों न हो रामचरितमानस का पाठ साथ-साथ चलता है। गेय रामलीला और मंचीय रामलीला में भी यह अनिवार्य समझा जाता है।

पारम्परिक शैली की अभिनयपरक रामलीला–इस शैली की रामलीला चित्रकूट और बिसाऊ (राजस्थान) में देखी जा सकती है।

चित्रकूट की रामलीला–चित्रकूट की रामलीला काशी की सबसे प्राचीन रामलीला मानी जाती है। पहले यह रामलीला वाल्मीकि रामायण पर आधारित थी, लेकिन बाद में तुलसीदास के शिष्य मेघाभगत ने इसमें संशोधन किया। प्राचीनकाल में चित्रकूट में जिस तरह रामलीला प्रस्तुत की जाती थी, आज भी उसी तरह से प्रस्तुत की जाती है। यहाँ पर धर्म-अध्यात्म और संस्कृति के अनगिनत रंग देखने को मिलते हैं। यह रंगमंच छह किमी. के दायरे और सौ एकड़ क्षेत्रफल पर फैला है। इसमें एक सिरे पर अवध-जनक हैं तो दूसरे पर लंका है। इसके साथ चित्रकूट, पंचवटी आदि प्राकृतिक मंच सजे होते हैं। परम्परा को बनाये तथा सहेजे रखने का नज़ारा इस रामलीला में देखा जा सकता है। इस रामलीला की प्रदर्शन पद्धति अभिनयपरक है। भगवान राम को समर्पित इस रामनगर में एक महीने तक यह रामलीला प्रदर्शित होती है।

यहाँ की रामलीला आश्विन कृष्ण नवमी से लेकर आश्विन शुक्ल पूर्णिमा तक कुल 22 दिन की होती है। लीला के पहले दिन और अन्तिम चार दिन झाँकियाँ होती हैं। हरेक दिन क्रम से रामलीला का अभिनेताओं द्वारा अभिनय किया जाता है। मुकुटपूजन के साथ लीला का आरम्भ होता है। फिर राज्याभिषेक की तैयारी, कैकेयी का कोप, राम का वनगमन, श्रीराम का गंगा पार होना, भरत का आगमन आदि विभिन्न प्रसंग लीला में प्रस्तुत किये जाते हैं। लीला के अन्तिम दो दिन झाँकी लीला इसकी विशेषता है। चित्रकूट की रामलीला में तुलसीदास द्वारा रचित रचना का गान ही किया जाता है।

चित्रकूट की रामलीला में भरत-मिलाप प्रसंग सबसे महत्त्वपूर्ण है। माना जाता है कि इस प्रसंग का अभिनय करते समय भगवान राम सचमुच अवतरित होते हैं और इस लीला को देखने के लिए

लाखों लोग उमड़ पड़ते हैं। इस रामलीला में कथागान, अभिनय और झाँकियाँ प्रमुख हैं। संवाद न के बराबर होते हैं।

बिसाऊ की रामलीला : अभिनयपरक रामलीलाओं में से बिसाऊ की रामलीला महत्त्वपूर्ण है। 'जमना श्यामण' नामक एक सन्यासिनी बिना किसी बाहरी सहायता के अकेले कुछ बालकों को एकत्र करके रामायण पाठ द्वारा लीला कराती थी। इससे प्रभावित होकर बिसाऊ के ठाकुर श्री बिसनसिंह जी ने अपने महल के पास रामलीला कराना प्रारम्भ किया था। इस रामलीला में पुजारी रामलीला पाठ करते हैं और पात्र उसके आधार पर अभिनय करते हैं। पन्द्रह दिन तक चलने वाली इस लीला में प्रतिदिन के प्रसंग के अनुसार पाठ तथा अभिनय किया जाता है। इस रामलीला का आधार ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत नाटक 'रामायण' है। इस रामलीला में युद्ध के प्रसंग को ज़्यादा प्रमुखता दी जाती है, जिसके कारण अभिनयस्थल को दंगल कहा जाता है। दैनिक कार्यक्रम के अनुसार पहले दिन श्रीराम जन्म से लेकर ताड़का-सुबाहु-मारीच वध का अभिनय होता है। फिर बारी-बारी धनुष यज्ञ, भरत को पादुका दान, शूर्पणखा की नाक काटना आदि के बाद पन्द्रहवें दिन भरत-मिलाप और राजतिलक के साथ लीला ख़त्म होती है। इस लीला में किसी भी पात्र के रूप में अभिनय कर पाना लोगों को सौभाग्य का विषय लगता है। कोई-कोई व्यक्ति साल-दर-साल एक ही पात्र का अभिनय करता है। इस रामलीला में वेशभूषा और शृंगार बहुत महत्त्व रखता है। राजस्थानी ढंग के रंग-बिरंगे कपड़ों का व्यवहार इसमें होता है। प्रमुख पात्र के अलावा अन्य पात्र मुखौटे लगाकर अभिनय करते हैं, जिनका काम महीने भर पहले से ही प्रारम्भ हो जाता है। बिसाऊ रामलीला का प्रमुख आकर्षण वहाँ की स्थानीय और कलात्मक वेशभूषा और सुन्दर मुखौटे ही हैं।

रामनगर की रामलीला–दुनिया की सबसे बड़ी अभिनयपरक रामलीला रामनगर के रामलीला मैदान में होती है। काशी में स्थित तथा भगवान राम को समर्पित उपनगर रामनगर में एक महीने तक यह रामलीला प्रदर्शित होती है। इस रामलीला में धर्म, अध्यात्म और संस्कृति के अनगिनत रंग देखने को मिलते हैं। यहाँ का रंगमंच छह किलोमीटर के दायरे और सौ एकड़ क्षेत्रफल पर फैला हुआ है। इसमें एक सिरे पर अवध है तो दूसरे पर लंका है। साथ ही चित्रकूट, पंचवटी, सुन्दर बगिया आदि प्राकृतिक मंच सजे होते हैं। परम्परा को बनाये तथा सहेजे रखने का नज़ारा रामनगर की रामलीला में देखा जा सकता है। इस रामलीला की ख़ासियत यह है कि लीला में व्यवहृत पुतलों की कारीगरी आज भी मुस्लिम परिवार करते हैं और कुछ पात्रों के अभिनय परम्परागत रूप से कुछ वंशज करते हैं। इस तरह अभिनयपरक रामलीला भगवान राम के पूरे जीवन की एक नाटकीय प्रस्तुति है।

संवादमूलक रामलीला–आजकल ज्यादातर रामलीला का प्रस्तुतीकरण संवाद के रुप में किया जाता है। इसका उत्कृष्ट प्रदर्शन रामनगर की रामलीला में देखने को मिलता है।

रामनगर की रामलीला–रामनगर की रामलीला सन् 1783 में काशी नरेश उदिन नारायण सिंह ने शुरू की थी। इसमें बिजली या लाउडस्पीकर नहीं होता। मंच और खुले आसमान के नीचे अभिनेता अपनी आवाज के दम पर अभिनय करते हैं। 6 किमी. के दायरे में स्थित इस रामलीला में विविध-स्थानीय मंच, तथा रामचरितमानस पर आधारित संवाद होते हैं। यहाँ के राजा द्वारा परिचालित होने के कारण इस रामलीला को एक महत्त्व प्राप्त है और साथ ही एक अनुशासनपूर्ण वातावरण बना रहता है।

देश-भर की अन्य रामलीला से इस रामलीला की अवधि लम्बी है। सम्पूर्ण रामचरितमानस पर आधारित रामनगर की रामलीला में प्राचीन शैली को संवादों में परिवर्तित कर नाटकीय रूप प्रदान किया जाता है। दर्शकों की भारी भीड़ होने के बाद भी अनुशासनबद्धता और भक्ति भावना से सुनने

के कारण पात्र के द्वारा कहे हुए संवाद को बिना माइक्रोफ़ोन के सुन सकते हैं। रामलीला में इस तरह एकात्म हो जाना अन्य किसी रामलीला मैदान में देखा नहीं जा सकता। रामचरितमानस के पाठ के साथ-साथ लीला चलती रहती है और कुछ अंश के पाठ के बाद गद्य-संवाद अंश उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में बोले जाते हैं। यही क्रम निरन्तर चलता रहता है। पाठ करने वाले को रामायणी कहते हैं। रामलीला में आये हुए साधु भी इस पाठ में शामिल हो जाते हैं जिनको न तो संगीत का ज्ञान होता है, न कण्ठमाधुर्य होता है, इसलिए इस लीला का मानस-पाठ कर्ण-मधुर नहीं लगता।

रामनगर की लीला में मानस के प्रसंग का संवाद के रूप में आलेख तैयार कर लिया जाता है जो बहुत विशाल होता है। पहले इस रामलीला में तुलसी कृत मानस का ही पाठ करते थे, लेकिन आजकल अन्य राम-साहित्य का प्रयोग भी करते हैं। महीने भर पहले से ही पात्रों को संवाद अभ्यास कराया जाता है जिससे पाठ की शुद्धता और स्वाभाविकता बनी रहे। मानस को संवादबद्ध करने के लिए पहले अवधी और बनारसी बोली का व्यवहार होता था, लेकिन बाद में मैथिली, भोजपुरी के साथ खड़ी बोली भाषा का प्रयोग किया जाने लगा। इस रामलीला की विशेषता यह भी है कि समूचे रामनगर में फैले लीला-स्थल के कारण पूरा नगर ही रंगमंच बन जाता है और एक मंच पर लीला ख़त्म होने के बाद दर्शक-मण्डली जुलूस के रूप में एक स्थल से दूसरे स्थल तक पहुँच जाती है। इस तरह इस रामलीला में मानस की चौपाइयों को गद्य के रूप में संवादों में बदल दिया जाता है।

वाराणसी की रामलीला—वाराणसी की रामलीला रामचरितमानस पर आधारित है। यह रामलीला कुल 18 दिनों की है। प्रतिदिन लीला का प्रारम्भ मानस-पाठ से होता है, जब रामायणी विवरण अंशों का पाठ ख़त्म करते हैं तब पात्र मानस के संवाद के आधार पर गद्य में बोलते हैं। चौपाइयों का गद्यीकरण होता है, जिसके कारण संवाद छोटे-छोटे होते हैं। संवादों की भाषा पहले बनारसी बोली होती थी लेकिन बाद में खड़ी बोली का व्यवहार होने लगा।

अयोध्या की रामलीला—राम की जन्मभूमि होने के नाते रामलीला की चर्चा में अयोध्या की रामलीला विशेष महत्त्व रखती है। यह लीला मण्डलियों द्वारा मंच पर प्रस्तुत की जाती है। पन्द्रह दिनों की इस लीला में सीता का पावक प्रवेश, लंकादहन, पहाड़ लीला, खुलोचन-सती और भरत-मिलाप खण्ड विशेष प्रसिद्ध हैं। इस लीला में भी मानस की चौपाइयों को संवाद का रूप दिया जाता है। इस लीला के संवाद अब खड़ी बोली में ही लिखे जाते हैं। जैसे—रावण का एक संवाद—हे पुत्रवधू सुलोचना, तुम विलाप न करो और अपने हृदय में धीर धारण करो। इसमें सरल खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है।

काशी की लाट भैरव वाली रामलीला—काशी की प्राचीन तथा संवादपरक रामलीलाओं में लाटभैरव की रामलीला महत्त्वपूर्ण है। इस लीला की अवधि बीस दिन की है। जब लीला प्रारम्भ होती है तब रामायणी ढोल-मंजीरों के साथ चौपाइयों का पाठ, फिर मानस पाठ करते लीला का क्रमानुसार अभिनय कराते जाते हैं। इस रामलीला में तुलसी के मानस के साथ-साथ गद्य संवादों के लिए तुलसी की अन्य कृतियों तथा केशवदास, रघुराजसिंह और दिव्य जी के रामलीला सहायक ग्रन्थों का सहारा लिया जाता है। जैसे—अंगद-रावण संवाद, धनुषभंग में राम स्वयंवर संवाद आदि। इस लीला के संवादों की भाषा खड़ी बोली है, लेकिन कुछ सीमा तक बनारसी बोली का प्रभाव भी है।

इलाहाबाद की रामलीला—यह रामलीला ग्यारह दिन की होती है। लीला के सभी प्रसंग रामचरितमानस के आधार पर होते हैं। खुले मंच पर पात्र माइक्रोफ़ोन के सामने आकर अपना संवाद बोलते हैं। संवादों के उतार-चढ़ाव पर ज़ोर नहीं दिया जाता है।

लखनऊ की रामलीला—पारम्परिक शैली की संवादपरक रामलीलाओं में लखनऊ की रामलीला भी है। कथाप्रसंग मानस पर आधारित होते हैं। इस लीला में संवाद उर्दू मिश्रित पारसी-थियेटर की भाषा और चौपाइयों के आधार पर होते हैं।

मथुरा की रामलीला—साहित्यिक सौन्दर्य के कारण मथुरा की रामलीला महत्त्वपूर्ण है। भक्तिकालीन रामकाव्य से लेकर आधुनिक काल तक के जितने रामकाव्य हैं, सभी का समावेश इसमें हुआ है। विभिन्न रामलीला नाटकों के गद्य और पद्य-संवाद तथा अलग-अलग राम सम्बन्धी पुस्तकों के संवादों का प्रयोग भी इसमें होता है जिसके कारण इस लीला की रोचकता और आकर्षण बढ़ गया है।

इस लीला में संवाद का प्रयोग गद्य और पद्य में हुआ है। विभिन्न साहित्य का समावेश होने के कारण संवाद बहुत हैं। संवादों की भाषा खड़ी बोली है। रासलीला से प्रभावित होने के कारण इस लीला का संगीत पक्ष सुन्दर है।

दिल्ली की पारम्परिक रामलीला—दिल्ली के रामलीला मैदान की रामलीला प्राचीन मानी जाती है। मुग़ल युग में सिपाहियों के आनन्द उत्सव के रूप में इसे प्रारम्भ किया गया था। इसकी अवधि ग्यारह दिन की है। इस लीला में नाटकीय प्रस्तुतीकरण से .ज्यादा जुलूसों पर ध्यान दिया जाता है। लीला का आरम्भ मानस पाठ के साथ होता है। चौपाइयों का अनुवाद करके उन्हें सरल हिन्दी संवाद रूप में परिवर्तित कर लिया जाता है। इसमें भी मानस के साथ अन्य राम-विषयक ग्रन्थ जैसे—राम चन्द्रिका, राधेश्याम-रामायण के संवादों का प्रयोग किया जाता है।

राजस्थान की रामलीला—राजस्थान में भरतपुर और जयपुर में रामलीला प्रस्तुत की जाती है। यहाँ की लीला में मानस के चौपाई और दोहों को संवाद रूप में बोलते हैं, फिर इसके पश्चात् व्यास संवाद का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद करते हैं। नायकीय संवाद-खण्डों का सही प्रयोग भरतपुर की रामलीला में देखा जा सकता है। जनता को प्रभावित करने के लिए पात्र ज़ोर-ज़ोर से संवाद बोलते है। संवाद-लीलाओं की प्रधानता होने के बाद भी जुलूस और झाँकियाँ इस रामलीला का अनिवार्य अंग हैं।

जयपुर की लीला 11 दिन की होती है। यहाँ पर रामचरितमानस के साथ अन्य रामकाव्यों के संवाद भी लिए गये हैं। जैसे—लक्ष्मण-परशुराम-संवाद और अंगद-रावण-संवाद रामचन्द्रिका से लिए जाते गये हैं।

इन संवादपरक रामलीलाओं में से सतना की रामलीला, बिहार की रामलीला, कुमाऊँ की रामलीला, गोरखपुर की रामलीला आदि पारम्परिक शैली में प्रस्तुत की जाती हैं।

गेय रामलीला—गेय रामलीला में सभी संवाद गेय होते हैं और उन्हें शास्त्रीय रागों में बद्ध किया जाता है। गेय संवादों का आधार रामचरितमानस होता है। अन्य पारम्परिक रामलीलाओं की भाँति इसमें विविध स्थलीय रंगमंच नहीं होते बल्कि पर्देयुक्त मंच पर इसका मंचन किया जाता है। इस शैली की रामलीला रोहतक, पाटुंदा और अल्मोड़ा में देखने को मिलती है।

रोहतक की रामलीला—गेय रूप की रामलीला स्वाधीनता के बाद रोहतक में खेली जाने लगी। रोहतक के अलावा हरियाणा के कुछ अन्य नगरों में भी इसका प्रस्तुतीकरण होता है। यह लीला दस दिन की होती है। इस लीला में सभी पात्र गेय शैली में ही उत्तर-प्रत्युत्तर देते हैं। संगीत पक्ष .ज्यादा होने के कारण सभी पात्र संगीत का ज्ञान रखते हैं और घण्टों रिहर्सल करते हैं ताकि संगीत की उत्कृष्टता और उत्कृष्ट नाटकीयता बनी रहे।

पाटुंदा की रामलीला—सुन्दर संगीत के कारण पाटुंदा की रामलीला गेय शैली की रामलीला में

महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। रामकथा के सभी प्रमुख प्रसंग लीला में प्रस्तुत किये जाते हैं। इस लीला का संगीत हाड़ौती है। साथ ही राजस्थानी लोक गीत का भी प्रयोग हुआ है। इस लीला का प्रमुख आधार रामचरितमानस है और मानस की चौपाइयों का हाड़ौती बोली में गीतों में रूपान्तरण कर लिया गया है। लीला आरम्भ होने से पहले हर दिन कीर्तन-शैली में राम भजन किया जाता है। गीत प्रधान होने के कारण अन्य रामलीलाओं की तरह यहाँ स्वरूप यानी मुख्य पात्रों की आयु कम नहीं होती। कम आयु के पात्रों में गाने की कुशलता और कण्ठस्वर पात्रानुकूल नहीं होते।

अल्मोड़ा की रामलीला–इस रामलीला की परम्परा 1886 में अल्मोड़ा के एक विद्वान देवीदत्त जोशी ने शुरू की थी। आज यह पूरे कुमाऊँ तथा गढ़वाल क्षेत्र में दशहरे के समय में मुख्य आकर्षण का केन्द्र है इसके अलावा अल्मोड़ा शैली की रामलीला अन्य अनेक स्थानों पर भी होती है। जैसे दिल्ली, लखनऊ, झाँसी आदि जगहों पर भी इस अल्मोड़ा शैली की लीला प्रस्तुत की जाती है।

इस रामलीला का आलेख जोशी जी ने ख़ुद प्रस्तुत किया था। लेकिन समय-समय पर इसमें नये-नये राम सम्बन्धी गीत और संवाद जोड़े गये। यह रामलीला ग्यारह दिन की होती है। अन्य पारम्परिक रामलीलाओं की भाँति इसमें लीला के साथ उद्देश्य, कथा-प्रसंगों का विभाजन और संवाद में मानस के दोहे-चौपाइयों का पूरा प्रयोग किया जाता है। इस लीला में संवाद गीतों की भाषा में बड़ी विविधता है, भजन और पद की भाषा संस्कृत प्रधान हिन्दी है ग़ज़ल तथा नौटंकी गीतों में उर्दू की पधानता है। संगीत प्रधान होने के कारण उसी पर सबसे .ज़्यादा ध्यान दिया जाता है, अतः इसमें शास्त्रीय हिन्दुस्तानी संगीत के रागों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। गाना गाने के समय हारमोनियम को प्रमुख वाद्य के रूप में लिया जाता है जो एक मास्टरजी सँभालते हैं। उन्हीं पर पूरा दायित्व होता है। लीला के अलग-अलग पात्र आमने-सामने खड़े होकर गानों के द्वारा भिन्न लयों में संवाद बोलते हैं।

मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत मंचीय रामलीला–जो रामलीला मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत की जाती है उसे मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत रामलीला कहा जाता है। पारम्परिक लीला के स्थान पर आजकल नगर तथा ग्रामीण इलाक़ों में .ज़्यादातर मण्डलियों द्वारा रामलीला करायी जाती है। ये मण्डलियाँ पेशेवर होती हैं, जब समय होता है तब रामलीला समिति पैसे देकर लीला का मंचन कराती है। देश के अलग-अलग हिस्सों, जैसे—मथुरा, अयोध्या, वाराणसी तथा बिहार में रामलीला प्रस्तुत करने वाली ऐसी अनेक मण्डलियाँ हैं। इस परम्परा का जन्म सौ वर्ष पुराना माना जाता है। इस तरह की मण्डलियों का गठन व्यावसायिक दृष्टि से होता है। इसमें जो अभिनेता अभिनय करता है उसकी जीविका रामलीला प्रस्तुतीकरण पर निर्भर करती है। जिस मण्डली का प्रस्तुतीकरण .ज़्यादा अच्छा होगा उस मण्डली के प्रदर्शन की जगह पहले से ही निश्चित होती है। माना जाता है कि पारसी थियेटर तथा भारतीय चलचित्र के विकास के कारण तथा इन्हीं का अनुसरण करके पहले स्थानीय स्तर पर फिर धीरे-धीरे बड़े पैमाने पर इस मण्डली परम्परा का विकास भारतवर्ष में हुआ। वैसे तो रामलीला एक धार्मिक अनुष्ठान है, लेकिन दर्शकों की नाट्य रुचि को देखते हुए कभी-कभी झाँकी-दृश्यों, उपदेशात्मक संवादों का समावेश मण्डलियों द्वारा किया जाता है। इस तरह की रामलीला असम में भी जगह-जगह पर दशहरे के समय में देखने को मिलती है। मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत की गयी रामलीला मंच पर ही खेली जाती है। रामचरितमानस की चौपाइयों के अलावा अन्य वाक्य भी रुचि के अनुसार जोड़े जाते हैं जैसे—हास्य प्रसंग, नृत्य और गान आदि। भाषा का भी कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता, जिस राज्य की लीला प्रस्तुत करनी हो वहाँ की भाषा व्यवहार में लायी जाती है। नीचे कुछ मण्डलियों द्वारा की गयी रामलीला का वर्णन दिया गया है—

अयोध्या की रामलीला–अयोध्या में रामलीला समिति द्वारा मण्डली वाली रामलीला प्रस्तुत करते हैं। इस लीला में भी पहले अन्य पारम्परिक रामलीलाओं की तरह मानसपाठ होता है। संवाद का आधार रामचरितमानस ही है, लेकिन व्यावसायिक नाट्यदल होने के कारण दर्शकों की रुचि के अनुसार हास्यपूर्ण, रावण के प्रति अपमानजनक संवाद भी माँग के हिसाब से प्रयोग किये जाते हैं। इस रामलीला में पहाड़-लीला खण्ड महत्त्वपूर्ण है।

चित्रकूट की रामलीला–पारम्परिक रामलीला की प्राचीन परम्परा बन्द हो जाने के कारण चित्रकूट में अब मण्डलियों द्वारा यह लीला करायी जाती है। यहाँ पर पारम्परिक लीला की तरह झाँकी और यात्रा नहीं निकाली जाती। अयोध्या की रामलीला की तरह यहाँ भी मनोरंजन के लिए नृत्य करते हुए गीत और ग़ज़ल गाये जाते हैं जिससे देखने वाले ख़ूब आनन्द लेते हैं।

दिल्ली की रामलीला–दिल्ली के परेड-ग्राउंड में भी मण्डलियों द्वारा रामलीला करायी जाती है। यहाँ की लीला बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की जाती है। कारण इसमें परम्परा को बनाये रखने की कोशिश की जाती है। पारम्परिक रामलीला की तरह मानस के अनुकरण के साथ मंच पर ही जुलूस वाले दृश्य को अभिनीत किया जाता है। पात्र जो भी संवाद बोलते हैं, उनका आधार मानस होता है और भाषा खड़ी बोली होती है। इस रामलीला का मंच काफ़ी लम्बा-चौड़ा होने के कारण मण्डली के पात्रों को ढंग से अभिनय करने में दिक्क़त नहीं आती।

असम की रामलीला–हमारे राज्य असम में भी महापुरुष शंकरदेव द्वारा रचित श्रीरामलीला-विषयक नाटक 'राम विजय' और 'उत्तर काण्ड' है। 'राम विजय' में बालकाण्ड यानी सीता स्वयवंर का प्रसंग है। 'उत्तर काण्ड' में लव और कुश द्वारा श्रीराम की राजसभा में सम्पूर्ण रामकथा के गायन का प्रसंग है। जो समय-समय पर अंकिया नाट के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। माना जाता है कि जब शंकरदेव देशाटन करने गये थे तब अंकिया नाट का आधार उन्होंने रामलीला से ही लिया था। रामलीला की तरह अंकिया नाट में भी सूत्रधार कथा का परिचय देते जाते हैं। आजकल इस प्रकार के नाट भी पेशेवर मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं।

इस तरह मण्डलियों द्वारा की गयी रामलीला में बड़ी सुविधा होती है। कारण रामलीला समिति अच्छे पैसे लेकर प्रतिष्ठित नाट्य मण्डलियों के द्वारा की गयी लीला आजकल के तकनीकी युगीन दर्शक के सामने लोकप्रिय नाट्यरूप बन सकते है। साथ ही परम्परा भी बने रहेगी।

मुखौटा रामलीला–पारम्परिक रामलीला के अलावा हमारे देश में जगह-जगह पर तथा कुछ एशियाई देशों में इस प्रकार की रामलीला का मंचन किया जाता है। इंडोनेशिया के लाखोन, कंपूचिया के ल्खोनखोल, बर्मा के थामप्वे में मुखौटा रामलीला प्रसिद्ध है। इस प्रकार के नाटक में मुखौटा लगाकर पात्र अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार के नाटक को थाइलैंड में 'खौन' कहा जाता है।

हमारे असम राज्य के माजुली ज़िले में भी मुखौटे का व्यवहार प्राचीन समय से लीला प्रस्तुतीकरण में किया जाता है। हाल ही में चण्डीगढ़ में 'रंगश्री लिटल बैले ट्रूप', भोपाल के द्वारा मुखौटा रामलीला प्रस्तुत की गयी। इसका बंगाल की प्रधान कठपुतली शैली में मंचन किया गया था। यहाँ भगवान राम के बाल्यकाल से लेकर रावण दहन को दिखाया गया था। शुरुआत में नौटकी भाव-भंगिमाओं के साथ प्रदर्शित होने वाली इस अनूठी रामलीला में कलाकारों द्वारा पहने जाने वाले मुखौटे प्राचीन तथा देखने में अत्यन्त आकर्षक होते हैं।

छाया रामलीला–जावा, मलेशिया तथा थाइलैंड में छाया-रामलीला प्रदर्शित की जाती है। थाइलैंड में इसे 'नंगयाई' कहा जाता है। नंग का अर्थ है चमड़ा और याई का अर्थ है बड़ा। अर्थात चमड़े की बड़ी पुतलियाँ जिनका आकार एक से दो मीटर लम्बा होता है। इसमें दो डण्डे लगे होते हैं और डण्डे को पकड़कर पुतलियों को ऊपर उठाकर नचाया जाता है। विविधता और विचित्रता के कारण छाया रामलीला मुखौटा रामलीला से भी निराली है।

निष्कर्ष–रामलीला के विविध रूपों का अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि लीला पारम्परिक शैली की अभिनयपरक हो या मंचीय, गेय हो या मण्डलियों द्वारा प्रस्तुत सभी लीलाओं का मूल आधार तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' है। भारतवर्ष के लोग प्राचीनकाल से ही धार्मिक रहे हैं। रामायण की कथा को अगर हम भारतीय लोगों के जीवन से अलग कर दिया जाय तो जैसे प्राण ही शरीर से अलग हो जायेंगे। संस्कृत के अलावा तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, असमिया, पंजाबी हरेक भारतीय भाषा में रामकथा प्रचुर मात्रा में लिखी गयी और आधुनिक समय में भी लिखना जारी है। और आज हम सभी ने जो भी आलेख पत्र तैयार किये हैं वह भी एक प्रकार से अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर किया गया रामकाव्य अध्ययन ही है। हम जिस मंच पर खड़े हैं, जिस उद्देश्य से एकत्र हुए हैं उसका श्रेय कहीं-न-कहीं हमारे संस्कारों को ही है, कारण राम के प्रति भक्ति-भावना हमारे भारतीय संस्कारों से जुड़ी हुई है। आज की रामलीला में परम्परा को तो यथासम्भव बनाये रखना जारी है लेकिन अलौकिकता और चमत्कार की जगह यथार्थ वस्तुस्थिति के साथ-साथ मानवीय स्वरूप को महत्त्व दिया गया है। कुछ पारम्परिक जगहों को छोड़कर ज़्यादातर रामलीला मंच पर ही खेली जाती हैं जिनमें आधुनिक तकनीकों की सहायता ली जा रही है ताकि लोगों को आकर्षक लगे। हालाँकि हमारे असम राज्य में महापुरुष शंकरदेव ने भी राम-विषयक काव्य नाटक लिखे लेकिन उनके ज़्यादातर काव्य नाटकों का विषय कृष्ण रहे हैं। इसलिए असम में रामलीला से ज़्यादा रासलीला महत्त्व रखती है। हिन्दीभाषी प्रधान अंचल में दशहरे के समय में मण्डलियों द्वारा मंचीय रामलीला करायी जाती है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारी भारतीय संस्कृति की मूल अवधारणाएँ राम-कृष्ण कथा ही हैं। यही रामकथा या रामलीला हमारी संस्कृति का केन्द्र बिन्दु है। इसलिए लीला जिस किसी रूप में क्यों न हो हरेक तकनीकी सहायता लेने के बाद भी सभी के मन में परम्परा से चली आ रही भक्ति-भावना को बनाये रखना ही परम कर्तव्य है।

सहायक ग्रन्थ

1. भारतीय काव्यशास्त्र, कृष्णदेव शर्मा
2. रामकथा-भक्ति और दर्शन, डॉ. विश्वम्भर दयाल अवस्थी
3. रामकथा के पात्र, डॉ. भ.ह. राजूरकर
4. श्री रामकथा की पृष्ठभूमि : एक मानस पात्र परिचय, मदन लाल गुप्ता
5. रीतिकालीन रामकाल, डॉ. कान्ति द्विवेदी
6. आधुनिक हिन्दी काव्य में रामकथा, डॉ. राम नाथ तिवारी
7. रामकाव्यों में नारी, डॉ. विद्या
8. भक्तिकालीन राम तथा कृष्ण, काव्य की नारी भावना, डॉ. श्यामबाला गोयल
9. शंकरदेव साहित्यकार और विचारक, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'
10. ई-पत्रिका : (i) जन सत्ता (ii) जन जागरण

रामलीला और हिन्दी सिनेमा

प्रो. प्रमोद मीणा/डॉ. चारु गोयल

हमारे देश में संस्कृत नाटकों की बहुत प्राचीन और समृद्ध परम्परा रही है लेकिन संस्कृत नाटकों का अभिनय राज प्रसादों तक ही सीमित रहा। जनसामान्य न तो उन शास्त्रीय नाटकों का विषय बनता था और न अभिनेता, निर्देशक या दर्शकों के रूप में उन नाटकों में सक्रिय हिस्सेदारी ही कर पाता था। भरतमुनि ने नाटक की कथावस्तु के सन्दर्भ में अपना मत स्पष्ट करते हुए लिखा है कि देवता, मनुष्य, राजा एवं महात्माओं के पूर्ववृत्त की अनुकृति को नाटक कहते हैं—"देवतानां, मनुष्याणां राज्ञां लोकमहात्मनाम् पूर्ववृत्तानुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत।" इस प्रकार संस्कृत नाटकों का अपना स्वायत्त रचना संसार और रंगमंच था जिसे देश-काल की गति नहीं व्यापती थी। इस प्रकार के नाटक और रंगमंच इतिहास की वक्र दृष्टि के साथ धूल-धूसरित हो गये। लेकिन इन संस्कृत नाटकों के समानान्तर लोक-नाटकों की अपनी परम्परा रही है जो आज भी फल-फूल रही है। हमारी लोक नाट्य परम्परा शासक वर्ग के आभिजात्य-कृत्रिम रंगमंच से दूर किसानों के खेतों, आदिवासियों के जंगलों, गाँव की चौपाल, कस्बे के चौराहे, किसी मन्दिर के प्रांगण आदि में साँस लेती मिलती है। संस्कृत नाट्य परम्परा का आभिजात्य बन्द रंगमंच लोककला की स्वतन्त्रता को स्वीकार्य नहीं है—"अधिकांश रंगमंचीय प्रदर्शन मुक्ताकाशी होते हैं जिन्हें समतल मैदान, चबूतरेनुमा मंच या गतिशील झाँकीनुमा तमाशों के रूप में आयोजित किया जाता है। इनकी प्रस्तुति फसल के उपरान्त खेत-खलिहानों, गलियों, क़स्बे के बाहर के खुले स्थल (प्रायः स्थायी रूप से प्रदर्शन हेतु नियत) तथा मेलों-बाज़ारों में होती है। महाभारत और रामायण के आख्यानों के प्रदर्शन विशेषतः मन्दिर, उद्यानों, नदी किनारों, बाज़ार के चौकों और बरामदों में होते हैं।''[1]

इसके अलग-अलग रूप और नाम हैं, जैसे—नौटंकी, नाच, नक़ल, भवई, तमाशा, जात्रा, यक्षगान, और इन सबसे बढ़कर रामलीला। यह लोक नाट्य परम्परा कहीं धर्म से जुड़ी रहती है, कहीं किसी पर्व-त्योहार के साथ, कहीं इसका सीधा सम्बन्ध मनोरंजन से होता है, तो कहीं आजीविका का एक स्रोत भी यह बन जाती है। 'रामलीला' ऐसी ही एक लोक नाट्य कला है। इसका आधार पौराणिक रामकथा है। हिन्दी साहित्य कोश भाग—1 के अनुसार इसे हिन्दी नाटकों का आदि स्रोत भी माना गया है। ऐसी जनश्रुति है कि हिन्दी में नाटकों का नितान्त अभाव देखकर गोस्वामी तुलसीदास ने रामलीला का प्रारूप बनाया और काशी में सर्वप्रथम रामलीला का चलन उनकी प्रेरणा से होने लगा। वास्तव में रामलीला हो या अन्य लोक नाट्य रूप प्रायः सभी का धर्म और आस्था के साथ निकट सम्बन्ध देखा जा सकता है—''बहुत-सी परम्परागत भारतीय रंगमंचीय प्रदर्शन कलाएँ हिन्दुओं के विभिन्न धार्मिक पन्थों और देवी-देवताओं से सम्बद्ध हैं और श्रद्धालुओं द्वारा उनका अभिनय किया जाता है। पुराण, महाभारत और रामायण आदि सामान्य धार्मिक साहित्य पर आधारित ये रंगमंच

किसी निश्चित देवी-देवता, सम्प्रदाय या कभी-कभी क्षेत्र इत्यादि के लिए एक स्वतन्त्र वृत्तान्त विशेषतः मंचित करते हैं। चूँकि इनका प्रदर्शन अधिकांशतः धार्मिक सन्दर्भ में किया जाता है अतः ये धार्मिक पवित्रता और भक्तिभावपूर्ण अनुष्ठान की अपेक्षा रखते हैं। ये अति धार्मिक कृत्य प्रदर्शन के आरम्भ या अन्त में या मंचन के साथ आद्योपान्त सम्बद्ध हो सकते हैं। इस सन्दर्भ में अभिनय स्वयं में अनुष्ठान बन जाता है, मनौती बन जाता है।''[2] किन्तु भारतीय परम्पराओं से अनजान विदेशी विद्वान रामलीला में अन्तर्निहित धार्मिक पहलू तक नहीं पहुँच पाते—''रामलीला जैसे धार्मिक उत्सवों की ग़ैर-धार्मिक गतिविधियाँ अपना ग़लत अर्थ लगाये जाने के लिए कुख्यात हैं। उनमें इतना आकर्षण निहित है कि भारतीय रीति-रिवाजों से अनजान पश्चिमी दर्शक इनसे प्राप्त होने वाले आनन्द पर ही केन्द्रित हो जाते हैं और ईश्वरीय पूजा को पूर्णतः विस्मृत कर देते हैं।"[3] किन्तु यह रामलीला की सीमा नहीं अपितु उसका सशक्त पक्ष है कि यहाँ आकर धर्म गौण हो जाता है और लोक कलाओं का जनपक्षीय स्वरूप हावी हो जाता है।

हिन्दुओं की धार्मिक कथा पर आधारित होने पर भी रामलीला एक जन-संस्कृति और लोक संस्कृति के रूप में अपनी पहचान रखती है। नम्बूदरीपाद अपने लेख 'जन-संस्कृति क्या है' में बहुत ही सरल और स्पष्ट ढंग से संस्कृति के तीन भेद बताते हैं—"जन-संस्कृति निस्सन्देह मेहनतकश जनता की संस्कृति है। दूसरी ओर इसके मुकाबले पर है शोषक वर्गों की संस्कृति। लेकिन संस्कृति के कुछ रूप ऐसे हैं जो 'वर्गों से ऊपर' लग सकते हैं। वे सभी कला रूप जिन्हें हम आमतौर पर लोक संस्कृति का नाम देते हैं, शायद इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं।"[4] नम्बूदरीपाद का यह संस्कृति विश्लेषण रामलीला की सतत जीवन्त परम्परा और लोकप्रियता को समझने में कुंजी का कार्य करता है। रामलीला की शुरुआत काशी जैसी धार्मिक नगरी से हुई किन्तु शीघ्र ही यह जाति और धर्म से ऊपर उठकर आमजन के साथ संवाद करने लगी और आज भी यह संवाद प्रक्रिया जारी है। रामलीला के लिए अभिनय कला में पारंगत उच्च कोटि के दक्ष अभिनेताओं की ज़रूरत नहीं होती। 'मैला आंचल' में भी बिदापत नाच के प्रसंग में 'बिकटै' के रचनाकार के बारे में डॉक्टर बाबू द्वारा पूछे जाने पर हँसते हैं क्योंकि—"इनकी रचना के लिए भी कोई तुलसीदास और वाल्मीकि की ज़रूरत है? खेतों में काम करते हुए तुक पर तुक मिलाते हुए गढ़ लेते हैं।"[5] इसी प्रकार दिन में किसानी करने वाला सामान्य परिचित किसान ही रात को गाँव की चौपाल पर रामलीला के किसी पात्र के रूप में आपको मिल जाता है। रामलीला हिन्दी प्रदेश की अपनी जातीय संस्कृति का हिस्सा है। भरतमुनि ने तो संस्कृत के अतिरिक्त किसी भी अन्य भारतीय भाषा के लिए नाटक का राजद्वार बन्द कर रखा है लेकिन रामलीला में न संस्कृत की ज़रूरत होती है और न ही अंग्रेजी जैसी किसी विदेशी भाषा की ही। जयशंकर प्रसाद जैसे शास्त्रवादी नाटककार पारसी नाटक देखने वाले निम्नवर्ग के 'चवन्नीछाप' दर्शकों के लिए नाटक लिखना चाहे अपनी हेठी समझते हों, किन्तु रामलीला की परम्परा में इस प्रकार का वर्ग भेद या सांस्कृतिक स्तरभेद नहीं किया जाता।

रामलीला जैसी लोक संस्कृति में जनता की हिस्सेदारी मात्र दर्शक के रूप में ही नहीं होती अपितु उसके सम्पूर्ण सृजन के साथ आदि से लेकर अन्त तक आम जनता का सीधा जुड़ाव रहता है। यह भी देखा गया है कि रामलीला के अभिनेता और अन्य कलाकार प्रायः निम्न जातियों से आते हैं। कई बार मुस्लिम पात्र और कलाकार भी आपको रामलीला में सक्रिय हिस्सेदारी करते हुए मिल जायेंगे। रामलीला प्रदर्शन सिर्फ़ एक नाट्य प्रदर्शन-भर नहीं होता अपितु रामलीला का सम्पूर्ण माहौल ही त्योहारनुमा होता है। हर भारतीय के मस्तिष्क में अपने बचपन में देखी गयी रामलीला

की सुखद और उत्साहजनक स्मृति सदैव जीवित रहती है। रामलीला के आस्वादन में उम्र, लिंग, शिक्षा, आर्थिक स्तर भेद, जातीय पृष्ठभूमि और धार्मिक मान्यताओं का कोई बन्धन शेष नहीं रहता। दर्शकगण सीटी बजाते हुए अपनी त्वरित प्रतिक्रिया देते देखे जाते हैं। जहाँ रामलीला में उम्दा अभिनय और सजावट पर दर्शकों की तालियाँ और प्रोत्साहन मिलता है, वहीं किसी संवाद के ग़लत उच्चारण और अभिनय में होने वाली त्रुटि पर भी आप दर्शकों की आलोचना और शोरगुल से बच नहीं सकते। माहौल पूरा मैत्रीपूर्ण होता है। स्थानीय लोगों के अपने रिश्तेदार और मित्र रामलीला से जुड़े होने के कारण उनका एक निकट सम्बन्ध और लगाव रामलीला के साथ विकसित हो जाता है। सामूहिक सहयोग और चन्दे के माध्यम से रामलीला समितियों द्वारा रामलीला का सम्पूर्ण आयोजन किया जाता है जिसके कारण सामाजिक सहयोग का भाव विकसित होता है। स्थानीय लोगों को भी अपनी कलात्मक प्रतिभा के प्रदर्शन का मौक़ा मिलता है।

लोंजाइनस ने 'उदात्त की अवधारणा' के सन्दर्भ में बताया है कि निर्दोषता श्रेष्ठता का पैमाना नहीं होती। हर चीज़ को सौ फ़ीसदी चुस्त-दुरुस्त रखना अपने-आप में ओछेपन का द्योतक होता है—''लोंजाइनस की विशेषता यह है कि उसने कविता के मूल उत्स को स्वयं मानव आत्मा में अवस्थित माना। लोंजाइनस की एक महत्त्वपूर्ण उक्ति है 'औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है।' लोंजाइनस की यह उक्ति निर्भ्रान्त रूप से कवि और कवि की आत्मा की प्रमुखता स्थापित करती है। संकेत स्पष्ट है कि केवल कला कौशल से श्रेष्ठ काव्य की रचना सम्भव नहीं है।''[6] इस दृष्टि से लोक कलाओं में कई प्रकार की ख़ामियाँ विद्यमान रह जाना स्वाभाविक है क्योंकि लोक कलाकार व्यावसायिक रंगमंच के प्रशिक्षित रंग अभिनेता होते नहीं। लेकिन यही अनगढ़पन रामलीला और अन्य लोक कलाओं का प्राण है। समाज का प्रभु वर्ग लोक कलाओं के तथाकथित दोषों और त्रुटियों को दूर कर उनके स्वरूप को निखारकर जिस शास्त्रीय कला का विकास करता है, वह अपनी मूल सृजन परम्परा से कटकर शीघ्र ही जीवन्तता खो देती है और फिर मात्र सजावट की चीज़ बनकर रह जाती है। पूँजीपति वर्ग की संस्कृति रामलीला को भी परिष्कृत रूप में ढालकर नये कला माध्यमों जैसे सिनेमा और टेलीविजन पर भी प्रस्तुत करती आयी है। छोटे और बड़े पर्दे की यह रामकथा रामलीला का अपना मूल चरित्र ही खो देती है। वहाँ पर राम धीर-गम्भीर, उच्चकुलोत्पन्न मर्यादा पुरुषोत्तम बन जाते हैं जैसे कि तुलसी के राम हैं। इसके विपरीत रामलीला का पूरा वातावरण ही आकस्मिक दुर्घटनाओं, भूल-चूकों, सहज त्रुटियों से पूर्ण हास्य रस का सृजन करने वाला होता है। मूल रामकथा के भक्ति रस और शान्त रस की गम्भीरता रामलीला में आकर हास्य रस के छींटों में भीग जाती है। लोकप्रिय अवधारणानुसार, हनुमान बनने वाला पात्र मोटा-तगड़ा, थुलथुलकाय व्यक्ति होता है जिसे बच्चे चिढ़ाते रहते हैं, किन्तु वही उनकी पहली पसन्द भी होता है। वानर सेना और असुर सेना का हिस्सा बनकर बच्चों को बालसुलभ शरारतें और झगड़े करने की मानो खुली छूट ही मिल जाती है। रामायण के ज़माने में ऐनक और मोबाइल का आविष्कार नहीं हुआ था, किन्तु आज की रामलीला के राम और रावण आपको चश्मा लगाये और मोबाइल पर बतियाते मिल सकते हैं। अशोक वाटिका में राम के सन्देशवाहक हनुमान के वृक्ष से कूदने का परिणाम कमजोर मंच के धराशायी होने के रूप में हो सकता है। कोई आश्चर्य नहीं अगर मंच के पीछे राम और सीता आपको बीड़ी और चाय पीते नज़र आयें। ऐसा भी हो सकता है कि बेचारे हनुमान जी को बिना पूँछ के ही मंच पर अवतरित होना पड़े क्योंकि किसी ने परेशान करने के लिए उनकी पूँछ ही छिपा दी हो।

सिनेमाई रामलीला

'सिनेमाई रामलीला' पद का प्रयोग यहाँ सामान्य अर्थ में कर रहे हैं अर्थात् सिनेमा द्वारा कथ्य और रूप के स्तर पर रामलीला को पूर्ण और आंशिक स्तर पर ग्रहण करना। आधुनिक हिन्दी नाटक और भारतीय रंगमंच का विकास मूलतः यूरोपीय नाट्य परम्पराओं को सामने रखकर होता है। बहुत बाद में जाकर आज़ादी के उपरान्त लोक नाट्य विधाओं और शास्त्रीय नाट्य रूपों को हिन्दुस्तानी थियेटर ने अपनाया। किन्तु रंगमंच के विपरीत हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के सिनेमा ने अपने जन्म से ही कथ्य और रूप के स्तर पर भारतीय लोक नाट्य रूपों और कथ्य पर ध्यान दिया विशेषतः रामलीला पर। रामलीला के कथ्य और अन्य पौराणिक धार्मिक कथाओं को आधार बनाकर बड़ी संख्या में धार्मिक फ़िल्में बनायी गयीं। आज की उत्तर आधुनिक 21वीं सदी में भी इस प्रकार की फ़िल्में बनना बन्द नहीं हुई हैं। '47 के बाद बड़ा पर्दा धार्मिक विषयों के स्थान पर सामाजिक-पारिवारिक कहानियों और कुछ हद तक राजनीतिक विषयों की ओर क्रमशः झुकता चला गया। लेकिन 20वीं सदी के अन्तिम दशक के आरम्भ से ही हिन्दी की रामकथा विषयक फ़िल्मों की आदि परम्परा नये रूप में छोटे पर्दे पर पुनःअवतरित हो जाती है। स्वतन्त्रता पूर्व रामकथा और अन्य धार्मिक कथाओं को आधार बनाकर हिन्दी सिनेमा एक ओर जहाँ रामलीला और कृष्णलीला के दर्शकों को ईश्वरीय चमत्कारों की जादुई लीला दिखाकर अपनी जेबें भरने में लगा था, वहीं साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद में जनता को पराजित मानसिकता से उबारने के लिए धार्मिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरण का महती कार्य भी प्रकारान्तर से कर रहा था। 90 के बाद धार्मिक धारावाहिकों की जो बाढ़ छोटे पर्दे पर आयी है, उसके मूल में भी मध्यवर्गीय धार्मिकता को प्रायोजक राष्ट्रीय-बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बाज़ार में भुनाना तो है ही लेकिन साथ ही उसके मूल में मन्दिर आन्दोलन से उपजी साम्प्रदायिक लहर और पाश्चात्य भौतिकतावादी संस्कृति के मीडियाई आक्रमण की तथाकथित सांस्कृतिक प्रतिक्रिया भी है। जब रामानन्द सागर 1987-1988 में दूरदर्शन पर 'रामायण' टेली धारावाहिक लेकर आये थे, तो यह रामलीला की जन संस्कृति का पूँजीवादी आधुनिक जन संचार माध्यम द्वारा अपने आर्थिक हित में विदोहन ही था। एक क्षण को ऐसा लगा था कि इससे रामलीला के दर्शकों में भारी कमी आ सकती है और वास्तव में इसे रामलीला की लोक संस्कृति पर हमला ही कहा जायेगा किन्तु आज भी नयी पीढ़ी में रामलीला के प्रति उत्साह कम नहीं हुआ है। आगे चलकर रामकथा को आधार बनाकर अन्य धारावाहिक भी प्रदर्शित होते रहे। इस प्रकार रामलीला की जो लोक संस्कृति है, उसे ही हिन्दी सिनेमा और आज का पूँजीवादी टेलीविज़न उद्योग बनाकर अपने पैसे बना रहा है। इस पूरी प्रक्रिया को एडार्नो ने संस्कृति उद्योग की संज्ञा दी है। रामकथा पर आधारित टेलीविज़न धारावाहिकों में प्रमुख रहे हैं—दूरदर्शन पर प्रसारित रामायण (1987-1988), एनडीटीवी इमेजिन पर प्रसारित रामायण (2008-2009), ज़ीटीवी की रामायण (2012-2013), सोनी एंटरटेनमेंट टेलीविज़न का जय हनुमान (2008) और डीडी नेशनल पर आया लव-कुश धारावाहिक (1988) आदि। इस प्रकार भारतीय टेलीविज़न चैनलों पर रामलीला के समानान्तर एक ही रामकथा को कुछ बदले हुए संस्करणों के साथ बारम्बार प्रदर्शित किया जा रहा है। जिस प्रकार सिनेमा में किसी सफल फ़िल्म के कई सीक्वेंस बना लिए जाते हैं, उसी प्रकार रामानन्द सागर के मूल रामायण धारावाहिक की लोकप्रियता को भुनाते हुए आगे उसी कथा और उसके पात्रों को आधार बनाकर विभिन्न धारावाहिक आये हैं। एक प्रकार से रामकथा और रामलीला टेलीविज़न उद्योग के लिए ब्रांड सदृश्य है जिसका जमकर विदोहन वह कर रहा है।

रामलीला का यह सिनेमाई रूपान्तरण अपने मूल से गुणात्मक अन्तर रखता है। प्रारम्भ में उल्लेख किया गया है कि रामलीला आदि लोक कलाओं का धर्म और आस्था से निकट का रिश्ता रहा है। रामलीला के मंचन के दौरान राम-सीता-लक्ष्मण आदि की भक्तिभाव और श्रद्धा के साथ पूजा की जाती है, आरती होती है। किन्तु सिनेमाई पर्दे पर रामलीला मंचन के प्रसंग में इस लोककला की यह धार्मिक पृष्ठभूमि झड़ जाती है, यह कला ज़्यादा धर्मनिरपेक्ष और लोकतान्त्रिक बनकर फ़िल्म में प्रदर्शित होती है। लोक कला का मुक्ताकाशी प्राकृतिक रंगमंच सिनेमा में आकर छविगृह की सीमा में बँध जाता है किन्तु दूसरी ओर रामलीला यहाँ आकर देशकाल की सीमाओं से ऊपर भी उठ जाती है। रामलीला में सृजन और आस्वादन के स्तर पर अभी हमने जन समुदाय की जिस सक्रिय भागीदारी पर प्रकाश डाला है, वह इस प्रकार की सिनेमाई रामलीला में सिरे से ग़ायब रहती है। इस प्रकार की पूँजीवादी सिने संस्कृति जन संस्कृति के ऊपर कुठाराघात है। सांस्कृतिक विविधताओं के जो स्तर रामलीलाओं की प्रस्तुति में नज़र आते हैं, उस प्रकार की स्थानीयता और विविधता हिन्दी सिनेमा और टीवी पर कहीं नहीं मिलती। उल्लेखनीय है कि हमारे देश में मोटे तौर पर चार प्रकार की रामलीलाएँ होती हैं। रामलीला का पहला प्रकार वह है जिसमें रामलीला के विविध प्रसंगों की मनोरम झाँकियाँ गाँवों और क़स्बों में निकाली जाती हैं। द्वितीय प्रकार की रामलीला संवाद आधारित होती है और कई बार रामकथा के विविध स्थलों के अनुसार प्रदर्शन स्थल बदलते हुए मंच भी गतिशील रहता है। तृतीय प्रकार की रामलीला में क्षेत्र विशेष के स्थानीय लोक संगीत और वाद्य यन्त्रों का बहुतायत से प्रयोग होता है। चतुर्थ वर्ग में स्थानीय व्यावसायिक मण्डलियों द्वारा खेली जाने वाली रामलीलाओं को रखा जा सकता है। इस प्रकार रामलीला प्रस्तुति के कई रूप हैं और उनकी विषय-वस्तु में भी स्थानिकता मिलती है। इसके विपरीत सिनेमाई रामलीला हिन्दी सिनेमा के मेलोड्रामाई खाँचे से बाहर नहीं निकल पाती। वर्तमान हिन्दी सिनेमा अवश्य रामलीला की शैली के साथ कुछ हद तक मौलिक ढंग से प्रयोग करने लगा है किन्तु टेलीविज़न के रामकथा आधारित धारावाहिकों में घनघोर एकरूपता और नीरसता के दर्शन होते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि रामलीला की स्थानीयता को नकार कर उसे धार्मिक फ़िल्मों या धार्मिक धारावाहिकों के खाँचे में ढालकर जो प्रस्तुति की जाती है, वह यान्त्रिक और कर्मकाण्डीय होती है।

सिनेमा द्वारा कथ्य और रूप के लिए परम्परागत लोक कलाओं का इस्तेमाल निरन्तर होता आया है। अन्य कला माध्यम भी अभिव्यक्ति के विविध रूपों और अपने पूर्ववर्ती और समकालीन कला रूपों से काफ़ी चीजें ग्रहण करते रहते हैं। हिन्दी सिनेमा भी रामलीला और रामकथा को माध्यम बनाता रहा है। धार्मिक फ़िल्मों में रामलीला साध्य रूप में आती थी जैसा कि आजकल के टेली धारावाहिकों में हो रहा है। किन्तु वर्तमान हिन्दी सिनेमा रामलीला के कथ्य और रूप का इस्तेमाल किसी ज्वलन्त समस्या या मुद्दे को उठाने के लिए कर रहा है। इसके साथ-साथ एनिमेशन फ़िल्मों में रामकथा का कथ्य साध्य रूप में भी प्रयुक्त हो रहा है। कथ्य और रूप दोनों स्तरों पर रामकथा की सिनेमाई प्रस्तुति अपने अलग-अलग निहितार्थ रखती है। कलाकार या निर्देशक जिस भी शैली का इस्तेमाल करें, उन्हें चाहिए कि वह कथ्य की माँग के अनुरूप उसका सृजनात्मक प्रयोग करें। जब एक कला माध्यम दूसरे स्वतन्त्र कला माध्यम का इस्तेमाल करता है तब तो इस बुनियादी बात का विशेष ही ध्यान रखना ज़रूरी है। सफ़दर हाशमी इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि—''नये ख़यालात के इज़हार की कशमकश में कलाकार नये-नये रूपों का सृजन करता है, उन्हें खोजकर निकालता है। लेकिन कई मर्तबा यूँ भी होता है कि कथ्य के अभाव में अपने खालीपन से परेशान होकर कलाकार

सिर्फ़ चकाचौंध करने वाली, चौंका देने वाली शैली का सहारा लेकर ही अपने वजूद, अपनी हस्ती को बनाये रखना चाहता है।"[7] स्पष्ट है कि हिन्दी सिनेमा अगर सृजनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में रामलीला को, उसके कथ्य को माध्यम बनाता है, तो वह स्वयं के साथ-साथ परम्परा का भी विकास करता है। अगर रामलीला जैसी पारम्परिक नाट्य शैली का सिनेमाई रूपान्तरण अपने समय के यथार्थ के साथ टकराव और संघर्ष की उपज नहीं है, तो वह पैबन्द के जैसी लगने लगती है। परम्परा में प्रगतिशील और ग़ैर-प्रगतिशील दोनों तरह की संस्कृतियाँ चली आती हैं। जब किसी कला रूप में हम परम्परागत शैलियों या अन्य कला रूपों का उपयोग या समावेश करते हैं, तो ज़रूरी हो जाता है कि हम पिष्टपेषण मात्र न करें। जिन सांस्कृतिक परम्पराओं का सम्बन्ध मेहनतकश बहुसंख्यक वर्ग से है, उनके उपयोग से हम उस वर्ग से जुड़ सकते हैं।

जहाँ तक हिन्दी सिनेमा और रामलीला की रचनात्मक प्रक्रिया और आस्वादन प्रक्रिया का सम्बन्ध है, तो ऊपर से दोनों में घनिष्ठ रिश्ता नज़र आता है क्योंकि दोनों ही प्रदर्शन कलाएँ हैं और हिन्दी की धार्मिक फ़िल्मों और रामलीला की विषय-वस्तु भी समान होती है। लेकिन सिनेमा का चरित्र मूलतः एक पूँजीवादी कला माध्यम का मुनाफ़ाधर्मी चरित्र है जबकि रामलीला एक लोक कला है। दोनों में सामूहिक कला श्रम की अपेक्षा होती है लेकिन सिनेमा के कलाकार और तकनीकी लोगों का अपने श्रम से वह लगाव नहीं बन पाता जो रामलीला के कलाकारों का होता है। सिनेमा को भी रामलीला के समान समूह के साथ देखा जाता है किन्तु सिनेमा का दर्शक भीड़ से घिरा एकाकी व्यक्ति होता है जबकि रामलीला देखना सामाजिक-पारिवारिक उत्सव का एक अंग बनने सदृश्य होता है। दोनों ही लोकप्रिय कला माध्यम हैं लेकिन पहला माध्यम जहाँ सांस्कृतिक उद्योग की जड़विहीन लोकप्रिय कला मात्र है, वहीं दूसरा माध्यम 'पॉपुलर आर्ट' के साथ-साथ मूलतः 'पीपुल्स आर्ट' है। 'पॉपुलर आर्ट' 'पीपुल्स आर्ट' की लोकप्रियता भुनाने के लिए उसका इस्तेमाल अवश्य करती है लेकिन इस्तेमाल की यह प्रक्रिया उसे जड़ों से काट देती है। आजकल एक नया प्रयोग रामलीला मंचन के दौरान चल निकला है। स्थानीय टेलीविज़न चैनलों पर रामलीला मंचन का सीधा प्रसारण किया जाने लगा है। इससे अब लोग अपने घर बैठे भी रामलीला दर्शन की सुविधा पाने लगे हैं लेकिन रामलीला के साथ सक्रिय जीवन्त रिश्ता इस प्रकार की रामलीला में सम्भव ही नहीं है। वैसे यह प्रयोग सिनेमा से ही आया है। हिन्दी सिनेमा के आरम्भ में मंचीय नाटकों को कैमरे द्वारा रिकॉर्ड करके छविगृहों में उनका प्रदर्शन किया जाता था। आज पुनः यही प्रयोग टेलीविज़न पर दोहराया जाने लगा है।

स्वतन्त्रता पूर्व का हिन्दी धार्मिक सिनेमा और रामलीला

सिनेमा के साथ रामलीला के सम्बन्धों को व्यावहारिक धरातल पर देखने के लिए 1947 एक महत्त्वपूर्ण विभाजक बिन्दु हो सकता है। इससे पूर्व का हिन्दी सिनेमा मूलतः धार्मिक सिनेमा है जहाँ रामकथा को आधार बनाकर मूक युग में और फिर सवाक् दौर में फ़िल्में बनायी गयीं। यहाँ रामकथा की पूर्ण और आंशिक प्रस्तुति के साथ-साथ रामलीला की फॉर्म के साथ प्रयोग किये गये। आरम्भ में हिन्दी की धार्मिक फ़िल्मों पर रामलीला की शैली का ज़्यादा प्रभाव है किन्तु जैसे-जैसे हिन्दी सिनेमा अपनी स्वायत्त भाषा और शैली विकसित करता गया, यह प्रभाव कम होता गया। हिन्दी सिनेमा का दर्शक वर्ग मुख्यतः तत्कालीन मध्यवर्ग से आता था। यह मध्य वर्ग सदैव से धर्मभीरू रहा है। हिन्दी के पहले निर्माता-निर्देशक दादा साहब फाल्के ने इसी मध्य वर्ग की धार्मिक मान्यताओं को पर्दे पर प्रस्तुत करने की रणनीति के तहत 'राजा हरिश्चन्द्र' (1913) से हिन्दी सिनेमा का शुभारम्भ किया।

फाल्के के दिखाये रास्ते पर चलते हुए परवर्ती निर्देशकों ने भी धर्म को ही सिनेमा के लिए सबसे सुरक्षित विषय माना। रामायण-महाभारत और पुराणों में आये हिन्दू देवी-देवताओं पर मूक युग में सैकड़ों फ़िल्में बनीं। जब हिन्दी सिनेमा बोलने लगा तब भी धर्म का आकर्षण कम न हुआ। राजनीति में चाहे 20वीं सदी आधुनिक विचारों की सदी के रूप में आयी थी, लेकिन हिन्दी सिनेमा में भक्तिकाल चल रहा था। धार्मिक फ़िल्मों का यह दौर 1912 से लेकर 1940 तक अपने शिखर पर था। 1912-1917 के दौरान कुल निर्मित फ़िल्मों की संख्या 23 थी और ये समस्त धार्मिक फ़िल्में थीं। 1918-1930 के बीच कुल 890 हिन्दी फ़िल्में निर्मित हुईं जिनमें से 325 का सम्बन्ध धर्म से था।[8] हिन्दी सिनेमा द्वारा रामलीला और रामकथा को अपनाने के पीछे आम जनता में इनकी लोकप्रियता और धार्मिक आस्था तो थी ही किन्तु साथ ही सांस्कृतिक अस्मिता और स्वाभिमान के जागरण से भी इस प्रवृत्ति का सम्बन्ध अवश्य था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की ग़ुलामी में जी रहे भारतीयों द्वारा प्रेरणा के लिए पौराणिक मिथकों में झाँकना स्वाभाविक ही था। यहाँ ध्यातव्य है कि उत्तर प्रदेश के क़स्बों में स्वाधीनता आन्दोलन से प्रेरित होकर रामलीला का उपयोग भी सांस्कृतिक-राजनीतिक जनजागरण के एक माध्यम के रूप में हो रहा था—''कोई आश्चर्य नहीं कि 1920 और 30 के दशकों में लब्धप्रतिष्ठित नेताओं की प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण आत्माभिव्यक्ति रूपों की संघर्ष स्थली के रूप में विभिन्न क़स्बों में रामलीला का उभार हुआ। हिन्दू संगठनों और सुधाारकों के नेतृत्व ने हिन्दू शक्ति और भारतीय राष्ट्रवाद को व्यंजित करने के एक माध्यम रूप में रामलीला का इस्तेमाल करने की चेष्टा की। उन्होंने इस प्रकार भारत माता, महात्मा गाँधी, शिवाजी और रानी झाँसी के साथ-साथ चरखा कताई और जलियांवाला बाग सदृश्य ब्रिटिश पुलिस की क्रूरताओं की छवियों को रामलीला की झाँकियों में सम्मिलित किया। उन्होंने राम, सीता और लक्ष्मण की पवित्र आकृतियों को जहाँ हाथ से बुने खादी वस्त्रों में प्रस्तुत किया, वहीं कुख्यात विरोधी रावण को विदेशी परिधानों में।''[9] स्वाधीनता आन्दोलन में भी गाँधी और तिलक आदि हमारे राष्ट्रीय नेता तक हिन्दू धार्मिक प्रतीकों का इस्तेमाल कर रहे थे। इस प्रकार राजनीति में स्वाधीनता आन्दोलन के अन्तर्गत धर्म का जो इस्तेमाल किया जा रहा था, उसी की छवि हम मूकयुगीन सिनेमा और तदुपरान्त हिन्दी के सवाक् सिनेमा में देखते हैं। गाँधी जी का स्वराज रामराज्य के आदर्श पर टिका था। यह संयोग मात्र नहीं है कि गाँधी जी ने अपने जीवन में जो एकमात्र फ़िल्म देखी, वह रामकथा पर ही आधारित थी—विजय भट्ट की 'राम राज्य'(1943)। आदर्श भारतीय नारी के रूप में रामकथा की सीता के चरित्र को केन्द्र में रखकर भी हिन्दी फ़िल्में बनी हैं, जैसे सीता वनवास (1924, 1927), लव-कुश (1925), सीता (1934) और सीता मैया (1964) आदि। 1961 में आयी बाबूभाई मिस्त्री निर्देशित 'सम्पूर्ण रामायण' भी इसी परम्परा की अन्तिम कड़ियों में से है।

स्वातन्त्र्योत्तर पारिवारिक-सामाजिक सिनेमा और रामलीला

1947 के बाद हिन्दी सिनेमा के चरित्रों में महत्त्वपूर्ण बदलाव देखा जा सकता है। अब हिन्दी सिनेमा की मुख्यधारा धार्मिक कथाओं से हटकर पारिवारिक-सामाजिक विषयों पर केन्द्रित हो गयी। यद्यपि '47 से पूर्व ही इस बदलाव के संकेत साफ़ देखने को मिलने लगे थे। 'दुनिया न माने' और 'नीचा नगर' जैसी फ़िल्मों की अपनी एक अलग दुनिया भी विकसित होने लगी थी जहाँ सामाजिक यथार्थ पर विशेष बल दिया जा रहा था। सैंतालीस के विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों ने धार्मिक फ़िल्मों के प्रति लोगों का रुझान भी बदल दिया था। आज़ादी के बाद हमारे राष्ट्र ने धर्मनिरपेक्षता को

राष्ट्रीय मूल्य के रूप में अपनाया। केन्द्रीकृत नगरीकरण-औद्योगीकरण के साथ-साथ परम्परागत पितृसत्तात्मक परिवार और समाज में तनाव और बदलाव आने लगते हैं। बदले हुए माहौल में धर्म से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण विषय अब परिवार-समाज हो गये हैं। रामलीला के फॉर्म का इस्तेमाल साध्य रूप में अब लगभग नहीं मिलता किन्तु रामकथा की संरचना इन फ़िल्मों की कहानी में आसानी से पहचानी जा सकती है। ग्रेगोरी डी. बूथ ने अपने एक लेख में हिन्दी के व्यावसायिक सिनेमा में प्रस्तुत पितृसत्तावादी स्टीरियोटाइप स्त्री छवियों को भारतीय महाकाव्यों (रामायण-महाभारत) और उन पर आधारित लोक नाट्य परम्पराओं के साथ सम्बद्ध करके देखने की कोशिश की है—"आत्म त्याग पर केन्द्रित महाकाव्यों में सामाजिक मर्यादाओं के संरक्षण पर बल दिया जाता है। तनाव की स्थिति भावनात्मक और आन्तरिक स्तर पर होती है। समस्या का समाधान या तो त्याग-बलिदान द्वारा होता है अथवा अतिमानवीय सहनशीलता या दृढ़ता से समस्या को हल किया जाता है।"[10] बूथ ने हिन्दी सिनेमा में मिलने वाली स्त्रियों की दोयम स्थिति के सन्दर्भ में यह बात कही है किन्तु इससे रामलीला और रामायण के कथ्य के इर्द-गिर्द बुना जाने वाला सिनेमाई कथानक स्पष्ट हो जाता है। हाँ, परम्परा के जिन प्रगतिशील तत्त्वों को अपनाने की बात पूर्व में कही गयी है, उसकी उपेक्षा भी यहाँ ध्यातव्य है।

समकालीन हिन्दी सिनेमा और रामकथा

समकालीन हिन्दी सिनेमा की आरम्भिक सीमा हम 1990 से मान सकते हैं क्योंकि भारतीय अर्थनीति और समाज में यह एक प्रस्थान बिन्दु सदृश्य है। एक ओर मन्दिर आन्दोलन और बाबरी मस्जिद विध्वंस के साथ भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता की आँधी फिर से चलने लगती है, वहीं हमारे कर्णधार विश्व की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के सामने घुटने टेककर वैश्विक निगमों के लिए अपने बन्द दरवाज़े खोल देते हैं। भारतीय टेलीविज़न पर विदेशी टीवी चैनलों को प्रसारण की छूट मिलती है और भारतीय दर्शकों के सामने बेहतर तकनीक और बड़ी पूँजी के निवेश वाले पाश्चात्य रंग-ढंग में डूबे कार्यक्रम परोसे जाने लगते हैं। इन विदेशी कार्यक्रमों और चैनलों का सामना करने के लिए हमारे सरकारी और निजी टीवी चैनलों को पुनः रामलीला और रामकथा की याद आती है। एक के बाद एक धार्मिक धारावाहिक आने लगते हैं जिनकी चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। स्वतन्त्रता पूर्व की हिन्दी धार्मिक फ़िल्मों का स्वर साम्प्रदायिक नहीं था किन्तु इन टेलीविज़न धारावाहिकों के प्रति कई मीडिया विशेषज्ञों ने उँगली उठाई है। 90 के बाद भारतीय राजनीति में जो दक्षिणपन्थी उभार हुआ है, उससे भी इन धारावाहिकों का निकट सम्बन्ध देखा गया है।

जहाँ आज छोटा पर्दा धार्मिक रंग में रँगा नज़र आता है, वहीं हिन्दी सिनेमा की स्थिति अलग है। वहाँ इस प्रकार से धार्मिक कथाओं का आधार बनाकर फ़िल्में नहीं बनायी जा रही हैं। इस बुनियादी भेद का कारण दोनों माध्यमों के अर्थतन्त्र में निहित है। हिन्दी सिनेमा का दर्शक किसी धर्म या क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं है। समुद्र पार के खाड़ी देशों और यूरोप-अमेरिका के प्रवासी भारतीयों तक यह बाज़ार फैला है। बाज़ार की यह विविधता उसे धार्मिक विषयों की ओर जाने से रोकती है। टेलीविज़न के दर्शक भी धार्मिक और क्षेत्रीय दृष्टि से व्यापक भिन्नता रखते हैं लेकिन टेलीविज़न कार्यक्रमों का पूरा ढाँचा विज्ञापनों पर टिका है जो मध्य और उच्चवर्गीय हिन्दू दर्शकों की उपभोग क्षमता को केन्द्र में रखकर बनाये जाते हैं। इस प्रकार धर्म की छाया आज हिन्दी सिनेमा में नहीं देखी जा सकती किन्तु नयी पीढ़ी के जागरूक और प्रतिभाशाली निर्देशक लोक कलाओं को

समसामयिक यथार्थ के साथ जोड़कर प्रयोग करते हुए देखे जा सकते हैं। रामलीला भी आज नये सन्दर्भों और रूपों में हिन्दी सिनेमा के आकर्षण का विषय बन रही है। हम कुछ हिन्दी फ़िल्मों में रामलीला के प्रयोगों का संक्षिप्त विश्लेषण करने का प्रयास कर रहे हैं।

निर्देशक आशुतोष की 'स्वदेश' (2004) फ़िल्म देशज लोक संस्कृति और भारतीय गाँवों की जनता को पिछड़ी हुई और सड़ी-गली सामन्ती मानसिकता में डूबा मानकर बेहतर पैकेज की तलाश में विदेशी राष्ट्रों में अपना शैक्षणिक और तकनीकी कौशल बेचते प्रवासी भारतीयों को राष्ट्र निर्माण की परियोजना से जोड़ने वाली फ़िल्म है। यह फ़िल्म गाँधी के स्वराज को आधुनिक देशकाल में भी प्रासंगिक बताती है। इस फ़िल्म में सरकार की अकर्मण्यता के बरअक्स स्थानीय गाँववालों की आत्मनिर्भर बनने की जद्दोजहद दिखाई गयी है। फ़िल्म का नायक मोहन भार्गव नासा में काम करने वाला प्रवासी भारतीय है। अपनी कावेरी अम्मा की ममता से मजबूर हो वह उनके गाँव की स्थानीय समस्याओं जैसे अशिक्षा, अस्पृश्यता और विद्युत की बारम्बार बाधित आपूर्ति इत्यादि के लिए कुछ करना चाहता है। लेकिन जब तक वह गाँववालों की लोक संस्कृति से नहीं जुड़ता गाँववाले उसे गम्भीरता से नहीं लेते। अतः वह दशहरे के मौक़े पर गाँव में होने वाली रामलीला का इस्तेमाल अँधेरे के विरुद्ध आन्दोलन चलाने के रूप में करता है। यह अँधेरा सिर्फ़ विद्युत के अभाव में होने वाला भौतिक अँधेरा नहीं है। यह अँधेरा है—पिछड़ेपन जातिवाद अशिक्षा, ग़रीबी और भ्रष्टाचार का। रामलीला के मंचन के दौरान रावण के अत्याचारों से त्रस्त सीता राम को पुकार रही है—'पल-पल है भारी विपदा है आई, मोहे बचाओ अब राम रघुराई'। किन्तु नायक मोहन भार्गव अपनी हर समस्या के लिए हाथ पर हाथ धरे ईश्वर या सरकार की ओर देखते रहने को अकर्मण्यता बताता है। वह कहता है कि 'मन से रावण जो निकाले राम उसके मन में है।' यहाँ रावण ग़ैर-प्रगतिशील सामन्ती मूल्यों का प्रतीक है। उसके दहन के दौरान ही विद्युत चली जाने से अँधेरा हो जाता है। निर्देशक ने रामलीला के इस प्रसंग का सर्जनात्मक इस्तेमाल करते हुए भौतिक और सामाजिक अन्धकाररूपी रावण के ख़िलाफ़ मोहन भार्गव को माध्यम बनाकर जेहाद छेड़ा है। मोहन भार्गव रामलीला के दौरान हुए इस आकस्मिक अँधेरे को सदा के लिए दूर करने और विकास का बन्द द्वार खोलने के लिए स्थानीय गाँववालों को गाँव के झरने से टर्बाइन चलाकर विद्युत उत्पादन की स्वायत्त लघु योजना पर कार्य करने के लिए तैयार कर लेता है। फ़िल्म में आयी इस रामलीला में राम और सीता की भूमिकाओं में क्रमशः गाँव के ही पोस्टमास्टर जी और विद्यालय की शिक्षिका हैं। गाँव के बच्चे ही वानर सेना के वीर बनते हैं। वानर सेना के साथ राम-लक्ष्मण की झाँकी भी है। अन्त में रावण वध के उपरान्त रावण-मेघनाद-कुम्भकर्ण के पुतलों का दहन भी है। जैसाकि पूर्व में उल्लेख किया गया है, इस रामलीला में भी दर्शक समुदाय में जातिभेद नहीं नज़र आता। गाँव के दलित भी सवर्णों के साथ रामलीला देखते हैं।

'आक्रोश' (2010) प्रियदर्शन निर्देशित फ़िल्म है जिसमें रामलीला मंचन के समानान्तर ऑनर किलिंग का सीक्वेंस रखकर लोक परम्परा के ग़ैर-प्रगतिशील सामन्ती पक्ष की क्रूर तस्वीर प्रस्तुत की गयी है। रामकथा के मर्यादा पुरुषोत्तम की पितृसत्तात्मक सामन्ती मर्यादा के आदर्श का महिमामण्डन करने वाली रामकथा के श्रोता और दर्शक आज परिवार और जाति की थोथी इज़्ज़त के नाम पर हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, राजस्थान आदि हिन्दी प्रदेश के राज्यों में विजातीय और निम्न जातियों के युवकों के साथ प्रेम और विवाह करने पर अपनी ही बेटियों और उनके प्रेमियों-पतियों की हत्याएँ करने का अभियान चलाये हुए हैं। फ़िल्म का आरम्भ भ्रष्ट जातिवादी सामन्ती मानसिकता

वाले स्थानीय नेता के हाथों रावण दहन के साथ होना अपने-आप में प्रतीकारात्मक है। आज वास्तविक ज़िन्दगी के रावण ही राम के रूप में पूजे जा रहे हैं। फ़िल्म के इस सीक्वेंस में राम-सीता की झाँकी के साथ रामकथा का गीतात्मक गायन दिखाया गया है।

अनुराग कश्यप निर्देशित 'गुलाल' (2009) में रामलीला का नूतन ढंग से इस्तेमाल किया गया है। फ़िल्म में रामलीला का न कोई सीक्वेंस है और न ही उसके कथ्य का प्रयोग है। इनके स्थान पर रामलीला के पात्रों की नाटकीय प्रस्तुति कामदी और त्रासदी दोनों को अभिव्यक्त कर जाती है। रैगिंग और जातिवादी राजनीति के लिए कुख्यात राजस्थान के एक विश्वविद्यालय का यथार्थ दिखाने के लिए इन पात्रों का सृजनात्मक उपयोग हुआ है। विश्वविद्यालय के विधि संकाय में अध्ययन के प्रति गम्भीर और सीधा-सादा नवयुवक दिलीप सिंह भर्ती हुआ है। किन्तु जब वह छात्रावास में प्रवेश लेने के सिलसिले में छात्रावास अधीक्षक से मिलने छात्रावास जाता है, तो उसका सामना सीढ़ियों से उतरते रामलीला के तीन पात्रों—हनुमान, राम और सीता से होता है जिनको उनके वरिष्ठ छात्रों ने रैगिंग के नाम पर रामलीला के पात्र बनने के लिए मजबूर किया था। रैगिंग के सीक्वेंस से पहले दिलीप सिंह के साथ रहने वाले उसके नौकर भँवर को बड़े श्रद्धा भाव के साथ हनुमान जी की तस्वीर के आगे हाथ जोड़ते दिखाया गया था। ये दोनों प्रसंग एक-दूसरे के साथ रखने पर तनाव का सृजन करते हैं जो आज के तथाकथित विश्वविद्यालयों में रैगिंग का माध्यम बने रामलीला के ईश्वरीय पात्रों की बेचारगी बयान करते हैं। फ़िल्म के राजपूत नेता दुकी बन्ना के घर पर एक अन्य नौटंकीनुमा पात्र और दिखाया गया है जो अर्द्धनारीश्वर का रूप धरे अर्द्धपागल-सा है।

1983 में प्रदर्शित कुन्दन शाह निर्देशित फ़िल्म 'जाने भी दो यारो' एक प्रहसन है जिसमें स्वातन्त्र्योत्तर भारत में पनपने वाले विकास के भ्रष्ट तन्त्र की आलोचना करते हुए गम्भीर हास्य का सृजन किया गया है और इसके लिए एक पूरा लम्बा सीक्वेंस रामलीला फॉर्म में फ़िल्माया गया है। विनोद चोपड़ा और सुधीर मिश्रा व्यावसायिक छायाचित्रकार हैं, जो मुम्बई के प्रतिष्ठित हाजी अली क्षेत्र में किराये की दुकान लेकर अपनी मेहनत से सम्मानित ज़िन्दगी बिताने का प्रयास करते हैं। लेकिन ये दोनों भ्रष्ट ठेकेदारों, रिश्वतखोर नौकरशाही और पूँजीवाद के क्रीतदास मीडिया के जाल में उलझकर एक पुल तोड़ने के झूठे आरोप में अन्ततः जेल पहुँचा दिये जाते हैं। फ़िल्म के क्लाइमेक्स में इन दोनों ईमानदार युवकों और भ्रष्ट अपराधी तन्त्र के बीच का द्वन्द्व रामलीला फॉर्म का इस्तेमाल करते हुए दिखाया गया है। यद्यपि शैली रामलीला की है किन्तु कथ्य महाभारत की द्यूत क्रीड़ा के उपरान्त द्रौपदी के चीरहरण का है। फ़िल्म का यह लम्बा सीक्वेंस त्रासदी और कामदी का मिश्रण है। जिस व्यवस्था और तन्त्र पर समाज में आदर्श और नैतिक मूल्यों के संरक्षण की ज़िम्मेदारी है, वह पूरा तन्त्र किस प्रकार से सड़ चुका है, वही यहाँ प्रदर्शित है। अभिनेता मात्र प्रतीकात्मक वेशभूषा में हैं। पौराणिक अस्त्र-शस्त्र की जगह आधुनिक हथियार हैं। दुशासन और भीम बने पात्रों ने ऐनकें भी लगा रखी हैं। कथ्यान्तर करते हुए महाभारत के बीच अकबर-अनारकली-सलीम की कहानी भी डाल दी गयी है। वास्तव में यहाँ रामलीला फॉर्म का उपयोग एक सिनेमाई रूढ़ि या युक्ति के रूप में हास्य-व्यंग्य का वातावरण सृजित करने के लिए किया गया है।

दीपा मेहता की फ़िल्म 'फायर' (1996) में रामायण टेजीविज़न धारावाहिक और शहरी मेलोड्रामाई रामलीला का इस्तेमाल करते हुए बहुत ही क्रान्तिकारी ढंग से भारतीय पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था को नकारते हुए उसके विकल्प में स्त्री समलैंगिकता का मुद्दा उठाया गया है। फ़िल्म में बारम्बार सीता की अग्नि-परीक्षा का प्रसंग रामानन्द सागर के रामलीला धारावाहिक और रामलीला

के माध्यम से उठाया गया है। निर्देशिका ने सदियों से चली आ रही इस अग्नि-परीक्षा का सम्बन्ध दहेज आदि के नाम पर स्त्री को जलाकर मार देने की अमानवीय प्रथा से संकेतित किया है। मध्य और उच्चवर्गीय हिन्दू परिवारों में पतिव्रता स्त्री का आदर्श ढोती ऐसी सीताएँ आम हैं। स्त्री अगर पति और उसके घरवालों की अपेक्षाओं-आवश्यकताओं पर खरी नहीं उतरती तो उसे भी सीता की तरह अग्नि के हवाले कर दिया जाता है। फ़िल्म में दिल्ली के मध्यवर्गीय व्यवसायी परिवार की दो स्त्रियों के जीवन का कटु यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। जेठानी के रूप में राधा है और देवरानी के रूप में सीता है। इन दोनों स्त्रियों का जीवन अपने पतियों की उदासीनता, उपेक्षा, परस्त्री सम्बन्ध आदि से नरक बन गया है। ये दोनों सहज मानवीय प्रेम और दैहिक कामना से प्रेरित होकर परस्पर नज़दीक आती जाती हैं। राधा का पति अशोक एक स्वामी जी के आदेशों के अनुसार अपनी काम इच्छा पर कठोर नियन्त्रण किये है क्योंकि उसके स्वामी जी का मानना है कि मानव मन की इच्छाएँ मानव के पतन का हेतु बनती हैं। किन्तु अशोक वहीं अपनी पत्नी के समलैंगिक सम्बन्धों को अपने पुरुषत्व के लिए चुनौती मानता है। अशोक के साथ बहस में राधा की साड़ी दुर्घटनावश आग पकड़ लेती है किन्तु अशोक आग बुझाने का तनिक भी प्रयास नहीं करता, गोया राधा ने अपने पति की निष्क्रियता के विकल्प रूप में देवरानी सीता से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करके पतिव्रता स्त्री की गरिमा को ठेस पहुँचायी हो और उसे अग्नि में जलकर ही अपने इस तथाकथित पाप कर्म का मूल्य चुकाना हो! इससे पूर्व निर्देशिका रामायण धारावाहिक और रामलीला मंचन के दौरान सीता के चरित्र पर उँगुली उठाते राम को दिखाती है जिससे फ़िल्म की राधा के साथ दर्शक सहज ही यहाँ रामकथा की सीता का तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। फ़िल्म में करवा चौथ की कथा की भी रामलीला शैली में प्रस्तुति हुई है जहाँ निष्ठावान पत्नी (रानी) के बरअक्स लम्पट पति (राजा) की दुश्चरित्रता का चित्रण हुआ है। इस मंचन में चँवर डुलाता राजा का सेवक चश्मा पहने है और इसी प्रकार रामलीला मंच के पीछे हनुमान जी को बीड़ी पीते दिखाया गया है। इस प्रकार की स्थिति और वेशभूषा हास्य की स्थिति पैदा करती है किन्तु यहाँ हास्य की अपेक्षा पितृसत्ता की सामन्ती मर्यादा पर व्यंग्य .ज्यादा है।

'लज्जा' (2001) भारतीय समाज में स्त्री की दुर्दशा दिखाती है और वह समाज की बनायी पितृसत्तात्मक मर्यादाओं के ख़िलाफ़ विद्रोह करने के लिए स्वयं स्त्री का ही आह्वान करती है। निर्देशक राजकुमार सन्तोषी ने भारतीय समाज के अलग-अलग वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली चार स्त्री पात्रों की कहानियों को मिलाकर दिखाया है कि चाहे अमेरिका में रहने वाली सम्भ्रान्त वर्ग से आने वाली वैदेही हो, चाहे मध्यवर्ग की शिक्षित मैथिली हो, चाहे नाट्य कलाकार जानकी हो या फिर गाँव में स्थानीय दाई का काम करने वाली निम्न वर्ग और जाति की रामदुलारी हो, किसी भी स्त्री की अस्मिता और सम्मान सुरक्षित नहीं है। घरेलू हिंसा, परस्त्री गमन, पति की उपेक्षा, दहेज की समस्या, चरित्र हनन, बलात्कार, सामन्ती मर्यादा के नाम पर हत्या आदि विभिन्न मुद्दे फ़िल्म में उठाये गये हैं। चारों प्रमुख स्त्री पात्रों के नाम रामायण की सीता के पर्यायवाची होना अपने-आप में स्त्री की त्रासदी का व्यंजक बन गया है। जानकी हरिपुर में नाट्य कलाकार है। नाटक कम्पनी रंगमहल का बूढ़ा मालिक पुरुषोत्तम जानकी की इच्छा के विरुद्ध ज़बर्दस्ती उससे विवाह करना चाहता है जबकि उसके घर में पहले से एक पत्नी है। पुरुषोत्तम जानकी के प्रेमी और नाटक में राम की भूमिका करने वाले मनीष के मन में जानकी के चरित्र को लेकर शक पैदा कर देता है। फ़िल्म में जानकी रामलीलानुमा नाटक के मंचन के दौरान सीता के रूप में अग्नि-परीक्षा देने से इनकार कर देती है। रामलीला की परम्परागत कथा में सीता की अग्नि-परीक्षा सम्पूर्ण स्त्री जाति का अपमान है। जानकी रामायण की

सीता और अपने चरित्र पर उँगुली उठाने वाले राम और मनीष दोनों से सवाल करती है कि हमेशा स्त्री के चरित्र पर ही क्यों शक किया जाता है। जानकी के लिए, सीता के लिए रावण और राम दोनों बराबर हैं क्योंकि एक ने अपनी मर्दानगी के लिए अबला स्त्री का अपहरण किया और दूसरे ने अपने पराक्रम और वंश की प्रतिष्ठा के लिए पहले का वध किया। स्त्री के मान-सम्मान और अस्मिता की किसी को चिन्ता नहीं है। नाट्यगृह के दर्शक और समाज में धर्म के ठेकेदार जानकी द्वारा सीता के पक्ष में उठाये गये सवालों को सहन नहीं कर पाते। अतः जानकी को पागल घोषित कर दिया जाता है। विवाह पूर्व गर्भवती होने से उसे कलंकिनी, दुष्टा कहकर मारपीट की जाती है जिससे उसका गर्भ गिर जाता है। जानकी के इस विवाह पूर्व गर्भ और शराब-सिगरेट सेवन को आधार बनाकर उसे कुलटा तक कह दिया जाता है। इस प्रकार 'लज्जा' के इस रामलीला प्रसंग में परम्परागत रामकथा में बदलाव करते हुए स्त्री के चरित्र पर कीचड़ उछालने वाले सामन्ती मानसिकता के राम, मनीष जैसे पुरुषों पर सवाल उठाया गया है।

राकेश ओमप्रकाश मेहरा द्वारा निर्देशित 'दिल्ली 6' (2009) में चाँदनी चौक वाली पुरानी दिल्ली की गंगा-जमुनी संस्कृति को दिखाया गया है कि कैसे यहाँ हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के लोग अपने धार्मिक भेदभाव भूलकर रहते आये हैं, कैसे यहाँ धर्म और आस्था के साथ आधुनिक संस्कृति की खिचड़ी विकसित हो रही है। पूरी फ़िल्म में पुरानी दिल्ली में होने वाली रामलीला के प्रसंग गुँथे हुए हैं और साथ में हैं तथाकथित काले बन्दर के आतंक की अफ़वाहें। रामलीला धर्म और जातिवाद की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर विकसित हुई लोक संस्कृति का प्रतीक है किन्तु इसी रामलीला के एक पात्र हनुमान और उनके साथी अन्य वानरों की भटकती आत्माओं से इस काले बन्दर के सूत्र जोड़ दिये जाते हैं। एक तान्त्रिक शनि बाबा मुहल्ले के भाईचारे को बिगाड़ने के लिए मन्दिर-मस्जिद का मुद्दा उठा देता है। देखते-ही-देखते बन्दर को हिन्दू और मुस्लिम सिद्ध करने की साम्प्रदायिक राजनीति शुरू हो जाती है, दंगा भड़क जाता है। फ़िल्म का नायक रोशन मुहल्ले में पुनः शान्ति और सौहार्द लाने के लिए काला बन्दर होने का झूठा कलंक तक झेल लेता है। अन्ततः लोगों को अपनी भूल का अहसास हो जाता है कि काला बन्दर सिर्फ़ अपने अन्दर का शैतान है।

रामलीला की छाया शैली से फ़िल्म का आरम्भ होता है। आगे अपनी मरणासन्न दादी माँ अन्नपूर्णा की अन्तिम इच्छा की ख़ातिर रोशन अमेरिका से दिल्ली वापस आता है, तो पुरानी दिल्ली की स्थानीय संस्कृति की प्रतीक चिन्ह रामलीला के साथ उसकी मुठभेड़ बारम्बार होती है और रामलीला के कई पहलू फ़िल्म में क्रमशः उभरते हैं। रामलीला जो मूलतः एक सांस्कृतिक-सामाजिक उत्सव है, उसमें आजकल राजनीति कैसे दखल करने लगी है, वह फ़िल्म में दिखाया गया है। रोशन अपनी दादी माँ के साथ रामलीला देखने जाता है। अभी सीताहरण का प्रसंग मंचित हो ही रहा था कि बीच में ही उसे रोककर रामलीला कमेटी द्वारा स्थानीय एम.एल.ए. साध्वी सुश्री गायत्री देवी को राम द्वारा मालार्पण कराया जाता है। शिव जी द्वारा उनके सम्मान में स्वागत नृत्य की प्रस्तुति भी होती है। आगे चलकर मंच से ग़ायब हो गये हनुमान की खोज-ख़बर में मौलिक संवाद ही रच लिया जाता है—'कहाँ गये हनुमान'। वानर सेना के मुखौटों के बीच हनुमान को खोजता मन्दबुद्धि गोबर एक मुखौटे को भ्रमवश काला बन्दर समझकर डर जाता है जिससे रामलीला में काले बन्दर के आतंक की अफ़वाह से अफरातफरी मच जाती है। पुलिस द्वारा किस प्रकार रामलीला के कलाकारों का अपमान किया जाता है, वह भी फ़िल्म में है। स्थानीय पुलिस का दारोगा ठाकुर रणविजय गोबर से वानर सेना के योद्धाओं की पूँछे खिंचवाकर असली काले बन्दर की छानबीन करता है। रामलीला के शबरी प्रसंग द्वारा

भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने का अच्छा प्रयास निर्देशक ने किया है। फ़िल्म में मैला उठाने वाली अछूत भंगिन जलेबी का स्पर्श हो जाने पर रोशन की दादी उस पर बहुत नाराज़ होती हैं और उसके हाथों की छूत मिटाने के लिए उसके हाथों को मिट्टी से रगड़-रगड़कर धुलवाती हैं। जलेबी अछूत है इसलिए गोबर और दादी माँ रोशन से नहा लेने की ज़िद भी करते हैं किन्तु रोशन का जाति-पाँति में विश्वास नहीं है। इस प्रसंग के तुरन्त बाद रामलीला में भगवान राम को दलित शबरी के झूठे बेर प्रेम के साथ खाते दिखाया गया है। रोशन अपनी दादी माँ और गोबर को प्रश्नात्मक निगाह से देखता है किन्तु उनके पास रामलीला के इस जातीय समानता वाले आयाम का कोई जवाब नहीं है।

रामलीला का आयोजन किसी व्यक्ति, परिवार या जाति विशेष का आयोजन नहीं होता। यह पूरे समाज का सामूहिक उत्सव है अतः सारा समाज इसमें हिस्सेदारी करता है। इसके अपने आर्थिक-सांस्कृतिक पहलू हैं। जहाँ रामलीला के अवसर पर लगने वाले मेलों में लोगों का मनोरंजन होता है, वहीं दुकानदारों का भी रोज़गार चलता है। दिल्ली की रामलीला का चश्मदीद गवाह बना एक विदेशी पर्यवेक्षक लिखता है कि—''दोपहर से ही एक विशाल बहुरंगी भीड़ रामलीला मैदान में इकट्ठी हो रही थी। ज्यों ही वह खुले मैदान की ओर उमड़ती, त्यों ही छुट्टी का ख़ुशनुमा माहौल जाग उठता। और खाद्य पदार्थों, सुनहरी पुडिंगों, मिठाइयों, पेय पदार्थों और पान-सुपारी वाले तम्बाकू इत्यादि के विक्रेताओं ने जमकर बिकवाली की। सभी वर्गों के हिन्दू-मुसलमान एक साथ थे। एक विशाल चक्राकार झूला स्त्री-पुरुष ग्राहकों की उत्सुकता के कारण निरन्तर गतिवान था। और हज़ारों प्रेक्षक पुरानी दिल्ली की दीवारों से इस दृश्य के गवाह बनते थे।''[11] बच्चों का विशेष उत्साह इस पूरे कार्यक्रम में साफ़ झलकता है। फ़िल्म में भी रामलीला के पुतलों की तैयारी में बच्चों को श्रम करते दिखाया गया है। आज की आधुनिक रामलीला का मूल स्वरूप तो वही है किन्तु उसमें तकनीक का काफ़ी प्रयोग किया जाने लगा है। टेलीविज़न और सिनेमा के दर्शकों को आकर्षित करने के लिए रामलीला में भी सिनेमाई तकनीकों का इस्तेमाल होने लगा है। फ़िल्म में रामलीला मंचन के दौरान हनुमान को उड़ते दिखाया जाता है। लक्ष्मण रेखा से अग्नि का प्रज्वलन भी दिखाया जाता है। 'लज्जा' फ़िल्म में सीता की अग्नि-परीक्षा में भी तकनीक का चमत्कार दिखाया गया है। रामलीला में राम-रावण के युद्ध की नाटकीय प्रस्तुति के समानान्तर ही फ़िल्म में पुरानी दिल्ली के हिन्दू-मुस्लिम बाशिन्दों को परस्पर धार्मिक नारे लगाते और झगड़े के लिए तैयार दिखाया गया है किन्तु शीघ्र ही दारोगा के समझाने पर धर्मान्ध भीड़ अपना मनमुटाव भूलकर तथाकथित काले बन्दर के पीछे पड़ जाती है। अन्त में रावण दहन के साथ काले बन्दर के मुखौटे का भी दहन दिखाया जाता है जो काले बन्दर को रावण के सदृश्य बुराई का प्रतीक व्यंजित कर देता है। इस प्रकार इस फ़िल्म में रामलीला के प्रसंग एक ओर जहाँ अपना सांस्कृतिक मूल्य रखते हैं, वहीं समसामयिक समस्याओं के हल भी रामलीला में ही खोजने का मौलिक प्रयास किया गया है।

राकेश ओमप्रकाश मेहरा की एक अन्य फ़िल्म 'रंग दे बसन्ती' (2006) में भी रामलीला का एक प्रसंग है। यहाँ भारतीय संस्कृति के एक तथ्य के साथ-साथ इस प्रसंग का प्रतीकात्मक अर्थ भी है। फ़िल्म में आज़ाद अपने क्रान्तिकारी दल के साथ गद्दारी करने वाले पुलिस के मुख़बिर बने बनवारी को रामलीला आयोजन में रावण दहन के दौरान गोली से उड़ाने का प्रयास करता है। बनवारी के पार्श्व में खड़ा रावण का पुतला गद्दार बनवारी के ऊपर बुराई के प्रतीक रावण का आरोपण कर रहा है। जहाँ रावण के जलते हुए सिर का गिरना आज़ाद को अंग्रेज़ सिपाहियों के चंगुल से बचकर

भागने का मौक़ा मुहैया करा देता है, वहीं यह विदेशी साम्राज्यवाद की ताक़त के लिए अपमान का विषय बन जाता है। रामलीला में राम-रावण के मध्य युद्ध का दृश्य भारत और विदेशी साम्राज्यवाद के बीच संघर्ष का सूचक है।

रोहन सिप्पी द्वारा निर्देशित 'नौटंकी साला' (2012) में रामलीला को आधुनिक साज-सज्जा के साथ नौटंकी की शैली में प्रदर्शित किया गया है। फ़िल्म का नायक आर.पी. पेशे से कलाकार और निर्देशक है। वह अपने नाटक में रामलीला का आधुनिक तकनीक और परिवेश में सृजन करता है। वह स्वयं रावण की भूमिका निभाता है। इस रामलीला का राम सुपरहीरो कृष सदृश्य है और रावण के अन्य योद्धा कॉमिक फ़िल्मों के खल पात्रों जैसे लगते हैं। वास्तविक ज़िन्दगी में सीता बनने वाली कलाकार राम बनने वाले कलाकार की जगह रावण बनने वाले कलाकार को पसन्द करती है। नृत्य सीक्वेंस में रावण की छाया और धनुष यज्ञ में शिव धनुष का इस्तेमाल हुआ है। राम की भूमिका करने वाला नया कलाकार मन्दर अपनी प्रेमिका के छोड़ देने से ज़िन्दगी से हताश हो चुका है, उससे ज़बर्दस्ती अभिनय कराया जाता है। वह न तो संवाद याद रख पाता है और न मारीच को मारने के लिए तीर ही चला पाता है। वह अपनी निराशा में डूबा हुआ राम के पात्र के साथ बिल्कुल भी न्याय नहीं कर पाता। वास्तविक जीवन में राम और रावण की ये भूमिकाएँ करने वाले पात्र अर्थात् मन्दर और आर.पी. मित्र हैं। आर.पी. मन्दर को निराशा से उबारने के लिए उसके घटिया अभिनय पर भी झूठी वाहवाही करने वाले, तालियाँ बजाने वाले, हस्ताक्षर लेने वाले दर्शक ख़रीद लेता है। रामकथा में रावण एक खल पात्र है किन्तु फ़िल्म की रामलीला का रावण वास्तविक ज़िन्दगी में मुसीबत में फँसे हर किसी की सहायता करने वाला सहृदय व्यक्ति है। रामकथा आधारित में सीता का मिलन राम से होता है किन्तु फ़िल्म की रामलीला में सीता रावण को ही मिलती है। इस प्रकार इस फ़िल्म में रामलीला की पूरी कथा ही दर्शकों के साथ नौटंकी करती नज़र आती है और इसी नौटंकी के माध्यम से हास्य का सृजन हुआ है।

हिन्दी सिनेमा में 21वीं सदी में इधर कुछ समय से रामलीला के पात्रों और कथ्य को आधार बनाकर ऐनिमेशन कार्टून फ़िल्में भी बनने लगी हैं, इन फ़िल्मों का दर्शक वर्ग मुख्यतः बच्चे होते हैं। संस्कृति किस ढंग से तकनीक के साथ क़दमताल मिलाकर चलती है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ये फ़िल्में। आज की नयी पीढ़ी इनके माध्यम से ही सही, अपनी जड़ों से जुड़ी हुई तो है। रामकथा पर आधारित कुछ प्रमुख ऐनिमेशन कार्टून फ़िल्में हैं—युगो साको और राम मोहन निर्देशित 'रामायण : दि लेजेंड ऑफ़ प्रिंस राम' (1992), मिलिन्द उकेय निर्देशित 'हनुमान' (2005), अनुराग कश्यप निर्देशित रिटर्न ऑफ़ हनुमान (2007), भाविक ठकोरे निर्देशित 'दशावतार' (2008) और 2010 में प्रदर्शित फ़िल्म 'लव कुश : दि वारिअर ट्विन्स'। इस प्रकार की फ़िल्मों में रामलीला की फॉर्म आपको कहीं नज़र नहीं आती, सिर्फ़ कथ्य का इस्तेमाल मिलता है। वास्तव में इन फ़िल्मों में रामायण के पात्र भारतीय बच्चों के लिए किसी सुपर हीरो से कम चित्रित नहीं किये जाते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी सिनेमा और रामलीला के मध्य आरम्भ से ही घनिष्ठ रिश्ता रहा है और इन दोनों के सम्बन्ध समय के साथ निरन्तर परिवर्तित विकसित होते रहे हैं। आरम्भ में हिन्दी सिनेमा रामलीला का पूरी तरह ऋणी था और रिश्ते एकतरफ़ा थे। वह रामलीला के कथ्य और शैली को ज्यों-का-त्यों डालता था। आगे चलकर स्वतन्त्रता उपरान्त रामकथा के आदर्श और कथानक पारिवारिक-सामाजिक फ़िल्मों में अप्रत्यक्ष रूप से आने लगे। समकालीन हिन्दी सिनेमा में रामलीला के विविध प्रसंग पुनः आ रहे हैं किन्तु अब फ़िल्में स्वयं रामलीला को भी प्रभावित कर

रही हैं विशेषतः तकनीकी क्षेत्र में। सिनेमा के पात्रों की छाया रामलीला के पात्रों पर भी पड़ने लगी है। आज की फ़िल्मों में कई बार निर्देशक देश और समाज की ज्वलन्त समस्याओं को रामलीला के विविध प्रसंगों द्वारा उठाने का प्रयास करता है। कहानी के अनुरूप हास्य-व्यंग्य के सृजन हेतु भी रामलीला का इस्तेमाल होता है। टेलीविज़न के पर्दे पर भी रामलीला धार्मिक धारावाहिकों के रूप में दर्शकों के सामने दिखाई जा रही है। किन्तु टेलीविज़न की रामलीला में यान्त्रिक प्रस्तुति मात्र होती है। उसके राजनीतिक और आर्थिक आयाम भी होते हैं।

सन्दर्भ

1. सुरेश अवस्थी, भारत के परम्परागत रंगमंच का दृश्यचित्रण, दि ड्रामा रिव्यू, टीडीआर, जिल्द 18, अंक 4, देशज रंगमंच अंक (दिसम्बर 1974), पृ. 36
2. फर्लेय रिचमंड, परम्परागत भारतीय रंगमंच के कुछ धार्मिक आयाम, दि ड्रामा रिव्यू, टीडीआर, जिल्द 15, अंक 2, एशिया में रंगमंच (बसन्त 1971), पृ. 123
3. रुस्टम भरूचा, संस्कृतियों की एक मुठभेड़ : भारतीय रंगमंच की कुछ पाश्चात्य व्याख्याएँ, इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, त्रैमासिक, जिल्द 11, अंक 3 (सितम्बर 1984), पृ. 298
4. नुक्कड़ जनम संवाद (द्विभाषी त्रैमासिक पत्रिका), दिल्ली, खण्ड II और III, अंक 4-8, पृ. 232
5. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल, प्रकाशक राजकमल : प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पेपरबैक्स नौवाँ संस्करण 2007, दूसरी आवृत्ति 2010, दिल्ली, पृ. 92
6. निर्मला जैन और कुसुम बांठिया, पाश्चात्य साहित्य चिन्तन, प्रकाशक राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, संस्करण 1990, आवृत्ति 1998, पृ. 75
7. नुक्कड़ जनम संवाद, (द्विभाषी त्रैमासिक पत्रिका), दिल्ली, खंड II और III, अंक 4-8, पृ. 289
8. डॉ. महेन्द्र मित्तल, भारतीय चलचित्र, प्रकाशक : अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975, पृ. 88
9. नन्दिनी गूप्तु, आरम्भिक बीसवीं सदी के उत्तर प्रदेश में शहरी गरीब और सैन्य हिन्दुत्व, मॉर्डन एशियन स्टडीज़, जिल्द 31, अंक 4 (अक्टूबर 1997), पृ. 915
10. ग्रेगोरी डी. बूथ , ट्रेडिशन एंड नैरेशन इन हिन्दी सिनेमा, पृ. 177
11. मिस्वा टिटिएव, दिल्ली में एक दशहरा समारोह, अमेरिकन एंथ्रोपोलॉजिस्ट, नवीन शृंखला, जिल्द 48, अंक 4, भाग-I, (अक्टूबर-दिसम्बर 1946), पृ. 677

प्रवासी साहित्यकार राजेन्द्र अरुण के ललित साहित्य में रामकथा का व्यावहारिक पक्ष

डॉ. अनुपमा तिवारी/प्रीति प्रकाश

युग-विधायिनी शक्तियों से पूर्ण परिचित होना साहित्यकार की महानता की प्रथम शर्त है। किसी भी रचना का महत्त्व उसमें सन्निहित सन्देश के कारण होता है, न कि उसकी सामग्री विशिष्टता के बल पर। देश-विदेश के सभी पढ़े-लिखे लोग तुलसी साहित्य से परिचित होने के कारण साहित्यकार के रूप में तुलसी की महानता स्वीकार करते हैं। कवि के महान शुभ संकल्प का परिणाम तुलसी द्वारा रचित 'रामचरितमानस' की कीर्ति है। प्रागैतिहासिक युग से आधुनिक युग तक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के शील एवं सौन्दर्य से मण्डित, अलौकिक व्यक्तित्व के विविध रूपों ने जनमानस को आकृष्ट किया है। रामकथा का अनुरागमयी भक्ति भावना, सामाजिक तथा व्यावहारिक पक्ष की दृष्टि से आख्यान प्रगस्त संहिता, राघवीय संहिता, रामोत्तर तापनीय उपनिषद् रामरहस्योपनिषद् आदि ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

वैदिक युग से लेकर पौराणिक युग तक जैसे-जैसे ज्ञान एवं कर्म की अपेक्षा भक्ति का विकास होता गया, वैसे-वैसे विष्णु के अवतार के रूप में राम की प्रतिष्ठा दृढ़ होती चली गयी। रामानुज, रामानन्द आदि आचार्यों ने रामकथा के दर्शन एवं भक्ति को सहज ग्राह्य एवं मनोवैज्ञानिक भावभूमि प्रदान की है। रामकथा में भक्ति का मूलाधार लोक-धर्मरक्षक और लोकरंजक स्वरूप है। इसमें शक्ति का ऐसा बीज निहित है, जो किसी भी जाति को उठाकर खड़ा कर सकता है। तुलसीदास ने मुरझाते हुए हिन्दू जीवन को भक्ति से सिंचित करके हरा-भरा बना दिया। भक्ति का यह प्रभाव अब चतुर्दिक प्रसारित है। विदेशों में भी रामकथा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। मॉरिशस में भारतीय मज़दूरों के आगमन के साथ लगभग 160 वर्ष पूर्व रामकथा का प्रादुर्भाव हुआ, जो मॉरिशस की संस्कृति में इतनी रच बस गयी कि ऐसा लगता है मानो यह भारत भूमि ही हो। सुखद यह है कि यह रामकथा बलात् किसी पर थोपी नहीं गयी है बल्कि सबने इसे सहजता से स्वीकार एवं आत्मसात् किया है। मॉरिशस की धरती पर रामकथा की परम्परा की अजस्र धारा को अत्यधिक प्रवहमान बनाने का श्रेय और प्रेय राजेन्द्र अरुण को जाता है।

"मॉरिशस में पं. राजेन्द्र अरुण 'रामायण गुरु' के नाम से जाने जाते हैं। उनके अथक प्रयत्न से सन् 2001 में मॉरिशस की संसद ने सर्वसम्मति से एक अधिनियम पारित करके रामायण सेंटर की स्थापना की। यह सेंटर विश्व की प्रथम संस्था है, जिसे रामायण के आदर्शों के प्रचार के लिए किसी देश की संसद ने स्थापित किया है। पं. राजेन्द्र अरुण इसके अध्यक्ष हैं। सन् 1983 से

पं. अरुण रामायण के कार्य में जुट गये। आप नूतन ललित शैली में रामायण के व्यावहारिक आदर्शों को जन-जन तक पहुँचाने का संकल्प लिए हैं।"[1] अल्प एवं मृदुभाषी अरुण जी ने मानवता की भूमि भारत की गरिमा को कुछ इस प्रकार दर्शाया है—"सच है सारा संसार परमात्मा का घर है लेकिन भारत उसका ड्राइंग रूम है। परमात्मा जब किसी से मिलना चाहता है तो अपने ड्राइंग रूम भारत में अवतार लेता है।"[2] मूल्यों का संवाहक भारत देश प्रकारान्तर से ही सभ्य देशों में अग्रसर है। चिन्तन तथा कलात्मक सृजन की वे क्रियाएँ, जो जीवन को समृद्ध बनाती हैं—संस्कृति हैं। संस्कृति का सम्बन्ध किसी राष्ट्र और जाति की उस भावनात्मक सुन्दरता तथा आन्तरिक ऊर्जा से रहता है जो अपनी गुणवत्ता की सूक्ष्म डोर में अनेक भेद रहते हुए भी सारे राष्ट्र को आन्तरिक एकता के रूप में बाँधे रखती है। भारत के समन्वयवाद की चेतना एवं सहिष्णुता की भावना से ईश भी प्रभावित होकर अवतार लेते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रचार और प्रसार का सर्वाधिक श्रेय उन साहसी एवं उत्साही भारतवासियों को है, जिन्होंने विदेश गमन कर विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति और सभ्यता को स्थायी रूप में स्थापित किया है। राजेन्द्र अरुण इसके सजग उदाहरण हैं। अब तक आप की सात पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, और इन सभी पुस्तकों में रामचरितमानस के आदर्श एवं पात्रों को आधार बनाया गया है। पहली पुस्तक 'हरिकथा अनन्ता' पुस्तक में राजेन्द्र अरुण ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के गुणों पर प्रकाश डाला है। "मर्यादा का अर्थ मानवीय भावनाओं को दबाना नहीं अपितु उन्हें एक सुन्दर रूप देना है। यही भाव राम ने अपने हर व्यवहार में प्रकट किया है।"[3] रामकथा अथवा रामायण महाकाव्य को भारत में राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त है और उसके नायक राम सम्पूर्ण देशवासियों के लिए सर्वोच्च आदर्श पुरुष हैं। हर स्थिति में नैतिकतापूर्ण व्यवहार करना और उपयुक्त निर्णय लेना ही मर्यादा है। अरुण जी ने स्पष्ट किया कि मानवीय भावनाओं को बिना रौंदे उन्हें एक सुन्दर साकार रूप देना ही मर्यादा है वर्तमान परिप्रेक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि—शासक वर्ग और कानून व्यवस्था लागू करने वाले लोगों को नियम-कानून लागू करने में ऊँच-नीच का भेदभाव न करते हुए समान रूप से नैतिकतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। समाज में बढ़ता हुआ अपराध, भ्रष्टाचार और अव्यवस्था अपनी विषाक्त जड़ें फैलाए हुए है क्योंकि शासक वर्ग अपनी बनायी मर्यादाओं का प्रतिपालन उस प्रकार नहीं कर रहा, जिसका आधार राम ने तैयार किया था। राम ने अपने जीवन की विषम परिस्थिति में मर्यादानुसार न्यायसंगत निर्णय लिए हैं। अतः आवश्यकता है कि हम राम का अनुकरण करें क्योंकि, "ब्रह्म राम और राजा राम दोनों पर हमारी व्यापक दृष्टि होनी चाहिए। लोक और परलोक दोनों में राम के पदचिह्नों पर चलना सहायक हो सकता है।"[4] अनन्त शक्ति के साथ धीरता, गम्भीरता, और कोमलता राम का प्रधान लक्षण है, यही उनका रामत्व है। ब्रह्म राम या दशरथ सुत राम दोनों ही रूपों में राम समाज के लिए आदर्श और अनुकरणीय हैं क्योंकि अपनी शक्ति की स्वानुभूति ही राम के उस उत्साह का मूल है जिससे बड़े- बड़े दुस्साध्य कार्य सम्पन्न हुए हैं। शक्ति की यही स्वानुभूति यदि मानव में विकसित हो जाये तो पराजय उसके सन्निकट भटकने भी न पाये। राम की महिमा के बारे में राजेन्द्र अरुण ने लिखा कि, "यदि राम ब्रह्म हैं तो उन्हें मेरा सादर नमस्कार। यदि ब्रह्म नहीं हैं तो और भी वन्दनीय हैं क्योंकि मनुष्य के जीवन को उन्होंने अपने दैवी जीवन से सार्थकता प्रदान की।"[5] मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने में शील का महती योगदान है। शील हृदय की वह स्थायी स्थिति है जो सदाचार का पल्लवन करती है शील के असामान्य उत्कर्ष से तथा प्रेम और अध्यात्म के आलम्बन से राम का अन्तर्मन सिंचित है। यदि राम ब्रह्म रूप हैं तो उन्हें कोटिशः प्रणाम और यदि ब्रह्म रूप नहीं हैं तो और अधिक

नतमस्तक होना चाहिए क्योंकि मानव के रूप में समाज की केन्द्रीय भावना, जीव की संवेदना को आत्मसात करते हुए पारिवारिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में राम आदर्शवादी एवं भावोन्मुखता के उद्बोधक हैं। आदर्श पुत्र, भाई और पति के रूप में वह समाज के प्रणेता हैं—"पिता द्वारा दिये गये दुख को सहते हुए कौन पुत्र पिता के प्रति इतना विनीत रह सकेगा। यह राम के वश की बात थी। इसका एक अंश भी यदि हम अपने जीवन में उतार सकें तो टूटते परिवारों में प्रेम की गंगा प्रवाहित हो जाये।"[6] राम का शील और औदार्य उच्च कोटि का होने के कारण उनके व्यक्तित्व में महत्त्व का संकेत मिलता है। इसमें राम की मृदुलता, कोमलता, मधुरता तथा सहृदयता के दर्शन होते हैं। अपने नियमित और सरल व्यवहार से वे प्रेम के साक्षात अवतार लगते हैं। राम में शक्ति, शील और सौन्दर्य तीनों गुण विद्यमान हैं वे सौन्दर्य की अद्भुत राशि हैं और 'कोटि मनोज लजावन हारे' हैं। उनके पास जो शक्ति है वह लोकमंगल की रक्षा के लिए है। वे शील स्वभाव से समस्त संसार को सदाचार के गुणों की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादाबद्ध हैं। अतः उनका लोकरक्षक रूप प्रधान है। 'जग जननी जानकी' पुस्तक में राजेन्द्र अरुण ने रामचरितमानस में लिखी गयी चौपाइयों के आधार पर सीता के चरित्र का वर्णन किया गया है। सीता तत्त्वतः आद्य शक्ति, मूल प्रकृति तथा योगमाया स्वरूपा हैं, अनन्त शक्तियों की उत्पादिका हैं। त्रिगुणमयी माया की अधिष्ठात्री सीता हैं। "भारतीय संस्कृति में नारी का रूप सदैव वन्दनीय रहा है। उसे विश्वविधायिनी, विश्वरक्षिणी कहकर शक्ति साधकों ने महिमा के सुमन समर्पित किये हैं। यह शक्ति कितने देश और महादेश बनाती-बिगाड़ती है, कितने ब्रह्माण्डों का सृजन-संहार करती है? यही मूल प्रकृतिरूपा होने से आदिशक्ति सीता कही जाती हैं।"[7] सीता भारतीय स्त्रियों के लिए श्रद्धेय हैं। स्वयंवर से लेकर वनवास और उसके बाद माँ धरती में विलीन होना, ये सभी महिला के साथ-साथ, समाज को भी परिवार, संस्कार तथा धर्म रूपी बन्धन में बाँधता है। "सीता माता का चरित्र तो अपने-आप में बड़ा पावन और आकर्षक है। हमारी प्रकृति है कि हम पावन को ही पाना चाहते हैं।"[8] सीता का चरित्र बहिर्मुखी और भावुक है। मानव स्वभावतः गुणों के प्रति आकर्षित होता है, अतः सीता के गुणों को अपनाकर स्त्री अपना जीवन सार्थक बना सकती है।

भाव से परिपूर्ण, विश्व का भरण-पोषण करने वाले भरत ने भ्रातृत्व प्रेम की ऐसी मर्यादाएँ स्थापित की हैं जो आज के सन्दर्भ में अति प्रासंगिक है। राजेन्द्र अरुण ने 'भरत गुन गाथा' में भरत को विनम्रता की मूर्ति, सरल एवं सहजता के प्रतिरूप, सद्गुण सम्पन्न, संयमी, सदाचारी, धीर, वीर, गम्भीर तथा त्यागी के रूप में चित्रित किया है। "राम ने अपने उदात्त प्रेम से मानवीय व्यवहार की गरिमा का जो बीज बोया था, भरत के त्याग रूपी जल के सिंचन के बिना वह कभी पल्लवित और पुष्पित नहीं हो पाता।"[9] महापुरुषों को अपने व्यक्तित्व की छाप जनमानस तक पहुँचाने के लिए त्याग, तपस्या और दुर्लभ पथ को पार करके सरल, सहज एवं उत्कृष्टता की सीमा तक पहुँचना पड़ता है। तभी जाकर वह व्यक्तित्व हितैषी, अनुकरणीय एवं सार्थक बनता है। राम ने अपनी दैवी शक्तियों का प्रयोग न करते हुए, साधारण मानव की भाँति सभी असाध्य कार्य पूर्ण किये, साथ ही प्रेम, सदाचार और मानवता का बीजारोपण किया, परन्तु सच्चे प्रेम की पराकाष्ठा त्याग पर ही निर्भर है। परित्याग के बिना प्रेम निष्फल एवं निष्प्राण होता है। यही त्याग भरत के चरित्र को उच्च से उच्चतम बनाने में सहायक है। "भरत ने अपनी आत्मग्लानि के आँसुओं से कौशल्या के चरणों को धोया। राम की सन्तप्त जननी को भरत से अधिक कौन सँभाल सकता था। इसलिए भरत को पाकर वे राममय हो उठीं।"[10] भरत व्यक्तित्व नहीं विचार हैं। राम से अत्यधिक प्रेम का उद्गम उनकी

चारित्रिक निष्ठा में है। रूप, रंग और आकृति में भरत राम के समतुल्य हैं। अपने अपराध-बोध से निवृत्त होने के लिए भरत सर्वप्रथम कौशल्या के दर्शन से अभिभूत होते हैं, और निश्छल अश्रुधाराओं से माता का पद प्रक्षालन करके सुख पाते हैं। इन आदर्शों के माध्यम से ही अरुण जी ने भरत के चरित्र को गरिमा प्रदान की है।

भारत से दूर मॉरिशस में राजेन्द्र अरुण ने रामचरितमानस के प्रमुख तथ्यों को आधार बनाकर अपने साहित्य की सर्जना लोकमंगल के हित में की है। जाति व्यवस्था के बारे में लेखक ने बड़े ही तीक्ष्ण रूप से लिखा कि–"पाँव मनुष्य के पात्र के प्रतीक हैं। बिना पाँव के मनुष्य लक्ष्य तक जय यात्रा नहीं कर सकता। अतः पाँवों की बड़ी महिमा है।"[11] भारतीय वर्णव्यवस्था में शूद्रों को ईश के चरणों से उत्पन्न माना जाता है। समाज में निम्नवर्ग सदैव से तिरस्कृत एवं उपेक्षित रहा है। अरुण जी ने इनके सम्मान में लिखा कि जिस तरह बिना पग के दो क़दम चलना भी सम्भव नहीं है उसी प्रकार यदि निम्नवर्ग को उचित सम्मान और स्नेह से वंचित रखा जाये तो स्वस्थ समाज की परिकल्पना सम्भव नहीं है, क्योंकि मानव की मानवता का आकलन जाति के आधार पर नहीं बल्कि कर्म के आधार पर करना चाहिए। "जो पुरुषार्थी होते हैं, वे कल्पनाओं तथा सपनों को यथार्थ में बदल देते हैं और जो आलसी तथा प्रमादी होते हैं वे यथार्थ को सपनों तथा कल्पनाओं में पाकर सन्तोष कर लेते हैं।"[12] विवेकशील प्राणी का लक्ष्य उच्चकोटि का होता है। वे अपने पुरुषार्थ द्वारा ही भाग्यवाद का खण्डन और कर्मवाद का मण्डन करते हैं। जो अवसर का सही इस्तेमाल करना जानते हैं, सफलता उनके क़दम चूमती है। और जो लोग खड़े रहकर चुपचाप आमन्त्रण की प्रतीक्षा करते हैं वे सफलता की छाया भी नहीं छू पाते।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि राजेन्द्र अरुण हिन्दुस्तान की धरती से हज़ारों कोस दूर विदेश में भी भारतीय संस्कृति, रामकथा के आदर्श को गौरवान्वित कर रहे हैं। राम केवल भारतीय संस्कृति के आराध्य देव ही नहीं, मर्यादा पुरुषोत्तम भी हैं। एक आदर्श व्यक्ति के चरित्र तथा गुणों में जो कुछ होना चाहिए, वह सब राम के व्यक्तित्व में है। राम से जनजीवन, लोक संस्कृति, लोक मान्यताएँ तथा धार्मिक संस्कार सब मिलकर राममय हो उठता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. https://www.prabhatbooks.com
2. राजेन्द्र अरुण, हरिकथा अनन्ता
3. राजेन्द्र अरुण, जग जननी जानकी
4. राजेन्द्र अरुण, भरत गुन गाथा
5. राजेन्द्र अरुण, तजु संशय भजु राम
6. राम कुलकर्णी, मैथिलीशरण गुप्त के पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
7. कृपाशंकर शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास पर आगमों का प्रभाव

एशिया के विभिन्न देशों के साहित्य और जीवन में राम

डॉ. अंजुबाला

भगवान राम को वेदव्यास ने गीता में वीर पुरुष के रूप में जाना है, तुलसी ने उसी राम को अवतार रूप में, कबीर ने उसे परब्रह्म के रूप में और लोकमानस में वही राम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में जाने जाते हैं। श्रीराम वैदिक संस्कृति और सभ्यता के आदर्श प्रतीक हैं। राम के जीवन में वैदिक संस्कृति का साकार रूप देखने को मिलता है। मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत राम का जीवन सर्वोपरि जान पड़ता है। आज हज़ारों वर्षों से राम का पावन चरित्र लाखों लोगों को प्रेरणा और मार्गदर्शन दे रहा है। राम जीवन का मन्त्र हैं, राम सृष्टि की निरन्तरता का नाम हैं। राम एक छोटा-सा प्यारा शब्द है। जो सर्वदा कल्याणकारी शिव के हृदयाकाश में सदा विराजित है। राम भारतीय लोक जीवन के कण-कण में रमे हैं। श्रीराम हमारी आस्था और अस्मिता के सर्वोत्तम प्रतीक हैं। राम हिन्दुओं के आराध्य ईश हैं। दरअसल, राम भारतीय लोक जीवन में सर्वत्र एवं सर्वदा प्रवहमान महाऊर्जा का नाम हैं। श्रीराम धर्म के मूर्तिमान स्वरूप हैं। राम सत्य के आधार हैं और सत्य को सर्वस्व मानते हैं। धर्मप्राण भारतीय जीवन दृष्टि, महान चरित्र और मानवीय आदर्श सबसे अधिक राम के जीवन में प्रत्यक्ष देखने को मिलते हैं। वाल्मीकि ने विभिन्न स्थलों पर राम को धर्मज्ञः, धर्मात्मा, धर्मभूतांवरः आदि शब्दों से सम्बोधित किया है।

श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है क्योंकि राम में कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन हुआ नहीं मिलता। सम्पूर्ण भारतीय समाज में राम का आदर्श रूप उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम के सभी भागों में स्वीकार किया गया है। भारत की हर एक भाषा की अपनी रामकथाएँ हैं। इसके उपरान्त भारत के बाहर के देशों—फिलीपींस, थाईलैंड, लाओस, मंगोलिया, साइबेरिया, मलेशिया, बर्मा (म्यांमार), इंडोनेशिया, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, चीन, जापान, श्रीलंका, वियतनाम आदि में भी रामकथा प्रचलित है। बौद्ध, जैन और इस्लामी रामायण भी हैं। मैक्समूलर, जोन्स, कीथ, ग्रीफिथ, बारान्निकोव जैसे विद्वान राम के त्यागमय, सत्यनिष्ठ जीवन से आकर्षित थे। किसी भी काल्पनिक पात्र का प्रभाव अन्य देशों, अन्य धर्मों में हज़ारों वर्षों से ऐसे टिका रहना सम्भव नहीं। भारतीय मानस को तो राम कभी काल्पनिक लगे ही नहीं। वे घर-घर में ईष्ट की तरह पूजे जाते हैं। राम ने अपने युग में एकता का महान कार्य किया था। आर्य, निषाद, भील, वानर, राक्षस आदि भिन्न संस्कृतियों के बीच सुमेल साधने का काम राम ने किया। रावण की मृत्यु के बाद राम के मन में रावण के प्रति कोई द्वेष नहीं था।

राम शब्द में—'रा' शब्द परिपूर्णता का बोधक है और 'म' परमेश्वर वाचक है अर्थात् 'रमंति इति रामः' जो रोम-रोम में रहता है, जो समूचे ब्रह्माण्ड में रमण करता है वही राम है। भारतीय लोक जीवन में रामनाम की प्रभुसत्ता का विस्तार सहज देखा जा सकता है बच्चों के नाम में राम का

सर्वाधिक प्रयोग इस तथ्य का अकाट्य प्रमाण है। अभिवादन के आदान-प्रदान में 'राम-राम', 'जै रामजी की', 'जै सियाराम', 'जै राम' का उपयोग वास्तव में रामनाम के प्रति गहन लोकनिष्ठा और श्रद्धा के प्रकटीकरण का माध्यम शताब्दियों से बना हुआ है। भारत में तो किसान हल चलाने से पहले भी बैलों को कहता है—'ले राम का नाम और शुरू करे काम।'

लोक-जीवन में रामलीलाओं का युग-युगान्तरों से समावेश किया गया है। लोकप्रियता और व्यापकता की दृष्टि से रामलीला का हमारे जनजीवन में विशिष्ट स्थान है। इस रचना में एक समूचे समुदाय की धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। रामलीला में दर्शकों का जितना सहज एवं सम्पूर्ण सहयोग होता है उतना किसी और नाट्य में असम्भव-सा है। रामचरितमानस में रामलीला की ऐतिहासिकता के स्पष्ट संकेत हैं। उत्तर काण्ड में काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

"चरम देह द्विज के मैं पायी। सुर दुर्लभ पुराण श्रुति गायी।
खेलऊँ तहूँ बालकन्ह मीला। करऊँ सकल रघुनायक लीला।"

मनुष्य सांसारिक होते हुए भी रामनाम के सहारे इस संसार से पार पा सकता है—**'रामनाम कहि राम कहि राम राम कहि राम।** इंडोनेशिया में अधिकतर मुसलमानों का निवास होने पर भी उनकी संस्कृति पर रामायण की गहरी छाप है। रामकथा पर आधारित जावा की प्राचीनतम कृति 'रामायण काकावीन' जो कावी भाषा में है। यह जावा की प्राचीन शास्त्रीय भाषा है। 'काकावीन' का अर्थ 'महाकाव्य' है। योगीश्वर द्वारा रचित यह नौवीं शताब्दी की रचना है। 'रामायण काकावीन' का स्थान सर्वोपरि है। यह छब्बीस अध्यायों में विभक्त एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमें महाराज दशरथ को विश्वरंजन की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इस रचना का आरम्भ रामजन्म से होता है। कावी भाषा में कई महाकाव्यों का सृजन हुआ है—'उत्तर काण्ड', गद्य चरित रामायण अथवा कवि जानकी, बाली द्वीप व परवर्ती रचनाओं में 'सेरतकाण्ड', 'रामकेलिंग' और 'सेरी राम' का नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त ग्यारहवीं शताब्दी की रचना 'सुमनसांतक' में इंदुमती का जन्म, अज का विवाह और दशरथ की जन्मकथा का वर्णन हुआ है। चौदहवीं शताब्दी की रचना अर्जुन विजय की कथावस्तु का आधार अर्जुन सहस्रबाहु द्वारा रावण की पराजय है।

महाकवि रामकथा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—राम चरित्र जीवन की सम्पूर्णता का प्रतीक है। राम के महान आदर्श का अनुकरण जनजीवन में हो, इसी उद्देश्य से इस महाकाव्य की रचना की गयी है। यह कथा संसार की महानतम पवित्र कथाओं में एक है। रचना के अन्त में महाकवि योगीश्वर उत्तम विचार वाले सभी विद्वानों से क्षमायाचना करते हैं।

कम्पूचिया (कम्बोडिया) की रामायण ख्मेर लिपि में है। एस. कार्पेल्स द्वारा लिखित 'रामकेर्ति' के सोलह सर्गों (1-10 तथा 76-80) का प्रकाशन अलग-अलग पुस्तिकाओं में हुआ था। इसकी प्रत्येक पुस्तिका पर रामायण के किसी-न-किसी आख्यान का चित्र है। कम्पूचिया की रामायण को वहाँ के लोग 'रिआमकेर' के नाम से जानते हैं, किन्तु साहित्य में यह 'रामकेर्ति' के नाम से विख्यात है।

'रामकेर्ति' ख्मेर साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'ख्मेर' कम्पूचिया की भाषा का नाम है। 'रामकेर्ति' और 'वाल्मीकि रामायण' में अत्यधिक समानता है।

दक्षिण-पूर्व एशिया की रामकथाओं में सीता त्याग की घटना के साथ एक नया आयाम जुड़ गया है, अतुलय के आग्रह पर सीता द्वारा रावण का चित्र बनाना। अतुलय का उस चित्र में प्रवेश कर जाना। सीता द्वारा उस चित्र का मिट नहीं पाना और उसे पलंग के नीचे छिपा देना।

राम का पलंग पर लेटते ही तीव्र ज्वर से पीड़ित हो जाना। इस यथार्थ से अवगत होने पर राम लक्ष्मण से सीता को वन में ले जाकर उनका वध करने का आदेश देते हैं और मृत सीता का कलेजा लाने के लिए कहते हैं। वन पहुँचकर लक्ष्मण जब सीता पर तलवार से प्रहार करते हैं, तब वह पुष्पहार बन जाता है। लक्ष्मण से सीता त्याग के यथार्थ को जानकर राम उनके पास गये। उन्होंने सीता से क्षमायाचना की, किन्तु वे द्रवित नहीं हुईं। उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को राम के साथ जाने दिया और स्वयं पृथ्वी में प्रवेश कर गयीं। हनुमान ने पाताल जाकर सीता से लौटने का अनुरोध किया। उन्होंने उस आग्रह को भी ठुकरा दिया। 'रामकेर्ति' की खण्डित प्रति की कथा यहीं पर आकर रुक जाती है।

1238 ई. में स्वतन्त्र थाई राष्ट्र की स्थापना हुई थी परन्तु पहले से ही इस क्षेत्र में रामायणी संस्कृति विकसित हो गयी थी। थाईवासी परम्परागत रूप से रामकथा से परिचित थे। उस समय उसका नाम स्याम था। तेरहवीं शताब्दी में राम वहाँ की जनता के नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे, किन्तु रामकथा पर आधारित सुविकसित साहित्य अठारहवीं शताब्दी में ही उपलब्ध होता है।

राजा बोरोमकोत (1732-58 ई.) की समकालीन रचनाओं में रामकथा के पात्रों तथा घटनाओं का उल्लेख हुआ है। उन्होंने थाई भाषा में रामायण को छन्दबद्ध किया जिसके चार खण्डों में 2012 पद हैं। पुनः सम्राट राम प्रथम (1782-1809 ई.) ने कवियों के सहयोग से रामायण की रचना करवाई उसमें 50177 पद हैं। यही थाई भाषा का पूर्ण रामायण है। राम द्वितीय (1809-24 ई.) ने एक संक्षिप्त रामायण की रचना की जिसमें 14300 पद हैं। तदुपरान्त राम चतुर्थ ने स्वयं पद्य में रामायण की रचना की जिसमें 1664 पद हैं। इसके अतिरिक्त थाईलेंड में रामकथा पर आधारित अनेक कृतियाँ हैं। थाई रामायण में शिव की कृपा से सीता और राम का पुनर्मिलन दिखाया गया है।

लाओस की संस्कृति चाहे जितनी पुरानी हो, राजनीतिक मानचित्र पर वह मध्यकाल में ही अस्तित्व में आयी। लाओस राज्य की स्थापना चौदहवीं शताब्दी के मध्य हुई है। लाओस के निवासियों और इनकी भाषा को 'लाओ' कहा जाता है जिसका अर्थ है 'विशाल' अथवा 'भव्य'। लाओ जाति के लोग स्वयं को भारतवंशी मानते हैं। लाओ साहित्य के अनुसार अशोक (273-237 ई.पू.) द्वारा कलिंग पर आक्रमण करने पर दक्षिण भारत के बहुत सारे लोग असम-मणिपुर मार्ग से हिन्द-चीन चले गये। लाओस के निवासी अपने को उन्हीं लोगों का वंशज मानते हैं। रमेश चन्द्र मजूमदार के अनुसार थाईलेंड और लाओस में भारतीय संस्कृति का प्रवेश ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ था। उस समय चीन के दक्षिण भाग की उस घाटी का नाम 'गान्धार' था।[8]

लाओस में रामकथा पर आधारित कई रचनाएँ हैं जिनमें मुख्य रूप से फ्रलक-फ्रलाम (रामजातक), ख्वाय थोरफी, पोम्मचक (ब्रह्म चक्र) और लंका नाई के नाम उल्लेखनीय हैं। 'राम जातक' के नाम से विख्यात 'फ्रलक फ्रलाम' की लोकप्रियता का रहस्य उसके नाम के अर्थ 'प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम' में समाहित है। 'रामजातक' लाओस के आचार-विचार, रीति-रिवाज, स्वभाव, विश्वास, वनस्पति, जीव-जन्तु, इतिहास और भूगोल का विश्वकोश है। राम जातक दो भागों में विभक्त है। इसके प्रथम भाग में दशरथ पुत्री चन्दा और दूसरे भाग में रावण तनया सीता के अपहरण और उद्धार की कथा है। राम जातक के प्रथम खण्ड में लाओस के भौगोलिक स्वरूप और सामाजिक परम्पराओं का विस्तृत वर्णन है। राम जातक के द्वितीय खण्ड में सीताहरण, उनके निर्वासन और पुनर्मिलन की सारी घटनाओं का वर्णन हुआ है, किन्तु सब कुछ लाओस की शैली में हुआ है। अन्य जातक कथाओं की तरह इसके अन्त में भी बुद्ध कहते हैं कि पूर्व जन्म में वे ही राम थे, यशोधरा सीता थीं और देवदत्त रावण था।

बर्मावासियों को प्राचीनकाल से ही रामायण की जानकारी थी। ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं सदी के पहले से ही वह अनेक रूपों में वहाँ के जनजीवन को प्रभावित कर रही थी। ऐसी सम्भावना है कि लोकाख्यानों और लोक गीतों के रूप में रामकथा की परम्परा वहाँ पहले से विद्यमान थी, किन्तु बर्मा की भाषा में रामकथा साहित्य का उदय अठारहवीं शताब्दी में ही दृष्टिगत होता है। यू-टिन हट्वे ने बर्मा की भाषा में रामकथा साहित्य की सोलह रचनाओं का उल्लेख किया है—(1) रामवत्थु (1775 ई. के पूर्व), (2) राम सा-ख्यान (1775 ई.), (3) सीता रा-कान, (4) राम रा-कान (1784 ई.), (5) राम प्रजात (1789 ई.), (6) का-ले रामवत्थु, (7) महारामवत्थु, (8) सीरीराम (1849 ई.), (9) पुंटो राम प्रजात (1830 ई.), (10) रम्मासुङ्मुई (1904 ई.), (11) पुंटो रालक्खन (1935 ई.), (12) टा राम-सा-ख्यान (1906 ई.), (13) राम रुई (1907 ई.), (14) रामवत्थु (1935 ई.), (15) राम सुम : मुइ (193 ई.) और (16) रामवत्थु आ-ख्यान (1957 ई.)।

रामकथा पर आधारित बर्मा की प्राचीनतम गद्यकृति 'रामवत्थु' है। इसकी तिथि अठारहवीं शताब्दी निर्धारित की गयी है। इसमें अयोध्या काण्ड तक की कथा का छह अध्यायों में वर्णन हुआ है और इसके बाद उत्तर काण्ड तक की कथा का समावेश चार अध्यायों में ही हो गया है। रामवत्थु में जटायु, सम्पाति, गरुड़, कबन्ध आदि प्रकरण का अभाव है।

रामवत्थु की कथा बौद्ध मान्यताओं पर आधारित है, किन्तु इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण वाल्मीकीय आदर्शों के अनुरूप हुआ है। कथाकार ने इस कृति में बर्मा के सांस्कृतिक मूल्यों को इस प्रकार समाविष्ट कर दिया है कि वहाँ के समाज में यह अत्यधिक लोकप्रिय हो गया है। यह बर्मा की परवर्ती कृतियों का भी उपजीव्य बन गया है।

रामवत्थु का आरम्भ दशगिरि (दशग्रीव) तथा उसके भाइयों की जन्मकथा से होता है। कथा की समाप्ति अपने दोनों पुत्रों के साथ सीता की अयोध्या वापसी से होती है।

मलेशिया का इस्लामीकरण तेरहवीं शताब्दी के आसपास हुआ। मलय रामायण की प्राचीनतम पाण्डुलिपि बोडलियन पुस्तकालय में 1633 ई. में जमा की गयी थी। इससे ज्ञात होता है कि मलयवासियों पर रामायण का इतना प्रभाव था कि इस्लामीकरण के बाद भी लोग उसका परित्याग नहीं कर सके। मलेशिया में रामकथा पर आधारित एक रचना 'हिकायत सेरीराम' तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच लिखी गयी थी। इसके अतिरिक्त यहाँ के लोकाख्यानों में उपलब्ध रामकथाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इस सन्दर्भ में मैक्सवेल द्वारा सम्पादित 'सेरीराम', विंसटेड द्वारा प्रकाशित 'पातानी रामकथा' और ओवरवेक द्वारा प्रस्तुत 'हिकायत महाराज रावण' के नाम उल्लेखनीय हैं।

'हिकायत सेरीराम' विचित्रताओं का अजायबघर है। इसका आरम्भ रावण की जन्मकथा से हुआ है। 'हिकायत सेरी राम' इसी प्रकार की विचित्र कथाओं से परिपूर्ण है। यद्यपि इसमें वाल्मीकीय परम्परा का बहुत हद तक निर्वाह हुआ है, तथापि इसमें सीता के निर्वासन और पुनर्मिलन की कथा में भी विचित्रता है। सेरीराम से विलग होने पर देवी सीता ने कहा कि यदि वह निर्दोष होंगी, तो सभी पशु-पक्षी मूक हो जायेंगे। उनके पुनर्मिलन के बाद पशु-पक्षी बोलने लगते हैं। इस रचना में अयोध्या नगर का निर्माण भी राम और सीता के पुनर्मिलन के बाद ही होता है। फिलिपींस में रामकथा को नये रूप-रंग में प्रस्तुत किया गया है। फिलिपींस की मारनव भाषा में संकलित इक विकृत रामकथा की खोज की गयी है जिसका नाम 'महारादिया लाबन' है। इसकी कथावस्तु पर सीता के स्वयंवर, विवाह, अपहरण, अन्वेषण और उद्धार की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है।

तिब्बत के लोग प्राचीनकाल से वाल्मीकि रामायण की मुख्य कथा से परिचित थे।

तिब्बती रामायण की छह प्रतियाँ तुन-हुआंग नामक स्थल से प्राप्त हुई हैं। उत्तर-पश्चिम चीन स्थित तुन-हुआंग पर 787 से 848 ई. तक तिब्बतियों का आधिपत्य था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसी अवधि में इन ग़ैर-बौद्ध परम्परावादी रामकथाओं का सृजन हुआ। तिब्बत की सबसे प्रामाणिक रामकथा किंरस-पुंस-पा की है।

किंरस-पुंस-पा की रामकथा का आरम्भ शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण द्वारा दसों सिर अर्पित करने के बाद उसकी दस गर्दनें शेष रह जाती हैं इसी कारण उसे दशग्रीव कहा जाता है—से होता है। यहाँ पर सीता रावण की पुत्री कही जाती है जिनका विवाह राम से होता है और अन्त में सीता सहित राम पुष्पक विमान से अयोध्या लौट जाते हैं, जहाँ भरत उनका भव्य स्वागत करते हैं।

चीनी साहित्य में रामकथा पर आधारित कोई मौलिक रचना नहीं हैं। बौद्ध धर्मग्रन्थ त्रिपिटक के चीनी संस्करण में रामायण से सम्बद्ध दो रचनाएँ मिलती हैं। 'अनामकं जातकं' और 'दशरथ कथानम्'। 'अनामकं जातकं' का कांग-सेंग-हुई द्वारा चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था जिसका मूल भारतीय पाठ अप्राप्य है। चीनी अनुवाद 'लियेऊ-तुत्सी-किंग' नामक पुस्तक में सुरक्षित है।

'अनामकं जातकं' में किसी पात्र का नामोल्लेख नहीं हुआ है, किन्तु कथा के रचनात्मक स्वरूप से ज्ञात होता है कि यह रामायण पर आधारित है, क्योंकि इसमें राम वनगमन, सीताहरण, सुग्रीव मैत्री, सेतुबन्धन लंका विजय आदि प्रमुख घटनाओं का स्पष्ट संकेत मिलता है। नायिकाविहीन 'अनामकं जातकं', जानकी हरण, बाली वध, लंकादहन, सेतुबन्ध, रावण वध आदि प्रमुख घटनाओं के अभाव के बावजूद वाल्मीकि रामायण के निकट जान पड़ती है। अहिंसा की प्रमुखता के कारण चीनी रामकथाओं पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

'दशरथ कथानम्' के अनुसार राजा दशरथ के जम्बू द्वीप के सम्राट बनने से कथा आरम्भ होती है और कथा का अन्त दशरथ के पुत्र लोमो के राजा बनने पर होता है और लोमो के राजा बनते ही देश धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाता है। कोई किसी रोग से पीड़ित नहीं रहता। जम्बू द्वीप के लोगों की सुख-समृद्धि पहले से दस गुनी हो जाती है।

एशिया की पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित तुर्किस्तान के पूर्वी भाग को खोतान कहा जाता है जिसकी भाषा खोतानी है। एच.डब्लयू. बेली पेरिस पाण्डुलिपि संग्रहालय से खोतानी रामायण को खोजकर प्रकाश में लाये। उनकी गणना के अनुसार इसकी तिथि नवीं शताब्दी है। खोतानी रामायण अनेक स्थलों पर तिब्बती रामायण के समान है, किन्तु इसमें अनेक ऐसे वृत्तान्त हैं जो तिब्बती रामायण में नहीं हैं।

खोतानी रामायण की शुरुआत राजा दशरथ के प्रतापी पुत्र सहस्रबाहु के वन में शिकार खेलने जाने पर होती है और अन्त लोकापवाद के कारण सीता के धरती में प्रवेश करने से होता है। अन्त में शाक्य मुनि कहते हैं कि इस कथा के नायक राम स्वयं वे ही थे।

चीन के उत्तर-पश्चिम में स्थित मंगोलिया के लोगों को रामकथा की विस्तृत जानकारी है। वहाँ के लामाओं के निवास स्थल से वानर-पूजा की अनेक पुस्तकें और प्रतिमाएँ मिली हैं। वानर पूजा का सम्बन्ध राम के प्रिय पात्र हनुमान से स्थापित किया गया है। मंगोलिया में रामकथा से सम्बद्ध काष्ठचित्र और पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बौद्ध साहित्य के साथ संस्कृत साहित्य की भी बहुत सारी रचनाएँ वहाँ पहुँचीं। इन्हीं रचनाओं के साथ रामकथा भी वहाँ पहुँच गयी। दम्दिन सुरेन ने मंगोलियाई भाषा में लिखित चार रामकथाओं की खोज की है। इनमें राजा जीवक की कथा विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसकी पाण्डुलिपि लेनिनग्राद में सुरक्षित है।

'जीवक जातक' की कथा का अठारहवीं शताब्दी में तिब्बती से मंगोलियाई भाषा में अनुवाद हुआ था इसके तिब्बती मूल ग्रन्थ की कोई जानकारी नहीं है। आठ अध्यायों में विभक्त 'जीवक जातक' पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इसमें सर्वप्रथम गुरु तथा बोधिसत्व मंजुश्री की प्रार्थना की गयी है और अन्त राम के दानव राज को पराजित कर अपनी पत्नी के साथ देश लौटने तथा सुख से जीवन व्यतीत करने से होता है।

जापान के एक लोकप्रिय कथा संग्रह 'होबुत्सुशू' में संक्षिप्त रामकथा संकलित है। इसकी रचना तैरानो यसुयोरी ने बारहवीं शताब्दी में की थी। रचनाकार ने कथा के अन्त में घोषणा की है कि इस कथा का स्रोत चीनी भाषा का ग्रन्थ 'छह परिमिता सूत्र' है। यह कथा वस्तुतः चीनी भाषा के 'अनामकं जातकं पर आधारित है, किन्तु इन दोनों में अनेक अन्तर भी हैं परन्तु पूरी कथा लोक जीवन में रची बसी है।

श्रीलंका में भारतीय महाकाव्यों की परम्परा पर आधारित 'जानकी हरण' के रचनाकार कुमार दास के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे महाकवि कालिदास के अनन्य मित्र थे। कुमार दास (512-21 ई.) लंका के राजा थे। इतिहास में इनकी पहचान कुमार धातुसेन के रूप में है। कालिदास के 'रघुवंश' की परम्परा में विरचित 'जानकी हरण' संस्कृत का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसके अनेक श्लोक काव्यशास्त्र के परवर्ती ग्रन्थों से उद्धृत किये गये हैं। इसका कथ्य वाल्मीकि रामायण पर आधारित है।

सिंहली साहित्य में रामकथा पर आधारित कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है। श्रीलंका के पर्वतीय क्षेत्र में कोहंवा देवता की पूजा होती है। इस अवसर पर मलेराज कथाव (पुष्पराज की कथा) कहने का प्रचलन है। इस अनुष्ठान का आरम्भ श्रीलंका के सिंहली सम्राट पाण्डुवासव देव के समय ईसा के पाँच सौ वर्ष पूर्व हुआ था मलेराज की कथा के अनुसार राम विष्णु के अवतार हैं।

नेपाल में रामकथा का विकास मुख्य रूप से वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायण के आधार पर हुआ है। नेपाली काव्य और गद्य साहित्य में रामकथा पर बहुत सारी रचनाएँ हैं। नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में वाल्मीकि रामायण की दो प्राचीन पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। इनमें से एक पाण्डुलिपि के किष्किन्धा काण्ड की पुष्पिका पर तत्कालीन नेपाल नरेश गांगेय देव और लिपिकार तीरमुक्ति निवासी कायस्थ पण्डित गोपति का नाम अंकित है। इसकी तिथि सं. 1076 तद्नुसार 1029 ई. है। दूसरी पाण्डुलिपि की तिथि नेपाली संवत् 795 तद्नुसार 1674-76 ई. है।

नेपाली साहित्य में भानुभक्त कृत रामायण को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। नेपाल के लोग इसे ही अपना आदि रामायण मानते हैं। यद्यपि भानुभक्त के पूर्व भी नेपाली रामकाव्य परम्परा में गुमनी पन्त और रघुनाथ का नाम उल्लेखनीय है। रघुनाथ कृत 'रामायण सुन्दर काण्ड' उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखा गया। इसका प्रकाशन नेपाली साहित्य सम्मेलन, दार्जिलिंग द्वारा कविराज दीनानाथ सापकोरा की विस्तृत भूमिका के साथ 1932 में हुआ।

नेपाली साहित्य में प्रथम महाकाव्य 'रामायण' के रचनाकार भानुभक्त का उदय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। पूर्व से पश्चिम तक नेपाल का कोई ऐसा गाँव अथवा क़स्बा नहीं है जहाँ उनकी रामायण की पहुँच न हो। भानुभक्त कृत 'रामायण' वस्तुतः नेपाल का 'रामचरितमानस' है। भानुभक्त का जन्म पश्चिमी नेपाल में चुँदी-व्याँसी क्षेत्र के रम्घा ग्राम में 29 आषाढ़ संवत् 1871 तद्नुसार 1814 ई. में हुआ था। संवत् 1910 तद्नुसार 1953 ई. में उनकी रामायण पूरी हो गयी थी, किन्तु कहा जाता है कि युद्धकाण्ड और उत्तर काण्ड की रचना 1855 ई. में हुई थी।

भानुभक्त कृत रामायण की कथा अध्यात्म रामायण पर आधारित है। इसमें उसी की तरह सात काण्ड हैं—बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध और उत्तर। बालकाण्ड का आरम्भ

शिव-पार्वती संवाद से हुआ है। युद्ध काण्ड में राम का अयोध्या प्रत्यागमन, भरत मिलन और राम राज्याभिषेक का चित्रण हुआ है। जबकि उत्तर काण्ड में राम द्वारा लक्ष्मण के परित्याग के उपरान्त उनके महाप्रस्थान के बाद कथा की समाप्ति हुई है। इस प्रकार भानुभक्त कृत 'रामायण' नेपाली भाषा की महान रचना है जो कालान्तर में सम्पूर्ण नेपालवासियों का कण्ठहार बन गयी।

सन्दर्भ

1. रामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. गोस्वामी तुलसीदास, रामजी तिवारी, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
3. त्रिवेणी : रामचन्द्र शुक्ल, संपा. कृष्णानन्द, नागरी प्रचारिणी सभा
4. साहित्य निबन्ध, गणपति चन्द्र गुप्त, लोक प्रकाशन, इलाहाबाद
5. Raghvan, V., The Ramayana in Greater India, pp. 50
6. Raghvan, V. (Ed.), The Ramayana Tradition in Asia, p. 245
7. Cadet, J. H., Ramkien, p. 31-32
8. Raghvan, V. op.cit., pp. 247
9. Thongthep, Meechai, Ramkien, pp. 34
10. Ramayana by Rama I of Sian, pp. 8-9
11. वर्मा, सूघा, पूर्ववत्, पृ. 131-132
12. Ratnam, Kamala : The Ramayana in Laos, The Ramayana Tradition in Asia, pp. 260
13. Ibid., pp. 259
14. Raghvan, V., op.cit. pp. 35
15. Sahai, Sachchidanand, Ramjatak, Part I, pp. 44-45
16. Ibid., pp. 46-47
17. Istway, Utin, Note on Ramayana in Burmese Literature and Arts, Ramayana in South East Asia, Gaya, pp. 86
18. Hussein, Ismail, Ramayana in Malyasia, The Ramayana Tradition in Asia, pp.143
19. Stutterlein, W., Rama Legends and Rama Reliefs in Indonesia, pp. 23
20. Ibid, pp. 26-28
21. Ibid, pp. 62
22. Francisco, Dr. Jnan R., The Ramayana in Philippines, The Ramayana Tradition in Asia, pp. 163-64
23. Ibid, pp.167
24. रामकथा, पृ. 46
25. Raghuvir and Yamamoto, The Ramayana in China, pp. 27-30
26. Baily, H.W., The Ramayana in Khotan, Journal of Amerian Society, Vol.59, 1939, pp. 460-468
27. Damdin Suren, T.S., The Ramayana in Mangolia, The Ramayana Tradition in Asia, pp. 657
28. Raghvan, V., The Ramyana in Greater India, pp. 24
29. Dr. Jong, J.W., The story of Rama in Tibet, Asian Variations in Ramayana, pp. 163
30. Ibid, pp. 173
31. Raghvan, V., The Ramayana in Greater India, pp. 32
32. Hara, Minoru, Ramayana stories in China and Japan, Asian Variations in Ramayana, pp. 347-48
33. Hara, Minoru, Fektual theme of Ramayana in Japan, The Ramayana tradition in Asia, pp. 341-45
34. Godkumbura, C.E., Ramayana in Srilanka, The Ramayana Tradition in Asia, pp. 445
35. Ibid, pp. 438
36. Tilak Siri, J., Ramayana in Srilanka and its folk version.
37. Godkumbura, C.E., op.cit., pp. 438
38. Banarjee, N.R., The Ramayana theme in Nepali Art, Asian Variation in Ramayana, pp. 155
39. शर्मा, तारानाथ, नेपाली साहित्य का इतिहास, पृ. 32
40. Sankrityayana, Kamala, Ramayana in Nepali, The Ramayana Tradition in Asia, pp. 368
41. Sankrityayana, Kamala, op.cit, pp. 378

रामकाव्यों में 'शबरी' और उसकी प्रासंगिकता

डॉ. अनुराधा कु. साहु/मोनमी गायन

रामकथा शाश्वत् सत्य की शाश्वत् कथा है जो प्रत्येक प्राणी एवं देशकाल के लिए समानरूपेण लाभप्रद है। भगवान राम का पावन चरित्र एवं उनकी पवित्र कथा आदिकाल से भारतीय जीवन एवं जनमानस के अक्षय प्रेरणा स्रोत रहे हैं। प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक रामकथा ने करोड़ों-असंख्यों नर-नारियों का उद्धार कर उनका जीवन सार्थक किया है और भविष्य में भी उद्धार करती रहेगी। रामकथा में भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों की वैसी अन्तर्निहित दीप्ति है जैसे पानी में मोती की होती है। रामकथा भारतीय संस्कृति-सभ्यता की अमूल्य थाती है।

रामकथा के उद्भव, विकास और इतिहास के सन्दर्भ में यह तथ्य निर्विवाद है कि आदिकवि वाल्मीकि कृत 'रामायण' ही समस्त रामकथाओं की स्रोतस्वनी है। आदिकवि वाल्मीकि कृत 'रामायण' के आधार पर ही विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा से सम्बद्ध रचनाएँ निरन्तर लिखी जा रही हैं। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' सांस्कृतिक चेतना तथा काव्योत्कर्ष की दृष्टि से अप्रतिम है। आधुनिक हिन्दी काव्यों में यह प्रवृत्ति विशिष्ट रूप से देखने में आती है कि राम के सम्पूर्ण जीवन के चित्रण के स्थान पर उनके जीवन से सम्बद्ध किसी गुण अथवा घटना विशेष को वर्ण्य-विषय बनाना, राम की लीला स्थली में से किसी स्थल विशेष का चयन कर उससे सम्बद्ध पारम्परिक मान्यताओं के स्वीकरण-अस्वीकरण की प्रक्रिया से गुज़रते हुए उसमें वैयक्तिक रागात्मकता के रंग भरना तथा युगों-युगों से चली आ रही रामकथा में उपेक्षित और विशिष्ट पात्रों को युगानुरूप प्रश्नों के साथ चित्रित कर उनके साथ न्याय करना। इस प्रकार के अनेक पात्रों में से शबरी भी एक पात्र है जिसकी शाप मुक्ति का उल्लेख न्यूनाधिक सभी रामकाव्यों में पाया जाता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का चरित्र भारतीय संस्कृति के समष्टि रूप का पर्याय बन चुका है। सारी सृष्टि में रमे राम युग-युग से सात्विक रसिकजनों की रस-साधना व अध्यात्म-प्रिय जनता की आस्था का केन्द्र बने हैं। श्रीराम का चरित्र इतना लोकप्रिय है कि भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं का ही नहीं, विश्व वाङ्मय का भी अभिन्न अंग बना और रामकथा को लेकर विशाल-साहित्य का निर्माण हुआ। काल-प्रवाह के साथ कवियों की व्यक्तिगत रुचि और युगयुगीन सांस्कृतिक आदर्शों के अनुरूप रामकथा नूतन साँचों में ढलती रही।

रामकथा भारत की आदि कथा है, जिसे भारतीय संस्कृति का रूपक कह दिया जाये तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । रामकथा के सभी पात्र भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को महिमा प्रदान करते दिखाई देते हैं। विशेष रूप से नारी पात्र अपनी विशिष्टता लिए हुए हैं। उनमें भारतीय मूल्यों के प्रति असीम आस्था है, वे त्याग की प्रतिमूर्ति हैं, आदर्श पतिव्रता हैं, विवेकवान समर्पणशीला हैं,

कर्तव्यपरायण व युग-धर्म की रक्षिका भी हैं। समय आने पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करती हैं। सम्पूर्ण कथानक को आदर्श मण्डित करने में नारी-पात्रों की विशेष भूमिका रही है। रामकथा में वर्णित पात्र हैं—सीता, कौशल्या, कैकेयी, उर्मिला, मन्दोदरी, माण्डवी, श्रुतकीर्ति, सुमित्रा, मन्थरा, शूर्पणखा, शबरी आदि। ये नारी पात्र इतने भव्य रूप में चित्रित हुए हैं कि पुरुष भी उन्हीं के पथ का अनुसरण करते हैं।

शबरी की कथा अनार्य जाति की एक अन्त्यज, अछूता स्त्री के आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष की ऐसी कथा है जो रामायण के शीर्षस्थ पात्रों-चरित्रों में भी अपनी प्रयुक्ति के बाद पहचान बनाये रखती है। शबरी जिस क्षण रामगाथा में प्रयुक्त होती है उस क्षण तक वह अत्यन्त उच्च भावभूमि प्राप्त किये होती है। शबरी अपनी जन्मगत निम्नवर्गीयता को कर्म दृष्टि के द्वारा वैचारिक उर्ध्वता में परिणत करती है। यह आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष, व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में आज भी प्रासंगिक है। सामाजिक संकीर्णता, मूढ़ता, परिवेश जड़ता तथा अपने युग के साथ संलापहीनता की स्थिति में व्यक्ति केवल अपने को ही जाग्रत कर सकता है। इसी संघर्ष के माध्यम से ही व्यक्ति समाज बन सकता है। इसी प्रक्रिया के द्वारा शबरी अपने वर्ण, वर्ग, समाज, युग सबसे ऊपर प्रतिष्ठित हो सकी है।

वस्तुतः आधुनिक युग नारी जागरण का युग है और आधुनिक रामकाव्य के मूल में नारी के किसी-न-किसी रूप को रेखांकित और परिभाषित करने का उपक्रम है, आधुनिक युग की नैतिक एवं सामाजिक अनिवार्यताएँ इन नारी पात्रों के माध्यम से अपना प्रतिनिधित्व खोजती हैं। आधुनिक युग में उर्मिला, कैकेयी तथा शबरी जैसे पात्रों को नया आयाम मिला है। आधुनिक कवियों ने इनको अपनी करुणा और सहानभूति अर्पित की है। अहिल्या, शबरी, सुमित्रा, मन्थरा, कैकेयी आदि के व्यक्तित्व को परिवर्तित युग-सन्दर्भ के अनुरूप नया आवरण भी प्राप्त हुआ है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ रचनाकारों का ध्यान रामकथा की भक्ति में सराबोर शबरी की ओर भी गया है। इन रचनाकारों ने रामकथा के प्रख्यात प्रसंग में शबरी को अपनी तूलिका से सँवारा है। शबरी रामकथा की रामभक्ति प्रवण नारियों के 'गौण-सुरजन-साधारणम-उपवर्ग' की प्रतिनिधि पात्र है।[1] आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ संवेदनशील साहित्यकारों ने शबरी जैसी गौण नारी पात्र के चरित्र की कुछ विशिष्ट उत्कृष्टताओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। तथा नये-नये दृष्टिकोणों को उद्घाटित करने का प्रयत्न निश्चय ही रामायणकालीन सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर किया है। एक अन्त्यज-अछूता-स्त्री भगवद्भक्ति द्वारा अर्जित आत्मज्ञान व बुद्धिमता के द्वारा अपने चैतन्य की रक्षा एवं सामूहिक जड़ता (विरोध) के समक्ष अडिग रहते हुए योग, दर्शन एवं भक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त करती है।

शबरी प्रसंग का महत्त्व रामकाव्यों में इसलिए और भी बढ़ जाता है क्योंकि प्रभु श्रीराम ने शबरी को ही 'नवधा भक्ति' का उपदेश दिया है जो कलियुग में मानव जाति को मोक्ष दिलाने का एक प्रधान साधन है।[2] शबरी की कथा के महत्त्व का प्रतिपादन अध्यात्म रामायण में निम्न प्रकार से किया गया है—"कबन्ध शबरी की रामभक्ति का उल्लेख करते हुए यह आश्वासन देता है कि शबरी राम को सीता के विषय में सब बातें बता देगी, तब राम शबरी के आश्रम पहुँचकर उसका आतिथ्य ग्रहण करते हैं तथा जूठे बेर भी खाते हैं। अन्त में शबरी राम से यह प्रश्न पूछती है कि मैं मूढ़ स्त्री, हीन-जाति-कुल उत्पन्न, आपके दर्शन योग्य क्यों ठहरी? राम कहते हैं कि पुरुषत्व, स्त्रीत्व, जाति, नाम, आश्रम का कोई महत्त्व नहीं है, भक्ति ही सर्वोपरि है। तदनन्तर राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देकर कहते हैं कि उन साधनों द्वारा प्रेम, लक्षणा भक्ति का आविर्भाव होता है जिससे इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त होती है।"[3]

नवधा भक्ति

नवधा भक्ति, वैधी भक्ति का एक सुगम, आसानी से किया जा सकने वाला सर्वसुलभ भक्ति का स्वरूप है। जिसके नौ अंगों के परिपालन से भगवत् कृपा प्राप्त हो सकती है। नवधा भक्ति का महत्त्व इस कारण अधिक बढ़ जाता है कि इस भक्ति के नौ अंगों का प्रतिपादन भगवान श्रीराम के श्रीमुख से हुआ है। वस्तुतः नवधा भक्ति ही भक्ति का वह स्वरूप है जो साधारण से साधारण जनमानस, अन्त्यज, अछूत, अशिक्षित, ग्राम्यवासियों इत्यादि को स्वतः ही भक्ति में प्रेरित करके भगवान की प्राप्ति में सहायक है।[4] कर्मकाण्डों एवं जातिगत अशुद्धता के विपरीत फलों से भी इस भक्ति का स्वरूप विचलित नहीं होता है। ब्रह्मज्ञान और दर्शन जैसे उत्कृष्ट विषयों से भिज्ञता के बिना भी नवधा भक्ति शबरी सरीखे साधारण जनसमुदाय को रामभक्ति प्रवण एवं रामानुगामी बना सकता है। भगवान श्रीराम मतंगाश्रम पधारकर अकिंचन शबरी को दर्शन, नवधा भक्ति का उपदेश एवं मोक्ष प्रदान करते हैं। संक्षेप में गो. तुलसीदास द्वारा प्रतिपादित नवधा भक्ति के नौ अंगो का वर्णन निम्नलिखित है—

> **"नवधा भगति कहऊँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं /प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा। / दो.- गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान। / चौथि भगति मम गुनगन करई कपट तजि गान। / मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा, पंचम भजन सो बेद प्रकासा। / छठ दम सील बिरति बहु करमा, निरतनिरन्तर सज्जन धरमा। / सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते सन्त अधिक करि लेखा। / आठवँ जथालाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा। / नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरप न दीना। / नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।"**[5]

श्रीरामचन्द्र जी ने अपने मुखारविन्द से इस नवधा भक्ति का उपदेश शबरी को दिया जिसे उन्होंने अपने गुरु से अर्जित किया था। रामायण में वर्णित शबरी प्रसंग इसी कारण और भी विशिष्ट बन गया है। चूँकि शबरी प्रसंग का सम्बन्ध नवधा भक्ति से सर्वविदित है, इस कारण साधन भक्ति का विशद् विवेचन किया गया है।

वाल्मीकि रामायण में शबरी प्रसंग (मूल कथा)

वाल्मीकि रामायण के तीनों पाठों में जो सामग्री समान रूप से मिलती है, उसमें शबरी की कथा इस प्रकार है—सीता की खोज में राम की पक्षीराज जटायु से भेंट होती है। जटायु राम को समाचार देता है कि उसके द्वारा प्रतिरोध करने पर भी रावण देवी सीता का हरण करके ले गया। जटायु को मोक्ष का दान देकर राम अधोमुखी नामक विशालकाय राक्षसी का वध करते हैं।[6] तदनन्तर मार्ग में कबन्ध नामक राक्षस से उनकी भेंट होती है जिसके पेट में ही उसका मुख बना हुआ था तथा छाती में ही ललाट था। कबन्ध के अध्यात्म रामायण में ऋषि अष्टावक्र तथा मानस में दुर्वासा ऋषि द्वारा शापित होने का वर्णन है।[7] श्रीराम कबन्ध की दोनों भुजाओं को काट डालते हैं। शापमुक्त होकर कबन्ध अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाने के बाद श्रीराम को ऋष्यमूक पर्वत और पम्पा सरोवर का मार्ग बताकर सुग्रीव की मैत्री के लिए अनुप्रेरित करता है।[8] कबन्ध राम को मतंगाश्रम का मार्ग बताकर शबरी का परिचय इस प्रकार देता है—"मतंगाश्रम के ऋषि तो चले गये किन्तु उनकी परिचारिणी श्रमणी शबरी अब तक वहाँ विद्यमान है और देवोपम श्रीराम के दर्शन करने के पश्चात् ही वह स्वर्गलोक को लिए प्रस्थान करेगी।" इस प्रकार से कबन्ध सहज भाव से अपनी गन्धर्व-गति प्राप्त कर शापमुक्त हो आकाश मार्ग से चला जाता है। तदुपरान्त राम पम्पा सरोवर के तट पर मतंगाश्रम में

जाकर शबरी का सत्कार ग्रहण करते हैं।[9] वाल्मीकि कृत रामायण की शबरी श्रमशीला, परिचारिणी, तपस्विनी है जिसके आश्रम में श्रीराम पूर्वजनित प्रीति के कारण प्रवेश करते हैं।[10]

राम शबरी के आश्रम में पहुँचकर तथा उसका आतिथ्य-सत्कार स्वीकार कर उसकी तपश्चर्या के विषय में प्रश्न करते हैं, इस पर शबरी उत्तर देती है कि जिस समय राम चित्रकूट पहुँचे, यहाँ के ऋषि मतंग, जिनकी सेवा वह करती थी, स्वर्ग चले गये। जाते समय ऋषियों ने कहा था कि लक्ष्मण के साथ राम यहाँ अतिथि के रूप में पधारेंगे, उनके दर्शन करने के पश्चात शबरी भी स्वर्ग जा सकेगी। शबरी राम से यह भी निवेदन करती है कि—"मैंने आपके लिए वन के विविध कन्दमूल एकत्र कर रखे हैं—**मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ्।"**[11] तब वह अपने गुरुओं का गुणगान करती हुई राम-लक्ष्मण को मतंग वन का दर्शन कराती है। अन्त में वह उन ऋषियों के पास जाने की इच्छा प्रकट करती है तथा राम की आज्ञा लेकर अग्नि में प्रवेश करती है, तदनन्तर वह दिव्य रूप धारणकर उसमें से प्रकट हो जाती है तथा विद्युत-सा प्रकाश फैलाती हुई अपने गुरु महर्षियों के पास पहुँच जाती है।[12]

शबरी कथा के इस प्रथम रूप में गुरु-भक्ति तथा तपस्या की महिमा पर विशेष बल दिया गया है। 'भट्टिकाव्य' में भी शबरी कथा का यही रूप मिलता है।[13] 'महावीर चरित' के अनुसार शबरी मतंग आश्रम में रहने वाली तपस्विनी है।[14] 'अध्यात्म रामायण' में भी शबरी का प्रसंग महत्त्वपूर्ण है।[15] अध्यात्म रामायण में शबरी की कथा इस प्रकार है—कबन्ध राम को आश्वासन देता है कि शबरी उनको सीता के विषय में सब बातें बता देगी। शबरी भक्तिपूर्वक राम-लक्ष्मण का आतिथ्य-सत्कार करती है तथा उनको अपने इकट्ठे किये हुए दिव्य फल अर्पित करती है। तदनन्तर यह बताती है कि इस आश्रम में पहले उसके जो गुरु निवास करते थे, उनके आदेशानुसार वह राम का ध्यान करती हुई उनकी प्रतीक्षा करती रही, अन्त में राम का दर्शन होता है तथा राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देकर कहते हैं कि उन साधनों द्वारा प्रेम, लक्षणा भक्ति का आविर्भाव होता है। इससे इसी जन्म में मुक्ति मिलती है। अन्त में राम सीता के विषय में पूछते हैं—"सीता कमल लोचना, कुत्रास्ते के न वा नीता।"[16] शबरी राम को उनकी सर्वज्ञता का स्मरण दिलाकर कहती है कि आप लोकाचार का अनुसरण करते हुए सीता का पता पूछते हैं। तब वह प्रकट करती है कि सीता लंका में हैं और राम को सुग्रीव के पास जाने का परामर्श देती है। अन्त में वह अग्नि में प्रवेश करती है तथा राम के दर्शन से मोक्ष प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अध्यात्म रामायण के रचयिता ने शबरी की कथा को रामभक्ति के गुणगान में परिणत कर दिया है। शबरी की हीन जाति को महत्त्व देकर यह स्पष्ट किया गया है कि रामभक्ति भेदभाव से ऊपर उठकर सबको मुक्ति प्रदान करती है—**"भक्तिमुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य।"**[17]

'भक्तमाल' की प्रियदास कृत टीका प्राचीनतम रचना है जिसमें शबरी की पवित्रता सिद्ध करने वाली कथा पायी जाती है। रघुराज सिंह की 'राम रसिकावली' में भी वही कथा मिलती है किन्तु सरोवर को स्वच्छ करने की कथा इस प्रकार है—"राम पहले उसका स्पर्श करते हैं जिससे 'भयो दून शोणित सर वारी', तब राम प्रकट करते हैं कि शबरी ही उसे पवित्रता प्रदान कर सकती है। मुनियों के निवेदन करने पर—**'शबरी सकुचि सलिल पग डारी / तुरतहि भा निरमल सर वारी।'** रघुराज सिंह की 'राम रसिकावली' (पृ.118) के अनुसार शबरी एक मुनि की पत्नी थी, जो अपने पति के साथ वन में निवास करती थी। साधनारत पति द्वारा वह शापित होती है। तदनन्तर उसके करुण विलाप को सुनकर मुनि उसे निम्न शब्दों में सान्त्वना प्रदान करते हैं—**'करिहे सन्तन की सेवा, / एहै तुव घर रघुकुल देवा।**[18] शबरी की कथा आदिवासियों में अपेक्षाकृत बहुत अधिक लोकप्रिय है। मध्य भारत के कोल अपने को शबरी का वंशज मानते हैं।

आधुनिक काल के कवियों ने भी आदिकालीन रामकथा को आधार मानकर विभिन्न ग्रन्थों की अवधारणा एवं रचना के सुन्दर प्रयास किये हैं। इसी क्रम में रामकथा के अनेक प्रधान या गौण पुरुष तथा नारी पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को उजागर करती हुई रचनाएँ की हैं।[19] जिन पात्रों का पुनःसंस्कार आधुनिक युग में हुआ, वे कवियों की याद्रिच्छिक भावना की अपेक्षा युगानुरूप मानवीय मूल्यों की परिणति हैं। इन कवियों ने पात्रों की मूल प्रकृति को यथासम्भव सुरक्षित रखते हुए उनके चरित्र का पुनःसस्कार करने का प्रयत्न किया। आधुनिक राम-काव्य के प्रवर्तकों ने सदियों से उपेक्षित पड़े चरित्रों को उकेरा तथा अपनी कल्पना के द्वारा सजाया और सँवारा। जिन पात्रों के केवल नाम ही प्राचीन रामकाव्य में उल्लिखित थे तथा जिनके आकार व व्यक्तित्व की सुस्पष्ट रूपरेखा सामने नहीं थी उनको युगबोध के अनुरूप अपनी कल्पना और प्रतिभा से सुस्पष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया गया।

आधुनिक शबरी संज्ञक काव्य का अनुशीलन करते समय यह तथ्य दृष्टिगत होता है कि अधिकांश कवियों ने वाल्मीकि रामायण को ही प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है, इतर वाङ्मय का उपयोग उन्होंने केवल अपनी स्फुट अवधारणाओं की पुष्टि के लिए ही किया है। यहाँ तक कि मानस में वर्णित घटनाओं को ही वास्तविक एवं ऐतिहासिक तथ्य माना जाता है। मानस मूलतः अध्यात्म रामायण से प्रभावित है तथा कथानक के संयोजन के लिए वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त 'प्रसन्न राघव', 'हनुमन्नाटक', 'अनर्घ राघव' आदि से सूत्र ग्रहण किया गया है। अतः यहाँ प्रारम्भ में पारम्परिक कथानक की रूपरेखा स्फुट करने के लिए वाल्मीकिय रामायण, अध्यात्म रामायण एवं श्रीरामचरितमानस के कथासूत्रों का उल्लेख किया गया है।[20]

रामकथा एवं रामकाव्य रूपी अथाह सागर में इतने रत्न छिपे हैं कि आजीवन डुबकियाँ लगाने पर भी मात्र कुछ ही रत्नों को प्राप्त कर पायेंगे, इसमें किंचित भी सन्देह नहीं है कि इस असीम सागर की थाह पाना असम्भव ही प्रतीत होता है। इस सागर से जो मोती चुन पायी हूँ वह शबरी के रूप में आप सभी के समक्ष प्रस्तुत है। नरेश मेहता शबरी के माध्यम से अपनी काव्य कृति 'शबरी' में यह प्रश्न पूछते हैं कि—**'क्या आत्मा की उन्नति केवल, / है उच्च वर्ग तक ही सीमित? /प्रभु तो हैं सबके पिता, भला /उनका आराधन क्यों सीमित?'**[21] क्या व्यक्ति जन्म से ही निम्न वर्ग का होता है या फिर इस धरती पर सभ्यता और संस्कृति के नाम पर इस प्रकार का शोषण होता है। जिस युग की यह कथा है उस समय सामाजिक स्तर पर भले ही वर्ण-व्यवस्था का विधान रहा हो पर व्यक्ति, कर्म के द्वारा वर्ण मुक्त होने की चेष्टा कर सकता था। शबरी की कथा में भी यही वर्ण मुक्त होने की चेष्टा है। वाल्मीकि ने सामाजिक वर्ण-व्यवस्था से ऊपर व्यक्ति के आध्यात्मिक स्वत्व एवं असंग कर्म को प्रतिस्थापित किया और शबरी वही बीज चरित्र है। कवि की मानवीय दृष्टि ने ही शबरी के साधारणत्व को असाधारणत्व प्रदान किया और साधना की यह परावस्था ही शबरी को सारे रामायणकालीन पात्रों में विशिष्ट बनाती है। श्री नरेश मेहता ने अपनी कृति 'शबरी' में भी शबरी के इसी रूप का चित्रण, वर्णन किया है, वह कहते हैं कि शबरी की व्यथा रामकथा से जुड़कर पवित्र हो गयी, यथा—**'त्रेता युग की व्यथामयी, यह कथा दीन नारी की /रामकथा से जुड़कर, पावन हुई उसी शबरी की।'**[22] शबरी के मन में भगवान के प्रति अपार श्रद्धा थी। वह दिन-रात पूजा-अर्चना में मगन रहती थी और उसका व्यक्तित्व ही प्रभुमय हो उठता था।

ध्यात्व्य है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में बहुत कम कवि हैं जिन्होंने रामकथा में वर्णित नारी पात्रों विशेषकर गौण नारी पात्रों को अपनी कृतियों का वर्ण्य-विषय बनाया। शबरी पर आधारित काव्य कृति की रचना करने वालों में मायादेवी 'मधु' और नरेश मेहता उल्लेखनीय हैं। रामायण में जहाँ

शबरी को राम से मुक्ति मिलने की बात कही गयी है वहीं आधुनिक कवियों ने शबरी के चरित्र को युग सन्दर्भ के अनुकूल चित्रित किया है। रामायण में वह एक भीलनी के रुप में चित्रित है जो अपनी भक्ति के कारण ऋषि तुल्य बन जाती है, परन्तु आधुनिक काव्यों में एक नवीन छवि प्रस्तुत हुई है।

शबरी शाबर जाति से सम्बन्ध रखने वाली स्त्री है जो रामकथा से जुड़कर पवित्र हो गयी। वह विन्ध्य वनों में रहकर अपना जीवन व्यतीत कर रही थी, चारों ओर मांस महकता रहता और भूमि पर हड्डियाँ तथा ख़ून फैला रहता था। शबरी को इन सबसे घृणा थी और उसे अपना जीवन नरक लगता था। शबरी अपना कुल-कुटुम्ब का परित्याग करना चाहती थी। वह सांसारिक बन्धनों में नहीं पड़ना चाहती। वह अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहती थी। वह मन-ही-मन सोचती है—**'माना यह सब कुल-कुटुम्ब है, /अपने ही हैं प्रियजन / पर इस बन्धन में रहते / सम्भव क्या उन्नत जीवन**?'[23] नरेश मेहता ने शबरी के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं का विवेचन और विश्लेषण कर उनकी उपयुक्त स्थिति को व्यक्त करना चाहा है। वर्ण-व्यवस्था की समकालीन समस्या का समाधान नवीन सन्दर्भों में व्यक्त किया है कि व्यक्ति समाज की मूढ़ता, परिवेश, वातावरण युग की समस्याओं के बावजूद स्वयं को जाग्रत कर सकता है। पुराने समय में शूद्र जाति को अछूत माना जाता था, परन्तु आधुनिक कवियों ने भक्ति पर आधारित शबरी के पुरावृत्त को नया आयाम दिया है। इसी कारण शबरी अपनी जन्मगत निम्नवर्गीयता को कर्म की दृष्टि के द्वारा वैचारिक उर्ध्वता में परिणत करती है।

सन्दर्भ

1. रामकाव्यों में नारी, डॉ. विद्या, प्रकाशन संस्थान दिल्ली, पृ. 53-54
2. अयोध्या का युद्ध, रमेश चन्द्र गुप्त, उर्मिला पब्लिकेशन्स, दिल्ली-4
3. अध्यात्म रामायण 3,10/1-44
4. रामचरितमानस में जीवन मूल्य—अमितारानी सिंह, पृ. 200
5. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, टीकाकार-हनुमान प्रसाद, पृ. 573
6. श्रीमद्वाल्मीकिरामायण—अरण्य काण्ड 69/1-19
7. अध्यात्म रामायण—3/9/27
8. वही, 3/72/77
9. वही, 3/73/74
10. वही, 3/75/7-10
11. वही, 3/74/17
12. वही, 3/74/24
13. भट्टिकाव्य, सर्ग 59, 79
14. महावीर चरित, 5, 27
15. अध्यात्म रामायण, 3, 10 , 1 /44
16. वही, 3, 10, 2 /25
17. वही, 3, 10, 1/44
18. राम रसिकावली, रघुराज सिंह, पृ. 118
19. मानस के मोहक प्रसंग, रामदेव प्रसाद सोनी, 'मानस-मधुकर', सन् 2001 ई.
20. वाल्मीकि के ऐतिहासिक राम : सत्याग्रही राम, विश्वनाथ लिमये, पृ. 163
21. शबरी—पम्पासर, नरेश मेहता, पृ. 19
22. शबरी—त्रेता, नरेश मेहता, पृ. 9
23. शबरी, नरेश मेहता, पृ. 7

एशियाई जीवन, साहित्य एवं कला में राम

(मानवीय मूल्य, आदर्श एवं मर्यादा के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. दिलीप शर्मा/प्रत्याशा कौशिक

भौतिक वस्तुवादी जगत् से ओतप्रोत वर्तमान समय के वातावरण से जर्जरित दिशाहारा नगरीय जीवन से लेकर ग्रामीण जनता तक राम का महत्त्व किस हद तक है उसको नापना नामुमकिन ही नहीं बल्कि असाध्य है। आसुरी प्रवृत्तियों के अन्यतम प्रतिमान रावण की उक्ति—**'रामांक भजनो रामादि कयुषीभावो न संजायते'**[1]। आज भले ही अर्थहीन और मिथ्या का भण्डार हो पर अकुष्ठ आस्था के धनी सहज-सरल अधिकांश भारतीयों के लिए रामनाम आत्मोपलब्धि का श्रेष्ठ साधन है। राम का नाम शाश्वत और मानव मूल्य का उत्कृष्ट भण्डार तो है ही, लोकमानस को आन्दोलित और आह्लादित करने में भी समर्थ है। राम समस्त व्यक्तियों की रुचियों, प्रवृत्तियों और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति का समर्थ माध्यम हैं। अतः इसके लिए आवश्यकता है सामाजिक तथा राष्ट्रीय हित एवं वैशिष्ट्य और अन्ततः मानव मूल्यों को बनाये रखने की, मानस के माध्यम से राष्ट्रीय चरित्रों के सामाजिक और राष्ट्रीय महत्त्व के पहलुओं से समसामयिक सामाजिक और राष्ट्रीय पहलुओं को अविच्छिन्न कर देखने की, परिवर्तित युग बोध के परिणामस्वरूप अविकसित मूल्यों के अनुरूप रामादि चरित्र के मनोविज्ञानसम्मत अध्ययन की।

रामकथा के प्रतिपादित मूल्य प्रारम्भ से ही भारतीय जन की सांस्कृतिक चेतना को बल प्रदान करने में शाश्वत सिद्ध हुए हैं। मध्ययुगीन रामकथात्मक रचनाओं में प्रतिपादित ईश्वरवाद और भक्तिवाद वर्तमान सन्दर्भ में भले ही बहुत-कुछ अर्थ खो चुके हों, फिर भी मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में राम की प्रतिष्ठा एवं समसामयिक सामाजिक सन्दर्भ में राम की चारित्रिक सार्थकता आज भी अक्षुण्ण और प्रेरणाप्रद है। राम-चरित्र में निहित मूल्यों से पाठकों को अवगत कराना, राष्ट्र में भावात्मक एकता स्थापना की दिशा में किया जाने वाला महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कर्तव्य है।

भारतीय जीवन के कण-कण में राम की महिमा व्याप्त है, उनकी जीवन-शैली में मानवीय मूल्यों का यथोचित आदर, सामाजिक जीवन में सुखपूर्वक जीने के लिए एक सुन्दरतम आदर्श और व्यावहारिक जीवन को आगे ले जाने के लिए अनुपम मर्यादा—चाहे वह वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा में हो, या पारिवारिक-व्यावहारिक स्थिति के माध्यम से हो अथवा लोकमत और साधुमत की अनुकूल स्थिति में हो। राम ने माता, पिता, भाई, गुरु, पत्नी एवं सेवकों के प्रति किस प्रकार व्यवहार रखकर चलना चाहिए उसका दिशानिर्देश करते हुए अनेक स्थलों पर अपने भाव व्यक्त करके परवर्ती लोगों को सामाजिक-पारिवारिक-व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया है, मानस के चित्रकूट प्रसंग में मर्यादा का उत्तम नमूना हमें देखने को मिलता है, यथा, भरत और जनक समाज की उपस्थिति में—परिवार के

जितने भी सम्भावित सम्बन्ध हो सकते हैं, सबका सुन्दर उल्लेख करते हुए राम का पारस्परिक व्यवहार अत्यन्त मर्यादापूर्ण दिखाया है। इसका अर्थ यह होता है कि राम ने जिस मर्यादा की स्थापना की उस मर्यादा को लेकर हमारा परवर्ती समाज आगे बढ़े—

"कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं।।
लखि रूख सठी रानि जागयउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ।।"

राम के जीवन में मर्यादा का स्थान सर्वोपरि है। राम के चरित्र में मर्यादा का एक अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। राम के जीवन में उनका अपना कुछ न था। उनका जीवन एक आदर्श मानवीय जीवन था। वे अपने लिए न जी कर आदर्श के लिए, एक उत्कृष्ट ध्येय के लिए जिये। राम के द्वारा सती की अग्नि-परीक्षा मानव जाति के इतिहास में एक ऐसा 'न भूतो न भविष्यति' सर्वस्व स्वार्थ त्याग है, जो विश्व साहित्य में भी असम्भव है। कर्तव्य-पालन की निष्ठुर वेदी पर अपने जीवन की सर्वाधिक अमूल्य निधि दाम्पत्य प्रेम का बलिदान कर देना राम जैसे अप्रतिम चरित्र के लिए ही सम्भव था, इसलिए राम का जीवन आदर्श मानव जीवन का मापदण्ड बन पड़ा है। राष्ट्रपिता गाँधीजी ने भी संसार में क्रूरता, हिंसा, असहिष्णुता तथा भयंकर दुष्कृतियों को देखकर उनसे व्यथित एवं मर्माहत होकर अशान्त चित्त को 'रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीता राम' की धुन से शान्ति प्रदान की थी। अतः आज भयावहतापूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशा से शान्ति के लिए 'रामनाम का जप' अति आवश्यक बन पड़ा है।

भारतीय जीवन के कण-कण में राम की महिमा व्याप्त है। अर्थात्—

"सकल पदारथ यहिं जग माहीं करमहीन नर पावत नाहीं।।"

'विद्या ददाति विनयम्' का आदर्श राम के चरित्र में कूट-कूटकर भरा हुआ है—इसका उदाहरण हमें 'रामचरितमानस' से लेकर तुलसी की अन्य रचनाओं में प्राप्त होता है—राम का चरित्र क्या युद्ध, क्या प्रेम, क्या माता-पिता, क्या गुरु-इष्ट की भक्ति, क्या भ्रातृ-कनिष्ठ स्नेह, क्या शरणागत वत्सलता, क्या आनन्द के क्षणों की विह्वलता में, क्या राजतिलक के शुभ-संवाद में, क्या वनवास की आज्ञा, क्या घर और क्या बाहर—सर्वत्र, सदैव और सर्वथा शील और मर्यादापूर्ण रहा। युद्ध क्षेत्र में उन्होंने कभी भी किसी प्रकार का ऐसा कार्यकलाप नहीं होने दिया, और न स्वयं किया जो धर्मयुद्ध के प्रतिकूल हो—यह आदर्श दिखाकर हमें सचेत करने का प्रयास किया है। आज लोगों में वह सचेतनता बिल्कुल नहीं रही जिससे सामाजिक जीवन विडम्बनापूर्ण और अशान्त बन गया है।

राम की शरणागत वत्सलता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण तब देखा जाता है जब अपने शत्रु के भाई विभीषण को उन्होंने अति आदरपूर्वक शरण दी। दूसरा, विमाता कैकेयी के द्वारा उन्हें वनवास की राह मिलने के बावजूद उनके प्रति किंचित मात्र भी रोष और क्षोभ उत्पन्न न होने वाली प्रवृत्ति से राम का शील स्वभाव ही उद्‌घाटित होता है। उन्होंने माता से कहा—

"सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी, जो पितु मातु वचन अनुरागी
तनय मातु पितु तोष निहारा, दुर्लभ जननी सकल संसारा।"

पर राम के इस प्रकार के उहद्‌गारों के विपरीत आज विमाता क्या अपने जन्मदाताओं के प्रति, सगे भाई के प्रति, अपने ही बेटा-बहू-बेटियाँ जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं—उनसे सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पतन की दिशा उद्‌घाटित होती है—भ्रातृ स्नेह का अपूर्व निदर्शन राम-चरित्र है। भरत के प्रति राम का स्नेह भाव यहाँ द्रष्टव्य है—

"भरत प्रानप्रिय पावहि राजू। विधि सब विधि मोहि सन्मुख आजू।
जो न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिउ मोहि मूढ़ समाजा।।"

वनवास के समय राम के साथ जाने का हठ करती हुई अपनी पत्नी के प्रति राम के धर्म एवं आदर्शमय वचन यहाँ देखने को मिलते हैं–

"एहि ते अधिक धरम नहि दूजा। सादर सास-ससुर पद पूजा।"

अर्थात् किसी परिवार में बहू का दायित्व समस्त घर के काम को सँभालने के साथ-साथ अपने सास-ससुर की भी परिचर्या करना माना जाता है। कितने सुन्दर आदर्श की बात राम ने कही।

राम के चरित्र में उद्दण्डता का गुण बिल्कुल नहीं है। वह हर कार्य अति गम्भीरता से सोच-विचारकर ही करते हैं–राम के वनवास में रहते हुए, भरत के चित्रकूट में उन्हें मिलने जाते समय का उल्लेख करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि जब कोई व्यक्ति शंका से आतुर विचारहीन बनकर किसी का प्राणनाश करने को उद्यत हो जाता है–जैसे लक्ष्मण भरत के आगमन पर अत्यधिक शंकित होकर उनको सेनासहित मारने को क्रोधाभिभूत हो उठते हैं, तब राम द्वारा लक्ष्मण को शान्त करते हुए भरत के स्वभाव पर प्रकाश डालने के साथ-साथ राम का विनयी स्वभाव भी उद्घाटित होता है। लक्ष्मण पर क्रोधित परशुराम से राम कितनी विनम्रता के साथ मधुर वचन बोलते हैं–

"करिउ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धरि मुनि ग्यानी।"

इस प्रकार राम के आदर्श शील चरित्र का आभास इन कथनों से हमें स्पष्टतः मिल जाता है। मानव सभ्यता का ऐसा कोई दुर्लभ गुण नहीं है, जो राम के चरित्र में न मिलता हो।

राम के चरित्र में मानवीय मूल्य की परख के लिए विभिन्न उदाहरणों में से सबसे उत्तम उदाहरण राम-केवट संवाद, शबरी संवाद आदि हैं। राम के हृदय में जाति-भेद, वर्ग-वैषम्य आदि का भाव बिल्कुल नहीं था। साथ ही वे प्रत्येक व्यक्ति और पौरुष को यथोचित सम्मान देते थे। उनके लिए सबका अपना-अपना निजी व्यक्तित्व होता है और वे सब उस व्यक्तित्व के द्वारा प्रभावशाली बनते हैं।

उदाहरणस्वरूप, वनगमन के समय गंगा पार करते समय केवट जैसे छोटे आदमी का हठ मानकर उसी के मत के अनुसार चलने को तैयार होना, शबरी जैसी निम्नवर्ग की औरत के हाथों से जूठे बेर खाना आदि मानव मूल्य के यथोचित आदर की बात को प्रमाणित करता है। राम भारतीय संस्कृति के आदर्श हैं। मानवीय मूल्यों के प्रति उनके जीवन में विशेष आकर्षण विद्यमान है। अतः उनके आदर्श चरित्र ने भारतीय जीवन के सभी पक्षों को ओज एवं शक्ति प्रदान करने का अद्भुत कार्य किया है। राम को आधार मानकर हम आदर्श जीवन जी सकते हैं। उनके चरित्र से हम उदात्त मानवीय गुण ग्रहण कर सकते हैं और इन्हीं गुणों का संचय करके आदर्श समाज की स्थापना एवं समाज-मंगल की भावना का प्रचार-प्रसार कर सकते हैं जो वर्तमान समाज के लिए अत्यन्त ज़रूरी है।

लोक-संग्रह की भावना से ओतप्रोत होकर तुलसी ने भी सही कहा है कि, "राम आदर्श लोकसेवक, आदर्श गृहस्थ एवं आदर्श शासक रहे हैं। कौशल्या जैसी आदर्श माता, लक्ष्मण और भरत जैसे आदर्श भाई, सीता जैसी आदर्श पत्नी, हनुमान जैसे आदर्श सेवक एवं भक्त तथा सुग्रीव जैसे आदर्श मित्र आदि की कल्पना से लोकसंग्रह की भावना ही स्पष्ट हो रही है।"[2]

राम भारतीय जीवन का 'समाजशास्त्र' हैं। आज के आपाधापी, भागदौड़, संकुचितता, संकीर्णता तथा सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास के युग में विश्व मानवता को यदि कोई सद्मार्ग पर ले

जा सकता है तो वह है रामनाम का जाप। श्रीराम केवल एक व्यक्ति नहीं वरन् वन्दन व्यक्तित्व के अधिकारी हैं, जिनका जीवन हमें देता है उत्तम संस्कार, तथा धार्मिक दृष्टिकोण का परिमार्जन-परिष्करण करने का एक सच्चा आदर्श।

राम के चरित्र में त्याग, कर्तव्यनिष्ठा, भ्रातृप्रेम, गुरु तथा माता के प्रति श्रद्धा और राष्ट्रप्रेम के आदर्श निहित हैं। राम का जीवन मानव संघर्ष की गाथा है जो असत्य पर सत्य की, अत्याचार पर धर्म की तथा रावणत्व पर रामत्व की विजय घोषणा कर रहा है। तुलसीदास जैसे महान कवि ने रामकथा के माध्यम से मनुष्य के अन्दर विद्यमान सर्वोत्तम गुणों को संसार के सामने रखा है।

राम में सामाजिक मर्यादावाद, व्यावहारिक आदर्शवाद, धार्मिक उदारता, सम्पूर्ण जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति, समन्वय की सजीव मूर्ति का प्रतीक जैसा है तथा राक्षसरूपी अपशक्ति के विनाश करने की महाशक्ति से सम्पन्न उत्तम पौरुष भी है। उनका आदर्श रहा—

"करम प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करइ सो तस फल चाखा।"

रामकथा का सबसे उत्तम आदर्श है इसमें निहित 'सत्यमेव जयते' जो समस्त पौरसत्य संस्कृति की आदर्श भावना का मेरुदण्ड। अतः भारतीय साहित्य, काव्य, कला, संस्कृति-सभ्यता आदि सभी रामकथा में प्रतिपादित आदर्शों द्वारा अनुप्राणित रहे हैं। इसलिए राम को सचमुच हमारी सांस्कृतिक उपलब्धियों का श्रेष्ठ आदर्श, श्रेष्ठ मर्यादा तथा श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों का नायक कहना उचित होगा। अतः 'सत्यमेव जयते' की उद्घोषणा हम इस प्रकार कर सकते हैं—

"सुनहु सरला कह कृपानिधाना। जेहि जय होई सो स्पन्दन आना।
सौरज धीरज तेहि रय-चाका। सत्य सीत दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे। समा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सरथी सुजाना। बिरति तर्म, सन्तोष कृपाना।
दान-परसु बुधि सक्ति प्रचण्ड। बर विग्यान कठिन कोदण्डा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। क्षम जप नियम सिलीगुप्त नाना।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। यदि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय आस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें असरय होइ दृढ़ जुनहु सखा मति धीर।"

(मानस)

अर्थात् विजय प्राप्ति के साधन (असत्य पर सत्य की विजय) रूपी रथ का अर्थ है हमारे व्यक्तित्व को हमेशा विवेक, वैराग्य, शील, सदाचार, विश्वप्रेम आदि उदात्त गुणों से युक्त होना होगा। शौर्य और धैर्य के साथ सत्य और शील को दृढ़ता से अपनाकर, बल-विवेक और परहित की भावना से बढ़ते हुए, क्षमा-कृपा और समता से नियन्त्रित होते हुए, भगवान की भक्ति के पथ पर वैराग्य, सन्तोष, दान का आश्रय लेकर, बुद्धि और ज्ञान का सम्बल धारणकर सम, यम, नियम से मन को वश में करके गुरु के निर्देश से अग्रसर होकर ही मनुष्य जीवन-संग्राम को जीत सकता है। मानव-जीवन में उदात्त भावों की यह कल्पना भारतीय संस्कृति का ही वरदान है। इस संस्कृति की पोषण शक्ति हमें राम के चरित्र में देखने को मिलती है।

राम आदर्श समाज की स्थापना, समाज मंगल की भावना के प्रचार-प्रसार की उद्घोषणा करने वाले कारक हैं, उनके चरित्र से हम उत्तम मानवीय गुणों का आधार ग्रहण करने के साथ-साथ आदर्श

लोकसेवक, आदर्श गृहस्थ एवं आदर्श शासक की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। राम ने स्वयं में देवत्व होने का दावा कभी नहीं किया, उलटे एक सामान्य व्यक्ति की भाँति श्रेय और प्रेय के बीच संघर्ष किया है। वे अपने माता-पिता, भाई या पत्नी इन सबके लिए आसमान स्पर्श कर लें ऐसा प्रेम और त्याग का रूप हम तब देख सकते हैं जब हम राम का भगवान के रूप में नहीं, बल्कि एक मनुष्य के रूप में, दशरथ और कौशल्या के पुत्र के रूप में, अयोध्या के राजकुमार के रूप में, भरत और लक्ष्मण के भाई के रूप में, रावण के शत्रु आदि विविध मानवीय रूप में दर्शन कर सकें। अतः राम चरित्र हमारे लिए मात्र आराधना की ही वस्तु नहीं बल्कि उनका चरित्र हमारे लिए एक महान आदर्श और कर्तव्य जैसा है।

सन्दर्भ

1. असम प्रान्तीय राकथा—पुरोवाक्, डॉ. 'मागध'
2. आलोचक डॉ. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', हिन्दी साहित्य परिचय, पृ.33

आधुनिक रामकाव्य का मानवीय पक्ष

डॉ. शैलजा के.

आधुनिक युग एक ओर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति और वैज्ञानिक चिन्तन का युग है तो दूसरी ओर वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन मूल्यों के विघटन का भी दौर है। इस परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में रामकाव्य की महत्ता ज़रा भी कम नहीं हुई है। मध्यकाल की अपेक्षा आधुनिक काल में रामकाव्य का व्यापक प्रणयन हुआ जो अपने में विशिष्ट और पुष्कल है। युगान्तकारी संवेदना और अभिनव प्रतिमानों की दृष्टि से आधुनिकयुगीन रामकाव्य भी रामचरितमानस की ही तरह महत्त्वपूर्ण है। इस युग में हिन्दी में अनेक रामकाव्यों की रचना हुई है। इसके मूल में तत्कालीन राष्ट्रीय, सांस्कृतिक उत्थान एवं परिवर्तन देखने को मिलते हैं। कहा जाता है, राम अलौकिक ईश्वरीय अवतार नहीं बल्कि परिस्थितियों की विवशताओं को झेलने वाले साधारण मानव हैं। रावण के साथ युद्ध की पूरी तैयारी हो जाने पर राम का मन संशयग्रस्त हो जाता है। वे व्यक्तिगत कारणों से रावण से युद्ध करना उचित नहीं मानते हैं। उनकी धारणा है कि रावण द्वारा अपहृत सीता की प्राप्ति का प्रश्न उनके व्यक्तिगत जीवन से जुड़ा हुआ है, इसके समाधान के लिए कोटि-कोटि लोगों के संहार का कोई औचित्य नहीं है। उन्हीं के शब्दों में—

व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ
क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें।[1]

उनके विचार हैं—

समर्पित है यह
धनुष, बाण, खड्ग और शिरस्त्राण
मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए
बाणबिद्ध पाखी-सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए
सीता भी नहीं।[2]

यहाँ कवि राम को मानवता के श्रेष्ठतम उपासक के रूप में प्रस्तुत करता है। राम का कथन है—

मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हाँ, उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु[3]

राम को द्वन्द्व एवं अनास्था से मुक्त करने का उपक्रम भी यहाँ प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार कुरुक्षेत्र में अर्जुन के संशयग्रस्त होने पर कृष्ण उसे गीतोपदेश देते हैं और अर्जुन अपने कर्म पथ पर अग्रसर होते हुए युद्ध करने लगता है, उसी प्रकार यहाँ राम को भी दशरथ और जटायु की प्रेतात्माएँ कर्म का उपदेश देती हैं। जैसे–

परिस्थितियाँ धेनु हैं, दुहो इनको,
निठुर उँगलियों से दुहो इनको।[10]

(संशय की एक रात नरेश मेहता)

दशरथ की प्रेतात्मा राम को आदेश देती है कि पुरुषार्थ के बल पर परिस्थितियों की धेनु को दुहना है। रामेश्वरम में युद्ध के पूर्व राम के मन में यही सवाल उठता है और उन्हें आकुल कर देता है कि क्या युद्ध अनिवार्य है?

लेकिन अन्त में वे युद्ध को जीवन की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं जिससे न्याय और अन्याय का निर्णय होता है। लेकिन वे युद्ध को अन्तिम मार्ग के रूप में ही स्वीकार करते हैं। कवि का मानना है कि युद्ध हर पीढ़ी का दायित्व है जिसे निभाना पड़ता है, जिससे इतिहास बदलता है।

युद्ध
मन्त्रणा नहीं
एक दर्शन है राम
अन्तिम मार्ग है।[4]

राम का कथन है–

लक्ष्मण
मैं नहीं कापुरुष
युद्ध मेरी नहीं है कुण्ठा
पर युद्ध प्रिय भी नहीं।[5]
यदि मैं कर्म मात्र हूँ
तो यह कर्म का संशय है।
यदि मैं मात्र क्षण हूँ
तो यह क्षण का संशय है।
यदि मैं मात्र घटना हूँ
तो यह घटना संशय है।
पर यह संशय है,
संशय है, संशय है।[6]

यहाँ सीता की मुक्ति की समस्या को मानव स्वतन्त्रता की समस्या के रूप में चित्रित किया गया है। प्रस्तुत काव्य में राम के चरित्र के मानवीय पक्ष पर ही बल दिया गया है।

सीता राम की पत्नी हैं, जो उनके वैयक्तिक जीवन से सम्बद्ध हैं, अतः व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए युद्ध उन्हें मान्य नहीं है। लेकिन युद्ध के सामूहिक निर्णय को स्वीकार करते ही सीता की समस्या जो व्यक्तिगत थी, मानव स्वतन्त्रता की सामाजिक समस्या बन जाती है। राम का मानसिक द्वन्द्व एवं संकट के क्षण और सीता को मानव स्वतन्त्रता का प्रतीक मानना भी प्राचीन रामकाव्य में उपलब्ध नहीं होता। ये तो वर्तमान परिवेश से उपजी हुई जीवन की ख़ास स्थिति है।

'प्रवाद पर्व' रामायण कथा के मार्मिक प्रसंगों पर आधारित होते हुए भी समकालीन बोध से सम्पृक्त है। इतिहास और प्रति इतिहास; प्रति इतिहास और तन्त्र; शक्ति : एक सम्बन्ध, एक साक्षात;प्रति इतिहास और निर्णय तथा निर्वेद विदा इन पाँच खण्डों में विभाजित इस गीतिकाव्य में प्रशासन एवं लोक सम्बन्धों से जुड़ी समस्याओं को चित्रित किया गया है और उनका समाधान मानवीय परिप्रेक्ष्य में खोजा गया है। कवि का कथन है—

व्यक्ति
चाहे वह राजपुरुष हो या
इतिहास पुरुष अथवा
पुराण-पुरुष
मानवीय देश-कालता से ऊपर नहीं होता राम[7]

प्रवाद पर्व में कवि रजक को प्रति इतिहास के रूप में देखते हैं—

जब भी
ऐसी तर्जनी उठती है
तब
राजतन्त्र और इतिहास
कोलाहल से भर उठते हैं
क्योंकि
वह मात्र अँगुली ही नहीं होती राम
उसका एक प्रति ऐतिहासिक व्यक्तित्व होता है,
महत्त्व भी।
हवा में ही सही
परन्तु प्रश्न में उठा
अनाम या
मनुष्य मात्र का हाथ
प्रति इतिहास होता है राम [8]

राजसभा में राम रजक का पक्ष लेकर अपने भाइयों के तर्कों का खण्डन करना हैं, उनकी नीति का आधार प्रजा प्रेम है, भय नहीं—यह प्रतिपादित करता है।

यदि एक अनाम साधारण की तर्जनी ने
सीता के चरित्र पर
प्रश्नचिह्न लगाया है तो
उसे किसी राजाज्ञा के द्वारा
इतिहासहीन बना देने के अपेक्षा
उस अनाम साधारण जन के
इस वाणीहीन
प्रति इतिहास के सम्मुख
अपनी विधि-मण्डित
ऐतिहासिकता की परीक्षा दो राम[9]

सीता के वनगमन का निर्णय जो वह स्वयं लेती हैं, उसमें आधुनिक स्वत्व सम्पन्न स्त्री की झलक है जिसके आगे राम चकित रह जाते हैं।

नरेश मेहता का दूसरा रामकाव्य 'प्रवाद पर्व' आपातकालीन बोध से जुड़ा हुआ है। इसका कथानक अयोध्या के राजप्रासाद और राजदरबार में व्याप्त है। इसमें राम, सीता के लोकापवाद के कारण द्वन्द्वग्रस्त रहते हैं और कर्म की प्रासंगिकता पर विचार करते हैं। जनता की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करते हैं। सीता को त्याग कर अपने सुखों से वंचित रहने का निर्णय लेते हैं। सीता अपनी पवित्रता को स्थापित करने के लिए स्वयं वनगमन के लिए उद्यत हो जाती हैं। यहाँ भी मानवीय धरातल पर चरित्रों का गठन किया गया है।

औद्योगीकरण के साथ बढ़ती वैज्ञानिकता और यान्त्रिकता की वजह से आधुनिक समय अनिश्चयात्मक एवं आशंकित था। जीवन एक ओर यान्त्रिक हो गया है तो दूसरी ओर साहित्य में विज्ञान के अभिशप्त स्वरूप के प्रति विरोध भी प्रकट किया गया है जो मानव जीवन की तरलता को बचाकर जीवन को शुष्क बनने से रोकता है। इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर आधुनिक रामकाव्य में भी अलौकिकता के बदले स्वाभाविकता और बुद्धितत्त्व की प्रधानता को दिखाया गया है और राम के ईश्वरीय स्वरूप से अधिक मानवीय स्वरूप को प्रत्यक्ष किया गया है। अलौकिक गुणों से युक्त होते हुए भी देवता, वानर, राक्षस आदि सबको मानवीय स्तर पर चित्रित किया गया है। जीवन के प्रति रागात्मक दृष्टिकोण रखने वाले रामकाव्य में प्रेमतत्त्व की भी प्रधानता है जो दाम्पत्य प्रेम, भ्रातृप्रेम, राष्ट्रप्रेम, विश्वबन्धुत्व, श्रद्धा, वात्सल्य, स्नेह आदि रूपों में उजागर हुआ है। पात्रों में अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और पूरी मानवता के प्रति रागात्मक दृष्टिकोण को दर्शाया गया है। सामाजिक-आर्थिक समानताओं के प्रति आदर व्यक्त किया गया है और सहिष्णुता, सहृदयता और सहानुभूति के साथ अनेक उपेक्षित पात्रों और प्रसंगों को रामकथा में स्थान दिया गया है। साथ ही वसुधैव कुटुम्बकम् की धारणा को अभिव्यक्ति मिली है और मानवतावाद तथा मानवोत्कर्ष की भावना को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसके अलावा जीवन के बदलते सन्दर्भ और नवीन प्रतिमानों के आलोक में भारतीय संस्कृति की नयी व्याख्या भी की गयी है। राम को सांस्कृतिक नायक माना गया है। प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था के बदले सामाजिक समानता, पारिवारिक आदर्शों में प्रेम की महत्ता, आर्थिक व्यवस्था में श्रम और त्याग का स्थान, शासन में प्रजातन्त्र की स्थापना तथा दार्शनिकता में मानवतावादी दृष्टि आदि धारणाओं का समन्वय आधुनिक रामकाव्य के सांस्कृतिक पहलू हैं। साथ ही जातीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था भी व्यक्त की गयी है।

आधुनिक रामकाव्य में राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीयता की भावना अनेक रूपों में व्यक्त हुई है। जैसे भारतीय धरती के सौन्दर्य का रागमय वर्णन, भारत के अतीत का गौरवगान आदि। राष्ट्रीयता का यह रूप आधुनिकयुगीन रामकाव्यों में पाया जाता है जो पूर्ववर्ती काव्यों में उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह आदि आदर्श भी प्रमुख स्थान रखते हैं। राम-रावण युद्ध में युद्ध की अपेक्षा अहिंसा का तत्त्व प्रमुख है। राम के मन के द्वन्द्व एवं संशयग्रस्तता के द्वारा हिंसा के स्थान पर अहिंसा का प्रतिपादन किया गया है।

आर्य धर्म के रक्षक, मानवता के त्राता, प्रजाप्राण, लोकनायक श्रीराम भारत भूमि के कण-कण में रमे हुए हैं। समय की विषम और दुराक्रान्त परिस्थितियों ने श्रीराम को उत्पन्न किया, तब से लेकर हर युग के संक्रान्ति काल में उनका आदर्श और प्रेरक जीवन कवि प्रतिभा के गर्भ से पुनः अवतीर्ण होकर जनमानस को सत्पथ दिखलाता आ रहा है।

यह बात तो ठीक है कि रामकाव्य को हमेशा धार्मिक काव्य ही मान लिया जाता है। उसके पात्रों ने आध्यात्मिक और चारित्रिक स्तर पर भी जनता को अत्यन्त प्रभावित किया है। लेकिन यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि धार्मिकता से परे उसका मानवीय धरातल है क्योंकि रामकथा के पात्र है तो मानव और उनके अपने गुण विशेष होते हैं, उनकी अपनी नियति एवं जीवन-बोध होते हैं जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता। आधुनिक रामकाव्य राम के महामानव की परिकल्पना के प्रति अधिक आग्रहशील है। इसमें हम मध्यकालीन पृष्ठभूमि से भिन्न वर्तमान जीवन की विसंगतियों एवं वैचारिक अन्तर्विरोधों का साक्षात्कार कर सकते हैं। 'संशय की एक रात' और 'प्रवाद पर्व' दोनों काव्य वर्तमान युग की जटिलताओं और विसंगतियों को व्यक्त करते हैं। यहाँ राम आज के अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त, प्रश्न-प्रतिप्रश्नों के घेरे में आबद्ध साधारण मानव का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह द्वन्द्व एवं अनास्था की स्थिति वर्तमान युग की ख़ास विशेषता है जो मध्ययुगीन रामकाव्यों में नहीं है। आधुनिक रामकाव्यों में वर्तमान जीवन का संस्पर्श दिखाई देता है।

भारतीय चिरन्तन आदर्श तथा समसामयिक मूल्य संक्रमण के बीच भारतीय जनता को बौद्धिक तथा भावात्मक प्रेरणा देने में रामकाव्य के पात्र एवं प्रसंग सक्षम रहे हैं। किसी भी युग विशेष के साहित्य में जिन परम्परित और प्रगतिशील तत्त्वों का समावेश रहता है उनके आकलन के लिए रामकाव्य सहायक बनता है क्योंकि वह हमारे जातीय जीवन के क्रमिक विकास का इतिहास है। निरन्तर परिवर्तनरत युग और परिवेश की समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय साहित्य ने जिन पात्रों को आकार दिया है, उनके व्यक्तित्व के मौलिक गुण निस्सन्देह रामकथा के ही केन्द्रीय पात्रों के चरित्र सूत्रों से गठित हुए हैं।

'संशय की एक रात' और 'प्रवाद पर्व' दोनों कृतियों में द्वन्द्व एवं अनास्था से मुक्ति का उपक्रम भी देख सकते हैं। युद्ध और शान्ति को लेकर विविध विचार उभरते हैं किन्तु 'संशय की एक रात' में राम युद्ध को अन्तिम मार्ग और नियति मानते हुए युद्ध के लिए उद्यत होते हैं। वे इतिहास के हाथों का बाण नहीं बनना चाहते किन्तु परिस्थितियों ने उन्हें ऐसा करने को विवश कर दिया है और राम का आत्म-मन्थन अन्ततः इस निर्णय पर पहुँच गया है—

ओ मेरे विवेक,
अब यह प्रश्न हो नहीं रहा कि
युद्ध के बाद होगी
शान्ति।
जबकि सम्भव है
युद्ध हो युद्ध का उत्तर हो।
या यह भी सम्भव है कि
शान्ति
युद्ध के समय की एक चेष्टा हो।[10]

राम के इस मानसिक उद्वेलन के कारण ही उन्हें यह स्वीकार करना पड़ता है कि अब मेरा निर्णय सबका है, अपना नहीं। 'प्रवाद पर्व' में तो एक धोबी के कथन का पक्ष लेते हुए सीता के परित्याग का निर्णय लेने वाले राम अपने मानसिक द्वन्द्व, पीड़ा एवं बोझ को राजतन्त्र में उलझकर हलका कर लेते हैं। अत्यन्त उदास होकर सीता के लक्ष्मण के साथ्य में वन की ओर प्रस्थान को देखते हैं और दुखी होते हैं। लेकिन प्रारब्ध के कड़े अनुशासन को स्वीकार कर मनःशान्ति प्राप्त करते हैं। जैसे—

राम यही है मनुष्य का प्रारब्ध, कि
कर्म
निर्मम कर्म
असंग कर्म करता ही चला जाये।
भले ही वह कर्म
धारदार अस्त्र की भाँति
न केवल देह
बल्कि उसके व्यक्तित्व और
सारी रागात्मकताओं को भी काटकर फेंक दें।[11]

किन्तु इस सन्दर्भ में यह बात प्रमुख है कि कवि के सम्मुख पात्र साध्य नहीं, बल्कि उनके चिन्तन के परिष्कृत तथा पूर्ण माध्यम के रूप में आते हैं। इन पात्रों को उन्होंने नवीन सन्दर्भों में ढलने की स्वतन्त्रता प्रदान की है, अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि के अनुसार नियन्त्रित नहीं किया है। यहाँ कवि अपनी संशयग्रस्त मनःस्थिति को राम-लक्ष्मण जैसे आदर्श पात्रों के साथ रावण जैसे प्रति पात्रों के सन्दर्भ में भी व्यक्त करता है।

'संशय की एक रात' में लक्ष्मण मानव की अदम्य जिजीविषा के प्रतीक हैं। उनके चरित्र में कर्म एवं शक्ति का आलोक फूट पड़ा है। उनका चरित्र अत्यन्त उद्यत एवं कर्मण्य व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। भाद्रपदीय रात्रि में राम को चिन्ता में निमग्न देखकर जब वे उनके समक्ष उपस्थित होते हैं, तब वे आज्ञाकारी अनुज प्रतीत होते हैं। लक्ष्मण सुग्रीव के साथ की गयी सन्धि का समाचार देने के लिए उनके पास आते हैं और राम—तुम्ही मेरी इन्द्रियाँ हो—कहकर उन्हें कुछ भी करने की आज्ञा दे देते हैं। लक्ष्मण से राम की निराशा छिपी नहीं रह पाती और वे अपने भाई को उस निराशा की स्थिति से उबारने के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। राम के प्रति उनके मन में अनन्य निष्ठा है। प्रारम्भ में तो उन्हें यही लगता है कि सीता की स्मृति ने राम को व्यथित कर रखा है और सम्भव है इसलिए उनको जीवन ही निस्सार लगता हो। लेकिन जब उन्हें इसकी प्रतीति होती है कि राम युद्ध से बचना चाहते हैं, तब उनका मन क्षोभ से भर उठता है—

सन्धि या कि युद्ध
टूटे सन्दर्भ की
मात्र विवशता ही नहीं है।
नहीं हैं हम
केवल परिचालित यन्त्र
किसी अदृश्य
अन्धे हाथों के।[12]

यहाँ लक्ष्मण कर्म तथा शक्ति की दुर्दम्य जिजीविषा और एकनिष्ठ वर्चस्व के प्रतीक बन गये हैं। उनके उद्यत पैरों में संकल्पित प्रज्ञा है, वर्चस्वी निष्ठा है, उत्सर्गित इच्छा है। जब राम स्वयं को शव में चुभे हुए बाण की भाँति महत्त्वहीन मानने लगते हैं और इतिहास के हाथों बाण बनने की अपेक्षा अँधेरों में यात्रा करते हुए खो जाना ही अपनी नियति समझते हैं तब लक्ष्मण उनके इस नियतिवादी दृष्टिकोण का विरोध करते हुए, 'वर्चस्वी निष्ठा और स्वत्व है हमारा कर्म' की अवधारणा उनके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। कर्मवाद का यही प्रखर दृष्टिकोण लक्ष्मण ने राम के सामने रखा है।

वे अपने को किसी अदृश्य अन्धे हाथों का परिचालित यन्त्र मात्र नहीं मानते। सम्भव है अपने इस कर्मपक्ष पर चलते हुए उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़े—

किन्तु,
यह असम्भव है
बन्धु यह असम्भव है
कर्म और वर्चस को
छीन सके कोई भी
जब तक हम जीवित हैं।[13]

इन पंक्तियों में उनकी अदम्य जिजीविषा और असत्य के विरुद्ध दुर्धर्ष युद्ध-कामना ही परिलक्षित होती है।

इसके अलावा 'संशय की एक रात' में हनुमान पददलित साधारण जन के प्रवक्ता-रूप में दिखाई देते हैं। हनुमान रामकथा के एक अनिवार्य चरित्र हैं किन्तु 'संशय की एक रात' में उनका चरित्र केवल परम्परा-पोषित आदर्श सेवक का ही नहीं रह गया है वरन् युगीन दृष्टि की सापेक्षता के अनुसार कवि श्री नरेश मेहता ने उनके चरित्र का पुनःसंस्कार किया है। इस कृति में चित्रित हनुमान तुलसीदास द्वारा वर्णित केवल आज्ञाकारी सेवक न होकर एक ऐसे सेवक के रूप में मूर्तिमान हुए हैं, जिसका व्यवहार अपने स्वामी से मित्रवत है। इसीलिए वे राम के दुविधाग्रस्त संशयी मन को कर्म एवं पौरुष की ओर प्रेरित करते हैं। जब उन्हें राम की युद्ध के प्रति वितृष्णा का ज्ञान होता है और उन्हें ज्ञात होता है कि सीताहरण को राम केवल अपनी व्यक्तिगत समस्या मानते हैं तब उन्हें यह तर्क नितान्त मिथ्या प्रतीत होता है। यदि सीताहरण उनकी व्यक्तिगत समस्या होती तो कोटि-कोटि जनों का यह समूह युद्ध की अभिलाषा लेकर रामेश्वरम में क्यों एकत्रित होता—

यदि यह राम की ही
व्यक्तिगत समस्या होती।
रघुकुल के सारे दुखों के कारण राम
यदि इनका आवाहन करते तो
सम्भव था
जो कुछ कहते हैं
सब सम्भव था।[14]

लक्ष्मण की ही भाँति हनुमान भी लघु मानव में निहित अदम्य जिजीविषा, शक्ति एवं निष्ठा का व्याख्यान करते हैं। कवि ने हनुमान को लघु मानव अर्थात् साम्राज्यवादी शोषक द्वारा प्रताड़ित, प्रपीड़ित सामान्य मानव समुदाय के प्रखर प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है। उनकी ओजस्वी वाणी में इसी पदमर्दित और शोषित मानव समुदाय की पौरुष से युक्त साहसी निष्ठा मुखरित हुई है—

पर हे रघुकुल-तिलक
किसके विरुद्ध
ये कोटि-कोटि साधारण जन
महायज्ञ के बौने होता
ये लाघव समग्र
है पंक्तिबद्ध

एकत्र अभियान व्यग्र
बन कुलिश वज्र।[15]

हनुमान के अनुसार इन लघु मानवों को यह अजेय शक्ति, अपूर्व निष्ठा और अमित साहस राम ने ही प्रदान किया है जो काली, दुबली, मटमैली देहों के इन बौनों में प्रथम बार जागा है। यह केवल राम के प्रभामण्डित व्यक्तित्व का ही पुरस्कार है। उनके लिए ही ये लघु मानव दुर्गम वन पथों और कठोर पर्वतों को चीरने को तत्पर हैं। राम ही वह इतिहास-पुरुष हैं जो इन छोटे-छोटे व्यक्तियों, परिवारों और सामन्त राज्यों की नियति बन गये हैं। राम ने ही रावण द्वारा पीड़ित दक्षिण प्रदेश के इन असंख्य साधारण मानवों को स्वतन्त्रता का बोध कराया है। इसलिए हनुमान की दृष्टि में सीता भले ही राम की पत्नी हों, किन्तु इन करोड़ों सामान्य लोगों के लिए तो वे उनकी अपहृत स्वतन्त्रता का प्रतीक हैं–

हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल
प्रतीक है–
रावण अशोकवन की सीता
हम साधारण जनों की अपहृत स्वतन्त्रता[16]

हनुमान के अनुसार ये सामान्य जन कभी भी युद्धप्रिय नहीं रहे और न ही वे युद्ध भाव से इस युद्ध को लड़ेंगे, किन्तु अब वे साम्राज्यवादियों की कुटिल नीति द्वारा प्रदत्त वानर पद से मुक्त होने के लिए छटपटा रहे हैं–

हमारा यह सुन्दर दक्षिण प्रदेश
रावण
या किसी अन्य का उपनिवेश हो
यह स्वीकार नहीं अभ
किसी मूल्य पर[17]

हनुमान शोषितों, पीड़ितों और प्रताड़ितों के प्रतिनिधि हैं, इसलिए जब राम जैसे पौरुषसम्पन्न व्यक्ति उन्हें मिलते हैं तब वे अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा एवं आस्था उन्हें समर्पित कर देते हैं।

परिवर्तित मूल्यों के प्रति जागरूकता आधुनिक रामकाव्यों में दिखाई पड़ती है। सांस्कृतिक संकट, जनतान्त्रिक चेतना और राष्ट्रीय दायित्व, युद्ध और शान्ति, वैयक्तिकता और सामाजिकता आदि अनेक मुद्दे इन कृतियों में मुखर हैं। इनसे जुड़े प्रसंग पूर्ववर्ती रामकाव्य के अर्थ और सीमा का अतिक्रमण कर हमारी रागात्मक प्रतिक्रिया को नवीन सन्दर्भ में उद्वेलित करते हैं। राम को एक सांस्कृतिक नायक, लक्ष्मण को आदर्श अनुज और विश्वकल्याण की कामना का पथिक, भरत को कर्मठ कार्यकर्ता रावण को साम्राज्यवादी, भौतिकवादी और मानवता का उत्पीड़क और विभीषण को विश्वप्रेमी माना गया है। नारी पात्रों में भारतीय नारी का आदर्श उपस्थित किया गया है और उनके त्याग की महिमा गायी है। उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति आदि आधुनिक रामकाव्य की मौलिक सृष्टियाँ हैं, जिन्हें काव्यों में प्रमुख स्थान दिया गया है जो पुरुष की बाधक नहीं साधक होकर आयी हैं। यह काव्य भारतीय संस्कृति की परम्पराओं को विज्ञान, बुद्धिवाद और मनोविज्ञान के सन्दर्भों में अनेक स्तरों पर व्याख्यायित करता है, जो भारत की बहिर्मुखी विविधता के मूल में निहित अखण्डता को आलोकित करता है। रामकाव्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष सांस्कृतिक समन्वय से सम्बन्धित है। इनमें राम को मर्यादा पुरुषोत्तम, विष्णु के अवतार, लोकनायक, महामानव, इतिहास पुरुष आदि

रूपों में चित्रित किया गया है, लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार और सीता को पृथ्वी के गर्भ से जन्मी माना गया है। राम एक ऐसे चरित्र के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं जो ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार, बौद्ध धर्म में बोधिसत्व तथा जैन धर्म में आठवें बलबेव के रूप में स्थापित हो गये। रामकाव्य ने हमारी संस्कृति को इतना प्रभावित किया है कि सारा देश लगभग एक सहिष्णुतावादी आदर्श की ओर उन्मुख रहा है। इसी कारण हमारी सभ्यता में शास्त्रार्थ एवं विचार-विमर्श का प्रचलन रहा है, किसी भी विचारधारा और धर्म को पनपने का वातावरण भी उपलब्ध हुआ है। राम का चरित्र तो इतना उदात्त है कि चौदह वर्ष का वनवास देने वाली माँ कैकेयी और धर्मपत्नी सीता को अपहृत करने वाले रावण के प्रति भी सहिष्णुता प्रकट करता है। आज भी भारतीय जनता अपने देश की आदर्श स्थिति को रामराज्य के रूप में पाना चाहती है। प्रत्येक युग में विभिन्न रचनाकारों द्वारा राम का चरित्र भी युगानुरूप व्याख्यायित हुआ है। भारतीय संस्कृति में ऋग्वेद से लेकर आज तक राम युगानुरूप ढलते गये और मानवता के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक के रूप में विराजमान हैं।

सन्दर्भ

1. संशय की एक रात, नरेश मेहता
2. वही, नरेश मेहता
3. वही, नरेश मेहता
4. वही, नरेश मेहता
5. वही, नरेश मेहता
6. वही, नरेश मेहता
7. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता
8. वही, नरेश मेहता
9. वही, नरेश मेहता
10. संशय की एक रात, नरेश मेहता
11. प्रवाद पर्व, नरेश मेहता
12. संशय की एक रात, नरेश मेहता
13. वही, नरेश मेहता
14. वही, नरेश मेहता
15. वही, नरेश मेहता
16. वही, नरेश मेहता
17. वही, नरेश मेहता

वाल्मीकि रामायण और तुलसी के मानस का तुलनात्मक अध्ययन

छिद्दिकुर रहमान

राम : एक परिचय

राम भारतीय संस्कृति के आदर्श हैं। मानवीय मूल्यों के प्रति उनके जीवन में विशेष आकर्षण विद्यमान है। राम के आदर्श चरित्र ने भारतीय जीवन के सभी पक्षों को ओज एवं शक्ति प्रदान करने का अद्भुत कार्य किया है। शील-विषयक गुणों (विशिष्टताओं) के आधार पर राम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहा जाता है। वे त्याग, कर्तव्यनिष्ठा, भ्रातृप्रेम एवं राष्ट्रप्रेम के आदर्श हैं। राम को सचमुच हमारी सांस्कृतिक उपलब्धियों का श्रेष्ठ आदर्श कहना निरापद है। 'मानस' एक ऐसे महामानव की उज्ज्वल गाथा है जो अत्याचारी दानवी शक्तियों को दूर करने के लिए सदैव तत्पर रहे। राम का जीवन मानव संघर्ष की कथा है, जो असत्य पर सत्य की, अत्याचार पर धर्म की तथा रावणत्व पर रामत्व की विजय की घोषणा कर रहा है। श्रीराम को आधार बनाकर दुनिया-भर में न जाने कितने ग्रन्थों और काव्यों की रचना की गयी है, लेकिन जो लोकप्रियता और प्राथमिकता 'वाल्मीकि रामायण' और तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' की है, वह अन्यत्र कहीं नहीं।

राम का महत्त्व शाश्वत और मानव मूल्यों का उत्कृष्ट भण्डार है, लोकमानस को आन्दोलित और आह्लादित करने में भी समर्थ है। राम समस्त व्यक्तियों की रुचियों, प्रवृत्तियों और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति का समर्थ माध्यम हैं।

भगवान राम आदर्श व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। परिदृश्य अतीत का हो या वर्तमान का, जनमानस ने राम के आदर्श को ख़ूब समझा-परखा है लेकिन भगवान राम की प्रासंगिकता को संक्रमित करने का काम भी किया है। राम का पूरा जीवन आदर्शों, संघर्षों से भरा पड़ा है उसे अगर सामान्य जन अपना लें तो उसका जीवन स्वर्ग बन जाये।

रामायण : एक परिचय

भारतीय सांस्कृतिक जीवन में रामायण एकाएक एक धर्मग्रन्थ, एक श्रेष्ठ महाकाव्य, नैतिक और मानवीय आदर्श का प्रतिष्ठापक महान ग्रन्थ, एशिया महादेश के विभिन्न अंचलों और राष्ट्रों के साथ सांस्कृतिक संयोग स्थापन और भी दृढ़ करने वाला, अन्तर्देशीय मर्यादा प्राप्त एक महत्त्वपूर्ण साहित्यक कृति और प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक स्वच्छ काँच है। इन सब कारणों से 'स्कन्द पुराण' के रामायण महात्म्य में रामायण और राम के गुणानुकीर्तन प्रसंग में लिखा है–

"निस्त गंगासमं तीर्थो नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमा देवा नास्ति रामायणत परम।।"

(रामायण महात्मय–5/20-22)

कुछ शताब्दियों से रामायण की एक महान ग्रन्थ के रूप में भारतीय कवि शिल्पी, विद्वान समाज और जनसाधारण श्रद्धा करते आये हैं और आने वाले दिनों में भी इतना ही आदर और सम्मान करते रहेंगे, ऐसी आशा की जा सकती है। चतुरानन ब्रह्मा ने, महर्षि वाल्मीकि को राम के कीर्तिकलाप के ऊपर रामायण की रचना करने का आदेश देते समय भविष्यवाणी की थी कि—पृथ्वी पर जब तक पर्वतमालाएँ और नदियाँ रहेंगी तब तक रामायण कथा लोकमानस में प्रचलित रहेगी—

"यावत स्थास्यस्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावत रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।"

भारतीय जनमानस पर रामायण और महाभारत—ये दो कालविजयी महाकाव्य युगों-युगों से गम्भीर रूप से प्रभाव डालते आये हैं। लेकिन दोनों की प्रकृति एक जैसी नहीं है। प्राचीन भारतीय समालोचकों ने इन दोनों ग्रन्थों को 'महाकाव्य' के रूप में नहीं स्वीकारा। महाभारत को इतिहास, संहिता, पंचम वेद, आदि पुराण आदि आख्यानों से अभिहित किया गया है जबकि 'रामायण' 'आदि काव्य' और प्रणेता 'वाल्मीकि' 'आदि कवि' के रूप से भारतीय ऐतिह्य में परिचित हैं।

महाभारत के विपरीत रामायण को इतिहास अथवा संहिता न कहकर पण्डित समाज पुराने समय से 'आदिकाव्य' नाम से अभिहित करता आया है। रामायण में इतिहास का सम्बल नहीं है, ऐसा नहीं है। असल में बहुत दिशाओं से ये महाभारत का परिपूरक है। रामायण प्रणेता की दृष्टि प्रधानतः राम कहानी पर काव्यिक रूप में प्रकाश डालने, इतिहास दर्शन, लोकाचार—इन सबके प्रासंगिक रूप से कहानी में समावेश की ओर है।

रामायण को रवीन्द्रनाथ ने 'गृहाश्रम का काव्य' कहा है। व्यक्ति और समाज जीवन में सुख-शान्ति के सुन्दर परिवेश की रचना हेतु जिन आदर्शों की ज़रूरत है, उन्हीं आदर्शों की कहानी है रामायण। रामायण मानो आदर्शों की चित्रशाला है। यहाँ पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्य, भाई के प्रति भाई का प्रेम और भाई के लिए त्याग स्वीकार, पति के प्रति पत्नी का आनुगत्य, प्रजा के प्रति राजा का दायित्व-बोध बड़े अनन्य रूप से चित्रित हुआ है। इसीलिए रामायण एशिया के आबाल-वृद्ध-वनिता हर व्यक्ति के लिए श्रद्धा का ग्रन्थ है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित होने के कारण रामायण पहले रामकथा आख्यानक काव्य के रूप में प्रचलित और लोकप्रिय रही। इक्ष्वाकु वंश के सुतों ने ही शायद राम के बारे में गाथा की रचना की होगी और उसे लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया होगा। रामायण में इस बारे में इस प्रकार का उल्लेख है—

"इक्ष्वाकुणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मानाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्।।"

(रामायण, 1, 5, 5)

अर्थात्, रामायण नामक प्रसिद्ध महान ऐतिहासिक काव्य की अवतारणा इन्हीं इक्ष्वाकुवंशी महान राजाओं की कुल परम्परा में हुई है। बाद में यह काव्य धीरे-धीरे विस्तृत होने लगा। महाभारत के द्रोणपर्व और शान्तिपर्व में संक्षिप्त रामकथा का जो वर्णन मिलता है, उसका उपजीव्य भी शायद यही प्राचीन आख्यानक काव्य है। इन आख्यानक काव्यों को आधार बनाकर वाल्मीकि ने जिस दिन आदि रामायण की रचना की, उसी दिन से रामकथा की विजययात्रा शुरू हुई। रामायण के उत्तर काण्ड में उल्लेख है कि कुशीलव सारे देश में घूम-घूमकर रामायण-गाथा का प्रचार किया करते थे। फलस्वरूप इसकी जनप्रियता धीरे-धीरे बढ़ने लगी। धीरे-धीरे रामकथा इतनी लोकप्रिय हो उठी कि बौद्ध और जैनियों ने भी रामकथा को अपना लिया। 'जातक' में राम को बुद्ध का अवतार माना गया है।

जैनियों ने राम को अष्टम बलदेव माना है। लेकिन इन ग्रन्थों में राम की जो कहानी वर्णित हुई है, वह वाल्मीकि के आदि रामायण से भिन्न है।

रामायण में तीन प्रकार का संग्रह देखने को मिलता है—पहला मुम्बई से निकला हुआ, दूसरा बंगीय या गौड़ीय रामायण, तीसरा उत्तर पश्चिम भारत के लाहौर से निकला हुआ। चौथे प्रकार का रामायण बर्लिन की लाइब्रेरी में हस्तलिखित अवस्था में है, यह सुना गया है।

वर्तमान यूरोप की प्रायः सभी भाषा में रामायण का अनुवाद हो गया है। प्रायः दो सौ पचास शम्बर में ही चीनी भाषा में रामायण का अनुवाद होने का प्रमाण मिला है। उसके बाद पाली भाषा में रामायण की रचना की गयी थी। जावा और बाली आदि द्वीप में भी शायद प्राचीनकाल में ही रामायण का अनुवाद किया गया था।

रामायण का रचनाकाल

रामकाव्य धारा का मूल उद्‌गम स्थल ‘वाल्मीकि रामायण’ है। इससे पूर्व रामकथा का कोई सुव्यवस्थित एवं समृद्ध काव्य नहीं मिलता। ‘वाल्मीकि रामायण’ का रचनाकाल 600 ई. पू. तक माना जाता है। तदनन्तर रामकाव्य का उल्लेख महाभारत के वनपर्व, द्रोणपर्व एवं सभापर्व में मिलता है। वनपर्व में रामोपाख्यान के रूप में रामकथा विस्तारपूर्वक मिलती है, उसका मूलाधार भी ‘वाल्मीकि रामायण’ है।

वाल्मीकि द्वारा आदि रामायण की रचना के समय राम नरश्रेष्ठ थे। विद्वानों के अनुसार उस समय उसमें अयोध्या काण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथावस्तु का वर्णन था और श्लोक थे केवल बारह हज़ार। बाद में काव्योपजीवी कुशीलवों ने श्रोताओं की रुचि और उनकी जिज्ञासा को तृप्त करने के लिए रामायण के लोकप्रिय अंशों को जोड़ना शुरू किया। राम का जन्म कैसे हुआ? रावण कौन था? इन्हीं जिज्ञासाओं के फलस्वरूप आदि काण्ड और उत्तर काण्ड की रचना हुई। कालान्तर में अवतारवाद की कल्पना विकसित होने पर उसमें अवतारवाद भी जुड़ गया।

वाल्मीकि

वाल्मीकि प्राचीन भारतीय महर्षि हैं। वे आदिकवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने संस्कृत में रामायण की रचना की। रामकथा का आदि ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है। वाल्मीकि ने जब रामायण की रचना की, उस समय राम जीवित थे। वाल्मीकि उनके समसामयिक थे। वाल्मीकि रामायण में इसी तरह का उल्लेख मिलता है।

पहले-पहल प्राचीन साहित्य में दो महाकाव्य मिलते हैं—रामायण और महाभारत। रामायण में 24,000 श्लोक हैं और यह सात काण्डों में विभाजित है। इसके रचयिता (स्रष्टा) आदिकवि वाल्मीकि हैं और रामायण आदिकाव्य।

महर्षि वाल्मीकि का जन्म हज़ारों वर्ष पूर्व भारत में हुआ। उन्होंने कब और कहाँ जन्म लिया इस बारे में कोई ठोस जानकारी नहीं है। आश्विन मास की शरद पूर्णिमा को महर्षि वाल्मीकि का जन्मदिवस (वाल्मीकि जयन्ती) मनाया जाता है। एक पौराणिक मान्यता के अनुसार उनका जन्म महर्षि कश्यप और अदिति के नौवें पुत्र वरुण और उनकी पत्नी चर्षणी के घर में हुआ। माना जाता है कि महर्षि भृगु वाल्मीकि के भाई थे। कहीं-कहीं वाल्मीकि को वरुण का दसवाँ पुत्र बताया गया है। ‘अध्यात्म रामायण’ के अनुसार महर्षि वाल्मीकि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के बाद भी दुर्दान्त डाकू लुटेरे थे। नाम था रत्नाकर। किसी ऋषि के स्पर्श में आकर अपना दोष समझकर पापी जीवन

त्यागकर धार्मिक जीवनयापन शुरू किया और उनकी लेखनी से रामायण की सृष्टि हुई। 'अध्यात्म रामायण' में वाल्मीकि के अपने जीवनोतिहास का उल्लेख है। क्रोञ्चमिथुन के एक शर से आहत होने के बाद उनके मन में जिस करुणा भाव का उद्रेक हुआ था, श्लोक के रूप में पहली बार उसी का परिग्रह किया—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः श्वश्वतीः समाः।
यत क्रोञ्चमिथुन्वादेकमवधीः काममोहितम।'

इसी अवस्था में वाल्मीकि ने ब्रह्मा के आदेशानुसार रामायण की रचना की और इसको नाम दिया 'रामायण', 'सीताचरितं', 'पौलस्त्य वध'। कालक्रम में रामायण को ही अधिक जनप्रियता मिली।

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल की सगुण भक्ति शाखा की रामकाव्य धारा के सर्वोच्च कवि तथा प्रतिनिधि कवि के रूप में समादृत हैं। उन्हें भक्तिकाल का प्रतिनिधि कवि कहना निरापद है। निर्धन ब्राह्मण कुल में जन्म पाकर तथा जन्म से ही माता-पिता के दुलार से वंचित होकर गोस्वामी जी ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय अपनी प्रखर क़लम से 'रामचरितमानस' नाम्नी रचना के माध्यम से भारतीय जनजीवन को प्रदान किया। ऐसा कार्य निश्चय ही विरले मनुष्य सम्पादित कर पाते हैं।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तर भारत में एक विराट धर्मान्दोलन के अंग के रूप में आविर्भूत हुए थे तुलसीदास। सन्त तुलसीदास थे नरहरिदास के शिष्य और आचार्य रामानन्द के प्रशिष्य। विनय पत्रिका, दोहावली, कवितावली, कृष्णगीतावली, गीतावली इत्यादि अनेक ग्रन्थों की रचना उन्होंने की, जिनमें प्रमुख हैं विनय पत्रिका और सर्वश्रेष्ठ रचना है 'रामचरितमानस'। सुगठित भाषा-शैली, सुन्दर शब्द चयन, प्रगाढ़ भक्ति भाव और समुच्चय कवि प्रतिभा के कारण रामचरितमानस प्रकाशित और प्रचारित होने के बाद प्रख्यात हिन्दी कवि अग्रदास और शिष्य नाभादास के रामायण दब गये। रामचरितमानस अब केवल हिन्दी साहित्य का ही नहीं, रामायणी साहित्य तथा भारतीय भक्ति साहित्य का एक प्रमुख महाग्रन्थ है और काव्य-प्रौढ़त्व और भक्तिरस की प्रगाढ़ता के कारण अतुलनीय विश्वसाहित्य है।

तुलसी को लम्बी आयु मिली थी। तुलसी का बाल जीवन बड़ा दुखमय था। माता-पिताहीन होने के फलस्वरूप तुलसीदास को अपने बाल्यकाल में जात-कुजात के द्वारा दिये हुए अन्न को खाकर ही पेट पालना पड़ा—

"मातुपिता जग जाइ तज्यो, विधिहूँ न लिखि कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर बाजन, कादर; कुकर-टुकन लागि ललाई।।"

(कवितावली, उत्तर काण्ड, छन्द 57)

बुढ़ापे में उन्हें बहुत प्रकार के रोग लग गये थे। उनकी मृत्यु के बारे में यह निम्नलिखित दोहा प्रचलित है—

"सम्वत् सोरह सै असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तजेउ सरीर।।"

संवत् 1680 के सावन महीने की कृष्ण पक्ष की तृतीया को काशी के अस्सी घाट पर तुलसी ने देह त्यागी थी। तुलसीदास जितने बड़े भक्त थे, उतने बड़े कवि थे, और उतने ही बड़े पण्डित भी थे।

तुलसी कृत रामचरितमानस

गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' भारतीय साहित्य की एक 'अद्वितीय कृति' है। यह जीवन की 'समग्रता' को लेकर चलने वाली एक कालजयी रचना है। इस रचना की महत्ता इस बात से भी उजागर हो जाती है कि आलोचक श्री रामविलास शर्मा ने 'मानस' की 'लोक-स्वीकृति' के आधार पर 'भक्तिकाल' को हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' माना है। ('आजकल', मासिकी, दिसम्बर, 1987, पृ. 8)। आलोचक डॉ. रामेश्वर शुक्ल की मान्यता है कि—"लोक-धर्म का इतना बड़ा प्रतिपादक और मर्मज्ञ हिन्दी में दूसरा कवि नहीं हुआ। मानस भारतीय संस्कृति का दर्पण है। इसमें भारतीय संस्कृति अपने 'शिखर' पर है।" मानसकार ने इस रचना के माध्यम से 'संयुक्त परिवार प्रथा' की ज़बर्दस्त वकालत की है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' के माध्यम से राम-भक्ति के साथ-साथ शील, आचार, मर्यादा तथा लोक-संग्रह का सन्देश प्रदान कर मृतप्राय हिन्दू जाति में एक अपूर्व दृढ़ता उत्पन्न की। उन्होंने पारिवारिक आदर्शों की स्थापना के लिए रामकथा के माध्यम से राम के पारिवारिक आदर्श रखकर भारतीय संस्कृति की आधारशिला रखी। रामचरितमानस का 'अयोध्या काण्ड' भारतीय आदर्शों का ख़ज़ाना है।

तुलनात्मक अध्ययन

वाल्मीकि रामायण और अन्य रामायण में अन्तर देखने को मिलता है वह इसीलिए कि वाल्मीकि रामायण को तथ्य और घटनाओं के आधार पर लिखा गया था, जबकि अन्य रामायण को श्रुति के आधार पर लिखा गया। उदाहरण के लिए, बुद्ध ने अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहते हुए अपने शिष्यों को रामकथा सुनायी। बहुत समय बाद तुलसीदास को उनके गुरु ने सोरो क्षेत्र में रामकथा सुनायी। इसी तरह जनश्रुति के आधार पर हर देश ने अपने रामायण को लिखा।

भाषा-शैली—हृदय परिवर्तन के बाद दस्यु से ऋषि बन जाने वाले वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा में 'रामायण' महाकाव्य की रचना की। इस ग्रन्थ में 24,000 श्लोकों को 500 सर्ग और 7 काण्ड में लिखा गया। रामकथा पर संस्कृत में वाल्मीकि के बाद भी अनेक रामायणों की रचना हुई। उनमें योगवशिष्ठ, अध्यात्म और अद्‍भुत रामायण प्रमुख हैं।

अवधी भाषा में रची गयी रामचरितमानस सोलहवीं शताब्दी में तुलसीदास द्वारा रची गयी रचना है। इस ग्रन्थ में सात काण्ड हैं। विष्णु के अवतार श्रीराम के जीवन-चरित्र को सात काण्डों के रूप में दर्शाया गया है। इसकी भाषा में तुलसीदास ने हिन्दी भाषा के अनुप्रास अलंकार का खुलकर प्रयोग किया है और इसके अतिरिक्त उन्होंने कथा में यथानुसार शृंगार, शान्त और वीर रस का प्रयोग भी किया है।

गोस्वामी कृत रामचरितमानस चौपाई और दोहा शैली में लिखा गया है।

लोकमर्यादा—वाल्मीकि रामायण में जहाँ उत्पन्न परिस्थिति के चलते स्वाभाविक रूप से लोकमर्यादा का उल्लंघन हुआ है वहाँ तुलसीदास ने बड़े कौशल से लोकमर्यादा की रक्षा की है। तुलसी को रामचरितमानस में लोकमर्यादा के जाग्रत प्रहरी के रूप में हम पाते हैं।

मुख्य पात्र का चरित्र-चित्रण—वाल्मीकि रामायण और तुलसी कृत रामचरितमानस में चरित्र-चित्रण में काफ़ी भिन्नता है। रामायण के मुख्य नायक राम हैं। वाल्मीकि कृत रामायण के राम एक सरल साधारण मानव हैं, जो हर मानवीय भावना से प्रेरित हैं। राम प्रेम के प्रतीक हैं। पिता, माता, भाई इन सबके प्रति उनका पारिवारिक प्रेम सर्वोच्च स्थान पर रहा।

जबकि तुलसी के राम एक दैवी शक्ति से युक्त अतिमानव हैं जो स्वयं एक महाशक्ति का रूप हैं। तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। मानस में राम के चरित्र को एक महानायक और महाशक्ति के रूप में दर्शाया गया है। 'मानस' के नायक श्रीराम शक्ति, शील एवं सौन्दर्य से ओतप्रोत हैं। राम व्यक्ति नहीं, वरन् वन्दनीय व्यक्तित्व हैं, जिनके आदर्श भरित कार्यकलापों के आधार पर भारतीय समाज को ही नहीं बल्कि समूचे विश्व समाज को उत्तम संस्कार आज भी मिल रहे हैं।

पहला पात्र–'राजा दशरथ 'रामायण' का सबसे पहला पात्र हैं और रामायण के सभी पात्र नख-शिख मानव हैं। दशरथ इन सभी पात्रों में श्रेय और प्रेय के बीच होने वाले संघर्ष का उत्तम उदाहरण हैं। लोकोत्तर पुरुष प्रेय का त्याग करके श्रेय को स्वीकार करते हैं, क्योंकि उनके ऐसे स्वीकार को आने वाली पीढ़ी एक दृष्टान्त के रूप में स्वीकार करती है, जो दशरथ हैं।

राजा दशरथ का चरित्र-चित्रण करते समय वाल्मीकि के साथ तुलसीदास की चिन्ताधारा का मेल नहीं दिखाई देता। तुलसी राजा दशरथ की ग़लतियों तथा त्रुटियों को छुपाने की चेष्टा के बावजूद छुपा नहीं पाये, तुलसी कृत रामचरितमानस का पहला पात्र भी राजा दशरथ ही हैं। तुलसी ने राजा दशरथ की एक शुद्ध और योगात्मक दिशा की ओर प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की है।

वाल्मीकि के दशरथ महातेजस्वी, धर्मात्मा एवं सत्य के प्रति दृढ़ थे। वे इतने पराक्रमी थे कि देवासुर संग्राम में इन्द्र ने दशरथ से सहायता की याचना की थी। वे महर्षियों के समान दिव्य गुण सम्पन्न राजर्षि थे, तीनों लोकों में उनकी ख्याति थी–

"महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः"

वे जितेन्द्रिय और प्रजावत्सल थे। उनके राज्य में प्रजा हर तरह से सुखी एवं सम्पन्न थी।

घटना का आधार तथा केन्द्रीय भाव–वाल्मीकि ने रामायण की रचना ऐतिहासिक घटना के आधार पर की है जबकि तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण को ही आधार मानकर आदर्श चरित्र 'राम' को गढ़ा है। 'रामचरितमानस' की रचना करते समय तुलसी ने 'अध्यात्म रामायण' 'भुशुण्डि रामायण' और अन्य पुराणों से भी सामग्री संग्रह की थी।

तुलसीदास के राम अपने ईश्वरत्व के सम्पर्क में सदा सचेत हैं और उसी भाव से अनुप्राणित होकर आचरण करते हैं। तुलसीदास ने केवल वाल्मीकि की रामायण को आधार बनाकर काव्य रचना नहीं की है, इस बात को स्वीकार भी किया है–

"नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्,
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा,
भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।।"

'रामचरितमानस' का केन्द्रीय भाव है–आदर्श समाज की स्थापना एवं समाज मंगल की भावना का प्रचार-प्रसार। श्रीराम के चरित्र से उदात्त मानवीय गुणों तथा रावण के चरित्र से घोर भौतिकतावाद (अपार बल, वैभव, धर्महीन शासन तथा आसुरी वृत्तियाँ) को उभारने का कार्य हमारे गोस्वामी तुलसीदास ने किया है।

'रामचरितमानस' में धर्म की व्याख्या मानव मात्र के लिए मंगल विधायक कर्तव्य के रूप में की गयी है। इसलिए इसमें हमें सार्वभौमिकता एवं सार्वजनीनता लक्षित होती है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस'(उत्तर काण्ड) में धर्म का सार्वभौमिक लक्षण यह बताया है कि–

"परहित सरित धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।।"

अभिप्राय यह है कि परहित-सम्पादन (समाज-मंगल) करना सबसे बड़ा धर्म है तथा दूसरों को (मनसा, वाचा, कर्मणा) पीड़ा पहुँचाना सबसे बड़ा पाप।

सीताहरण–तुलसीदास ने सीताहरण के प्रसंग में कहा है कि जिस सीता का रावण ने हरण किया था वह प्रकृत सीता नहीं थी, बल्कि एक प्रकार का भ्रम था।

लेकिन वाल्मीकि रामायण में रावण के द्वारा हरी गयी सीता कोई भ्रम नहीं हैं।

रावण वध–रावण वध में भी तुलसीदास अपनी कल्पना शक्ति का प्रयोग करते हुए मूल वाल्मीकि रामायण से थोड़ा बिछड़ गये हैं। यहाँ युद्ध का वर्णन वाल्मीकि रामायण से बहुत भयंकर और करुण है। नदियाँ मानव के रक्त से लाल होने के साथ-साथ मृत शरीर पर्वत सम बन गये थे। चारों ओर विलाप और आर्तनाद गूँज रहा था। हरेक के मन में भय और शंका विराजमान थी।

अग्नि परीक्षा–वाल्मीकि रामायण में रावण वध के बाद राम सीता के प्रति कठोर वाणी से अपने मन के भाव व्यक्त करते हैं और अग्नि-परीक्षा के लिए सीता राज़ी हो जाती हैं।

मगर तुलसी के मानस में सीता राम के द्वारा तिरस्कृत होने पर स्वयं लक्ष्मण को अग्नि की वेदी तैयार करने का आदेश देते हैं।

पात्रों की चारित्रिक भिन्नता

राम के विभिन्न रूप–वाल्मीकि रामायण में राम को विष्णु का अवतार कहा गया है जबकि तुलसीदास ने राम को विष्णु से भी श्रेष्ठ कहा है और कहीं-कहीं यह भी कहा है कि राम ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर–इनका जन्म राम के अंश से ही हुआ है।

नायक के रूप में राम–वाल्मीकि ने राजा राम का चरित्र एक साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है जो बाल रूप से लेकर राजा बनने पर न्यायप्रिय तरीक़े से राज करके अपनी प्रजा के हित के लिए किसी भी निर्णय को लेने में हिचकते नहीं हैं। उनके द्वारा किये गये कामों में कहीं भी किसी दैवी शक्ति का प्रयोग दिखाई नहीं देता है।

रामचरितमानस के नायक क्षत्रिय कुलभूषण भगवान राम हैं, जो तुलसी की उदारता, अन्तःकरण की विशालता एवं भारतीय चारित्रिक आदर्श की साकार प्रतिमा हैं। तुलसी के राम एक आदर्श पुरुष ही नहीं, अपितु वे एक महान व्यक्तित्व सम्पन्न नायक हैं जिनका कवि के कल्पना राज्य पर एकाधिकार है। तुलसी के राम बुद्धिमान, धर्मज्ञ, यशस्वी, प्रजा-हितैषी, धर्मरक्षक, गो-पालक, सत्यसन्ध, लोकप्रिय, बलिष्ठ, शत्रुजयी, महान विश्वरूप होकर भी मानव हैं और मानव होकर भी परमब्रह्म स्वरूप हैं।

नायिका के रूप में सीता–सीता वाल्मीकि काव्य की नायिका हैं। वनवास जाते समय लक्ष्मण के प्रति सीता की कटुक्ति बहुत कठोर है लेकिन अस्वाभाविक नहीं। लेकिन तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में सीता के द्वारा इस तरह की कोई कठोर बात लक्ष्मण के लिए कहलवाना उचित नहीं समझा।

सीता भारतीय नारी का एक आदर्श रूप हैं। तुलसी की सीता गम्भीर हैं, शील और मर्यादा के पालन में उनकी कोई तुलना नहीं है। तुलसीदास की सीता जगज्जननी देवी हैं।

रावण–वाल्मीकि तथा तुलसीदास दोनों ने रावण का दस सिरों और बीस हाथों वाले एक दानव के रूप में उल्लेख किया है। लेकिन कहीं-कहीं कुछ ऐसे श्लोक भी मिलते हैं जहाँ वाल्मीकि ने रावण को सिर्फ़ एक सर और दो हाथों से चित्रित किया है। वाल्मीकि ने रावण की शक्ति, श्रवीरता और दैत्यकाय शारीरिक अवयव की प्रशंसा की है।

राम के प्रति अपनी अगाध भक्ति भावना के कारण ही तुलसीदास ने रावण को प्रयोजन से अधिक दुर्गुणसम्पन्न कहा है। रावण के निष्ठुर तथा निर्दयी व्यवहार के बारे में उन्होंने एक विस्तृत विवरण दिया है।

लक्ष्मण–वाल्मीकि रामायण और तुलसी के रामचरितमानस में लक्ष्मण का जो गुण और लक्षण है वह एक जैसा है। तुलसीदास ने जैसे लक्ष्मण के चरित्रांकन में वाल्मीकि रामायण का ही अनुसरण किया है। वाल्मीकि और तुलसी दोनों के लक्ष्मण तेजस्वी हैं, दोनों ही भ्रातृभक्त हैं।

भरत–भरत रामायण के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। वाल्मीकि ने रामायण के जिन पात्रों का हमें परिचय कराया, उनमें भरत सम्भवतः राम के बाद सर्वाधिक उल्लेखनीय व्यक्तित्व हैं। भरत के साथ रामायण के अन्य तमाम पात्रों, निकट के परिवारजनों तक ने भरपूर अन्याय किया है। भरत सभी की नज़रों में शंका से घिरे रहे हैं। वशिष्ठ को छोड़कर अन्य किसी पात्र ने, राम तक ने भरत को पूरा न्याय नहीं दिया।

लोक-कल्याण को काव्य का मुख्य उद्देश्य मानने-समझाने वाले तुलसीदास परिवार को सुखमय बनाने हेतु भरत के चरित्र को पवित्र भ्रातृ-प्रेम के निदर्शन रूप में प्रस्तुत करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। तुलसी के रामचरितमानस में इन्द्र भी चिन्तित हैं राम के प्रति भरत का प्रेम देखकर। रामचरितमानस में भरत की प्रशंसा बहुत दूर तक चलती है। राम के साथ भरत मिलन का प्रसंग रामचरितमानस में अपूर्व रसमयता के साथ विस्तार सहित वर्णित है। भरत के चरित्र की प्रशंसा करते हुए अयोध्या काण्ड के अन्त में तुलसी कहते हैं–

"भरत करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहि।
सीय राम पद पेमु अवसि होई भव रस विरति।"

(अयोध्या काण्ड, 326)

कैकेयी–रामायण में सीता के सिवा अन्य नारी चरित्रों का कीर्तिकलाप तथा भूमिका काण्ड विशेष में सीमाबद्ध है। कैकेयी, कौशल्या, सुमित्रा, मन्थरा, तारा आदि नारी चरित्रों का चित्रण वाल्मीकि ने अपनी रचना की परिधि में रखा है। रामचरितमानस में भी कैकेयी, कौशल्या, मन्थरा आदि नारी चरित्रों का चित्रण यत्र-तत्र कहीं-कहीं मिल जाता है।

सुग्रीव–सुग्रीव का चरित्रांकन करते समय तुलसीदास वाल्मीकि रामायण के सुग्रीव चरित्र से दूर नहीं गये। वाल्मीकि की रचना में मौजूद सुग्रीव की नारी और मद्यपान के प्रति रही आसक्ति का तुलसीदास से नियन्त्रित रूप से वर्णन किया है।

वाल्मीकि रामायण में बाली और सुग्रीव की शत्रुता के बारे में उल्लेख है। वाल्मीकि ने बाली और मायावी दैत्य के युद्ध को लेकर किष्किन्धा काण्ड में 26 श्लोक लिखे हैं जबकि वाल्मीकि रामायण में हुए इस विस्तृत विवरण को तुलसीदास ने अति संक्षेप में वर्णित किया है।

हनुमान–वाल्मीकि रामायण में हनुमान की राजनीतिक विचक्षणता उल्लेखनीय है, विशेषकर जब उन्होंने राम के गुप्तचर के रूप में लंका में प्रवेश किया था और समृद्धशाली और धनवान सुन्दर नगर को प्रत्यक्ष देखा था। वाल्मीकि ने संस्कृत व्याकरण के हनुमान के ज्ञान के बारे में उल्लेख कर कहा कि वह एक विचक्षण पण्डित थे। इसके विपरीत तुलसीदास ने हनुमान के विशिष्ट परिचय को नकारते हुए हनुमान के चरित्र को राम और राजा सुग्रीव के प्रति एक अनन्य भक्त के रूप में अंकित किया है।

तुलसी ने हनुमान को एक निष्ठावान और भक्तिपूर्ण नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। हनुमान राम के एक ऐसे भक्त थे जो अपनी शक्ति को प्रयोग करके किये गये कर्मों द्वारा पहचाने जाते थे। तुलसी के हनुमान ने एक क्षुद्र रूप धारण कर रावण के प्रासाद के अन्तरमहल में प्रवेश किया था।

हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम और सर्वोत्तम रचना गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 'रामचरितमानस' है। इस अपूर्व भक्ति-प्रधान, काव्य गुण सम्पन्न महत आदर्श के प्रकाशक और चारित्रिक वैशिष्ट्यपूर्ण रामायण के सिवा राम विषयक 'गीतावली', 'रामाज्ञाप्रश्न', और 'जानकी मंगल' आदि बहुत से काव्य ग्रन्थों की रचना की। लेकिन 'रामचरितमानस' की तुलना में बाक़ी सबको इतनी प्रसिद्धि नहीं मिली। प्रारम्भ में तुलसीदास वाल्मीकि रामायण द्वारा अधिक प्रभावित होते दिखाई पड़ते हैं। मिथिला के राजोद्यान में राम-सीता का विवाह पूर्व पूर्वानुराग 'रामचरितमानस' और 'गीतावली' में देखने को मिलता है, वाल्मीकि रामायण में यह वर्णन नहीं मिलता। मिथिला के स्वयंवर में रावण का दूत जाने की बात मानस में मिलती है, वाल्मीकि रामायण में नहीं है। रामचरितमानस में परशुराम द्वारा मिथिला की राजपुरी में उपस्थित होकर विघ्न डालने की बात कही गयी है, लेकिन वाल्मीकि रामायण में आधे रास्ते पर विघ्न डालने की बात कही गयी है। राम को अयोध्या वापस ले जाने के लिए जनक और उनकी पत्नी के जाने की बात का 'रामचरितमानस' में उल्लेख है, लेकिन वाल्मीकि रामायण में नहीं है।

'रामचरितमानस' की रचना करते समय तुलसीदास ने सिर्फ़ वाल्मीकि रामायण को आधार नहीं बनाया। 'अध्यात्म रामायण', 'भुशुण्डि रामायण' और अन्य पुराणादि से भी उन्होंने सामग्री संग्रह किया था। तुलसी रामायण और वाल्मीकि रामायण की कुछ अमिल इस प्रकार है—

1. सती की राम-परीक्षा और दक्ष यज्ञ, सती का देहत्याग, पार्वती की तपस्या, कामभस्म, शिव-पार्वती का विवाह।

2. भगवान विष्णु के अवतार लेने के कारण—नारद के शाप, मनुशतरूपा को भगवान पुत्र रूप में मिलने का वर लाभ, राजा प्रतापभानु की कहानी और ब्राह्मण के शाप से रावण का जन्म।

3. श्रीराम द्वारा माता कौशल्या को विश्वरूप प्रदर्शन।

4. जनकपुरी का विवरण, पुष्प उद्यान में राम-सीता का परस्पर दर्शन और पूर्वानुराग।

5. राजाओं द्वारा धनुष तोड़ने की व्यर्थ चेष्टा, जनक की राजसभा में परशुराम का आगमन, लक्ष्मण के साथ वाक्‌युद्ध, विवाहपूर्व जनकपुर का अलंकरण।

6. गंगा पार कराने वाले केवट का भय कि राम के स्पर्श से उसकी नौका एक सुन्दरी नारी में परिवर्तित हो जायेगी।

7. चित्रकूट में भरत-शत्रुघ्न आदि अयोध्यावासियों के अलावा जनक और जनक की पत्नी सुनयना की उपस्थिति।

8. असली सीता का अग्नि में आश्रय और रावण द्वारा भ्रम (माया) सीता का अपहरण।

9. त्रिजटा (शिव) का दुःस्वप्न और सीता को सहायता, मन्दोदरी द्वारा रावण को सद्‌उपदेश, विभीषण को पादप्रहार।

10. सेतुबन्धन में राम द्वारा रामेश्वर शिवलिंग प्रतिष्ठा।

11. मन्दोदरी का उपदेश और प्रहस्त को रावण का अपमान।

12. रावण के राजछत्र और मुकुट का राम द्वारा छेदन।

13. मेघनाद के शक्तिशैल से लक्ष्मण घायल (वाल्मीकि के अनुसार मेघनाद की मृत्यु के पश्चात रावण ने लक्ष्मण के ऊपर शक्तिशैल का प्रयोग किया था।)

14. रावण का विजय लाभ हेतु यज्ञ करना और वानरों द्वारा यज्ञ का ध्वंस कार्य।

15. रावण और विभीषण का युद्ध।

16. तुलसी के उत्तर काण्ड के साथ वाल्मीकि के उत्तर काण्ड में कोई विशेष मेल देखने को नहीं मिलता। वाल्मीकि की राक्षसकुल की उत्पत्ति, रावण की युद्ध विजय की कहानी, हनुमान का जन्म वृत्तान्त, नृग, निमि, जजाति, पुरु, सुदास, इल-बुंध, मधुदावानि की कहानी, लवण वध, शम्बूक वध, सीता त्याग, राम का अश्वमेध यज्ञ, सीता का पाताल प्रवेश आदि सब तुलसीदास कृत रामचरितमानस में देखने को नहीं मिलते। उन जगहों पर तुलसीदास ने सम राजत्व के समय का अयोध्या वर्णन, भरतादि के प्रश्न-उत्तर के दौरान राम के उपदेश, नारद की रामस्तुति, काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद और राम-माहात्म्य पर प्रकाश डाला है। तुलसीदास ने राम-सीता के विच्छेद पर रामायण को समाप्त नहीं किया। लक्ष्मण वर्जन और राम की स्वर्गयात्रा का वर्णन इसमें नहीं है। अचल में गरुड़ के प्रति काकभुशुण्डि के उपदेश काण्ड ने दो-तृतीयांश जगह ले रखी है।

नारी जाति के उत्तम आदर्श के बारे में वाल्मीकि ने बहुत बातें कही हैं कैकेयी के व्यवहार से एक समय राजा दशरथ विरक्त-से हो गये और नारी जाति से उनकी श्रद्धा लुप्त हो गयी थी, लेकिन तत्पश्चात अपनी भूल का उन्होंने संशोधन कर लिया—

"धिगस्तु घोषितो नाम शठाः स्वार्थपराः सदा।
न ब्रबीमि स्त्रियः सर्बा भरतस्यैव मातरम्।।"

(अयोध्या काण्ड, 12, 103)

वाल्मीकि ने फिर कहा पति गुणवान हो या निर्गुण, स्त्री के लिए वही परम देवता है—

"भर्त्ता तु खलुं नारीनां गुणवान् निर्गुणोहपि बा।
धर्मं बिमृशमानाना प्रत्यक्षं देवी दैबतम्।।"

(अयोध्या काण्ड, 62,8)

तुलसीदास के रामचरितमानस में नारी को उच्च आसन नहीं मिला। नारी को तुलसीदास दुर्भाग्य का प्रतीक स्वरूप मानते हैं।

तुलसी कृत 'रामचरितमानस' में लंका में प्रवेश करते ही हनुमान को विभीषण की सहायता मिली थी, ऐसा उल्लेख है। इसका अर्थ यह हुआ कि विभीषण युद्ध का कोई संकेत मिले, इसके पूर्व रावण का साथ छोड़कर राम के पक्ष में जाने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो चुके थे। वाल्मीकि के कथानक में विभीषण, रावण के दरबार में इन्द्रजीत हनुमान को बन्दी बनाकर लाता है, उस समय पहली बार दिखाई देते हैं। इससे पहले रावण और विभीषण के बीच सीता के विषय में कोई चर्चा होने का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता।

तुलसी ने काव्य के प्रयोजन से कई जगह कुछ परिवर्तन किये हैं, कई जगह नये प्रसंगों का सृजन भी किया है। जैसे—वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, कृत्तिवास रामायण आदि में अहल्या-उद्धार के बाद गंगा पार करने के लिए केवट का प्रसंग आता है। तुलसी के रामचरितमानस में यह प्रसंग अयोध्या काण्ड में राम वनगमन के समय आया है जब राम, लक्ष्मण और सीता वन जाते हुए गंगा पार करना चाहते हैं। केवट राम के चरण प्रक्षालन के बाद ही राम को नाव पर चढ़ाता है और उन्हें गंगा पार कराता है। यहाँ केवट और राम के बीच जो संवाद होता है, वह काव्य की दृष्टि से बहुत ही उत्कृष्ट है। इसी प्रकार तुलसी के रामचरितमानस में सीता-स्वयंवर का प्रसंग कुछ नवीनता लिए हुए है।

सीता-स्वयंवर का आयोजन, देश-विदेश से राजाओं का आना, जनकपुर का सौन्दर्य, राम-लक्ष्मण का जनकपुर देखने निकलना, नगरवासियों को मालूम होना, काम-धाम छोड़कर उन्हें देखने के लिए नगरवासियों का उमड़ना, राम-लक्ष्मण का पुष्पवाटिका में जाना, सीता--राम का एक-दूसरे को देखना एवं मन में अनुराग का पैदा होना, धनुर्यज्ञ की विशाल तैयारी, सीता का सौन्दर्य वर्णन, यज्ञशाला में राम-लक्ष्मण, बन्दीजनों द्वारा जनक-प्रतिज्ञा की घोषणा, राजाओं का धनुष न उठाना और जनक की निराशा, जनक के द्वारा मही को वीरशून्य कहा जाना और इस पर लक्ष्मण की प्रतिक्रिया आदि नवीन प्रसंगों का समावेश तुलसी ने इसमें किया है। रामचरितमानस में धनुर्भंग के बाद ही परशुराम स्वयंवर सभा में उपस्थित होते हैं। वहाँ क्रुद्ध परशुराम के साथ राम और लक्ष्मण का संवाद सरस और नाटकीयता से पूर्ण है। सरस-संवाद-सृजन में तुलसी दक्ष हैं। वाल्मीकीय रामायण, कृत्तिवास रामायण, अध्यात्म रामायण एवं भानुभक्त रामायण में परशुराम से राम की मुलाक़ात विवाह के बाद अयोध्या लौटते समय रास्ते में होती है। कथा-वर्णन एवं चरित्र-चित्रण में भी तुलसीदास अभिनवत्व का परिचय देते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष में मैं यह कह सकता हूँ राम भारतीय संस्कृति के आदर्श हैं। राम प्राचीन भारत में अवतरित, भगवान हैं। हिन्दू धर्म में राम, विष्णु के दस अवतारों में से सातवें अवतार हैं। राम का जीवनकाल एवं पराक्रम महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य रामायण के रूप में लिखा गया। उन पर तुलसीदास ने भी भक्ति काव्य श्री रामचरितमानस रचा। ख़ासतौर पर उत्तर भारत में राम बहुत अध्धिक पूजनीय हैं। राम की प्रतिष्ठा मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में है। राम ने मर्यादा के पालन के लिए राज्य, मित्र, माता-पिता, यहाँ तक कि पत्नी का भी साथ छोड़ा। इनका परिवार आदर्श भारतीय परिवार का प्रतिनिधित्व करता है।

वाल्मीकि की रामकथा का अवलम्बन लेकर काव्य रचना करने के बावजूद तुलसी का काव्य स्वकीय वैशिष्ट्य से पूर्ण हैं एवं दोनों कवियों के काव्य में उनकी मौलिक प्रतिभा का निदर्शन है।

भगवान राम आदर्श व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। राम चरित्र हमारे लिए मात्र आराधना की ही वस्तु नहीं बल्कि उनका चरित्र हमारे लिए एक महान आदर्श और कर्तव्य जैसा है। राम के आदर्शों पर चलकर ही वर्तमान समाज में फैली बुराइयों का नाश किया जा सकता है। रामनाम एक ऐसा सत्य है जो आज करोड़ों व्यक्तियों के चित्त में प्राण संचार कर सकता है। राम के आदर्श लक्ष्मण रेखा की उस मर्यादा के समान हैं जो लाँघी तो अनर्थ ही अनर्थ और सीमा की मर्यादा में रहें तो ख़ुशहाल और सुरक्षित जीवन।

पाद टिप्पणी

1. राष्ट्रीय सन्दर्भ में साहित्य की उपादेयता तथा अन्य निबन्ध, पृ. 30, डॉ. महेशचन्द्र शर्मा।
2. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ. 182, 185, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना।
3. रामायण फ्रॉम गंगा टू ब्रह्मपुत्र, पृ. 125, डॉ. इन्दिरा रायसम गोस्वामी।
4. रामकथा : कृत्तिवास और तुलसीदास, पृ. 97, डॉ. भीखी प्रसाद 'वीरेन्द्र'।
5. रामायणरा इत्तिबृत्त, पृ. 103, डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा।

सन्दर्भ

1. रामायणर इत्तिबृत्त, डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा, वीणा लाइब्रेरी, गुवाहाटी
2. संस्कृत साहित्यर जिलिङनि, कामाख्याचरण भागवती, अशोक पब्लिकेशन्स, पान बाज़ार, गुवाहाटी
3. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
4. रामकथा : कृत्तिवास और तुलसीदास, डॉ. भीखी प्रसाद 'वीरेन्द्र', युक्ति प्रकाशन, दिल्ली-85
5. रामायण के पात्र, दिनकर योशी, ग्रन्थ अकादमी, नयी दिल्ली
6. राष्ट्रीय सन्दर्भ में साहित्य की उपादेयता तथा अन्य निबन्ध, डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, लोकवाणी संस्थान, शाहदरा, दिल्ली-93
7. वाल्मीकि रामायण, गिरिपद देव चौधरी, वाणी प्रकाश मन्दिर, पान बाज़ार, गुवाहाटी
8. असमिया लोक-साहित्य, डॉ. प्रह्लाद कुमार बरुवा

दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में राम की परिकल्पना

जशोधरा बोरा

दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन जिसे अंग्रेजी में एसोसिएशन ऑफ़ साउथ ईस्ट एशियन नेशन्स, लघु रूप में 'आसियान' (ASEAN) भी कहा जाता है, यह दस दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों का समूह है, जो आपस में आर्थिक विकास और समृद्धि को बढ़ावा देने और क्षेत्र में शान्ति और स्थिरता क़ायम करने के लिए कार्य करते हैं। इंडोनेशिया, थाईलैंड, मलेशिया, फिलिपींस, सिंगापुर, ब्रूनेई, वियतनाम, लाओस, बर्मा तथा कम्बोडिया आसियान देशों के अन्तर्गत आते हैं। इसका मुख्यालय इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता में है। आसियान की स्थापना 8 अगस्त, 1967 को थाईलैंड की राजधानी बैंकॉक में की गयी थी। इसके संस्थापक सदस्य थाईलैंड, इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलिपींस और सिंगापुर थे। ब्रूनेई इस संगठन में 7 जनवरी, 1984 को शामिल हुआ और 1987 में आसियान का छठा सदस्य बना। 28 जुलाई, 1995 को वियतनाम इस संगठन का सातवाँ सदस्य बना। इसके दो साल बाद 23 जुलाई, 1997 को लाओस और बर्मा इसके सदस्य बने। 30 अप्रैल, 1999 को कम्बोडिया आसियान का सदस्य बना। भारत आसियान देशों से सहयोग करने और सम्पर्क रखने का सदा ही इच्छुक रहा है, भले ही वह व्यापार के कारण हो या साहित्य और कला के कारण।

राम तथा रामकथा की परिकल्पना कई देशों में की गयी है। राम को लेकर विभिन्न ग्रन्थ लिखे गये हैं। भिन्न देशों की विभिन्न संस्कृतियों, कलाओं, साहित्य तथा जीवन में रामकथा की प्रभुता, महत्ता तथा सार्थकता को अपनी-अपनी शैलियों में दर्शाया गया है। वाल्मीकि रचित रामायण को सबसे पुरानी रामकथा माना जाता है। यह संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के बाहर रामकथा पर जितने भी ग्रन्थ लिखे गये, उनमें से दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों की कुछ रामकथाएँ निम्नलिखित हैं—

1. थाईलैंड—रामकियेन (Ramakien)
2. कम्बोडिया—रिआमकेर (Reamker)
3. लाओस—फ्रलक-फ्रलाम (Phra Lak Phra Lam)
4. म्यांमार—रामवत्थु (Yama Zatdaw)
5. इंडोनेशिया—काकावीन रामायण (Kakawin Ramayana)
6. मलेशिया—हिकायत सेरीराम (Hikayat Seri Rama)
7. फिलिपींस—महरादिया लावन (Maharadia Lawana)

पूरे विश्व में रामकथा का अगर कोई सर्वश्रेष्ठ आख्यान है तो सबसे पहले वाल्मीकि के 'रामायण' का नाम लिया जाता है। 'रामायण' की सृष्टि के पीछे जो उद्देश्य था वह यह था कि चारों वेदों के भावार्थ को परिपूर्णता से समझना, श्रीराम के जीवन की कथा से अवगत होना और उससे

प्रेरणा ग्रहण करना तथा धर्म और सच्चाई की राह पर चलकर एक मर्यादित जीवनयापन करना। कालान्तर में 'रामायण' पूरे विश्व में प्रचलित होने लगा और विश्व की विभिन्न कलाओं, साहित्य, संस्कृति और लोगों को प्रभावित करने लगा। विश्व में रामकथा को अनेकानेक बार कहा गया तथा दर्शाया गया, जिससे इसके कई प्रारूप, कई अनुवाद सामने आये।

दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में 'रामायण' को लेकर निम्नलिखित धारणाएँ हैं—

1. थाईलैंड में रामायण—थाईलैंड में रामायण को 'रामकियेन' कहा जाता है, इसे यहाँ का राष्ट्रीय ग्रन्थ भी माना जाता है। पहले थाईलैंड की राजधानी को 'अयुत्थया' (Ayutthaya) कहा जाता था। यह नाम श्रीराम के निवास स्थान अयोध्या से लिया गया है। यहाँ के राजा अपने-आप को श्रीराम के वंश से मानते हैं। स्याम इस देश का पुराना नाम था जो 1939 में बदलकर थाईलैंड हुआ जिसका अर्थ है—स्वतन्त्र देश। स्याम को श्रीराम के वर्ण के रूप में जाना जाता है जिसका अर्थ साँवला रंग होता है। थाईलैंड में रामकथा बहुत ही सुप्रसिद्ध कथा है। यहाँ के रिवाज के अनुसार यहाँ के राजाओं

के नाम के आगे या पीछे 'राम' नाम को लगाया जाता है। यहाँ राम के ऊपर कई कथाओं को नाटक और नृत्य के द्वारा दर्शाया जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि तेरहवीं शताब्दी में राम यहाँ की जनता के नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे, किन्तु रामकथा पर आधारित सुविकसित साहित्य अठारहवीं शताब्दी में ही उपलब्ध होता है। 'रामकियेन' का आरम्भ राम और रावण के वंश विवरण के साथ अयोध्या और लंका की स्थापना से होता है। तदुपरान्त इसमें बाली, सुग्रीव, हनुमान, सीता आदि की जन्मकथा का उल्लेख हुआ है। विश्वामित्र के आगमन के साथ कथा की धारा सम्यक् रूप से प्रभावित होने लगती है इसमें राम विवाह से सीता त्याग और पुनः युगल जोड़ी के पुनर्मिलन तक की समस्त घटनाओं का समावेश हुआ है। 'रामकियेन' वस्तुतः एक विशाल कृति है जिसमें अनेकानेक उपकथाएँ सम्मिलित हैं। सम्पूर्ण 'रामकियेन' विचित्र आख्यानों से परिपूर्ण है, किन्तु इसके अन्तर्गत रामकथा के मूल स्वरूप में कोई मौलिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। 'रामकियेन' के

अन्त में सीता के धरती-प्रवेश के बाद राम ने विभीषण को बुलाकर समस्या के समाधान के विषय में पूछा। उन्होंने कहा कि ग्रह का कुचक्र है। उन्हें एक वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा। उनके परामर्श के अनुसार राम तथा लक्ष्मण हनुमान के साथ एक वर्ष वन में रहे और उसके बाद अयोध्या लौट आये। अन्त में इन्द्र के अनुरोध पर शिव ने राम और सीता दोनों को अपने पास बुलाया। शिव ने कहा कि सीता निर्दोष हैं। उन्हें कोई स्पर्श नहीं कर सकता, क्योंकि उनको स्पर्श करने वाला भस्म हो जायेगा। अन्ततः शिव की कृपा से सीता और राम का पुनर्मिलन हुआ।

2. कम्बोडिया में रामायण–'रिआमकेर' या 'रामकेर्ति' (Ramakerti)–Ram (राम की) + Kerti (कीर्ति) कम्बोडिया का महाकाव्य है जो संस्कृत भाषा में रचित 'रामायण' महाकाव्य पर आधारित है। इस नाम का अर्थ है–राम की कीर्ति। इस महाकाव्य में राम को लेकर जो हिन्दू धारणा है, उसे बौद्ध प्रसंग में दिखाकर विश्व में अच्छाई और बुराई का सन्तुलन दिखाया है। कम्बोडिया की 'रामायण' को वहाँ के लोग 'रिआमकेर' के नाम से जानते हैं, किन्तु साहित्य जगत में यह 'रामकेर्ति' के नाम से विख्यात है। 'रामकेर्ति' ख्मेर साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'ख्मेर' कम्बोडिया की भाषा का नाम है। इसके प्रथम खण्ड की कथा विश्वामित्र यज्ञ से आरम्भ होती है और इन्द्रजित वध पर आकर ख़त्म होती है, दूसरे खण्ड में सीता त्याग और उनके पृथ्वी प्रवेश तक की कथा है। 'रामकेर्ति' में सीता के पुत्रों के नाम राम लक्ष्मण और जप लक्ष्मण हैं। सीता ने अपने दोनों पुत्रों को राम के साथ जाने दिया और स्वयं पृथ्वी में प्रवेश कर गयीं। हनुमान ने पाताल जाकर सीता से लौटने का अनुरोध किया। उन्होंने उस आग्रह को भी ठुकरा दिया। 'रामकेर्ति' की खण्डित प्रति की कथा यहीं पर आकर अटक जाती है। 'रामकेर्ति' का रचनाकार कोई बौद्ध भिक्षुक ज्ञात होता है, क्योंकि वह राम को नारायण का अवतार मानते हुए उनको 'बोधिसत्व' की उपाधि प्रदान करता है। इसके बावजूद 'रामकेर्ति' और वाल्मीकि 'रामायण' में अत्यधिक साम्य है।

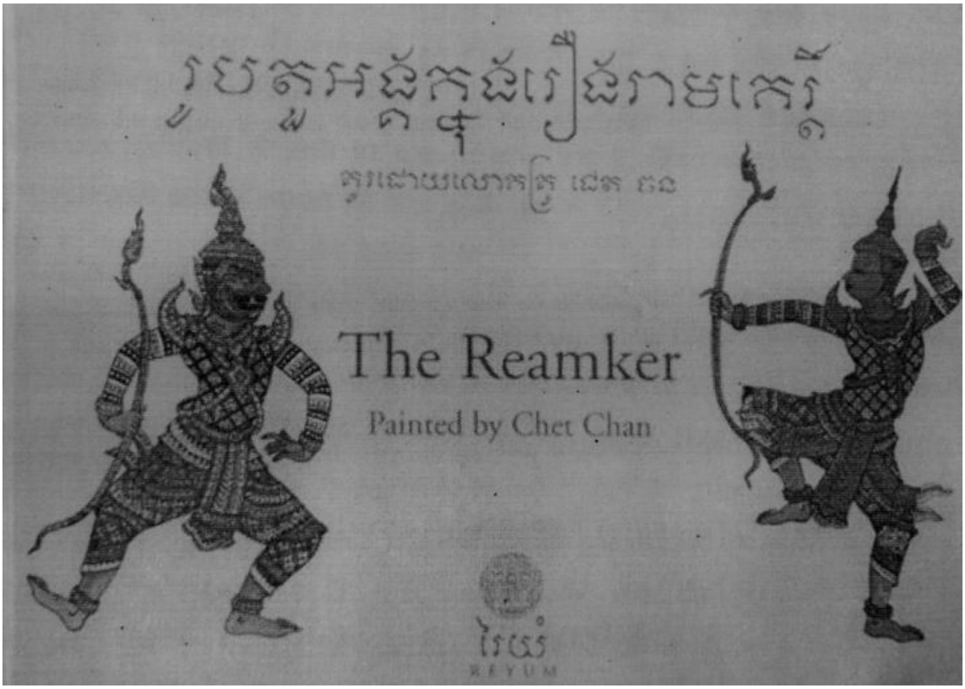

3. लाओस में रामायण–लाओस 'लव' का नगर माना जाता है जो राम के पुत्र थे। लाओ लोगों का महाकाव्य 'फ्रलक-फ्रलाम' वाल्मीकि रामायण का रूपान्तरण है। लाओस में अभी भी वे मन्दिर मौजूद हैं जिनका वर्णन 'रामायण' में किया गया है। लाओस के निवासियों और वहाँ की भाषा को 'लाओ' कहा जाता है जिसका अर्थ है 'विशाल' और 'भव्य'। लाओ जाति के लोग स्वयं को भारतवंशी मानते हैं। लाओ साहित्य के अनुसार सम्राट अशोक (273-237 ई. पू.) द्वारा कलिंग पर आक्रमण करने पर दक्षिण भारत के बहुत सारे लोग असम-मणिपुर मार्ग से चीन चले गये।

लाओस के निवासी अपने को उन्हीं लोगों का वंशज मानते हैं। लाओस में रामकथा पर आधारित कई रचनाएँ हैं जिनमें मुख्य रूप से फ्रलक-फ्रलाम (रामजातक), ख्वाय थोरफी, पोम्मचक (ब्रह्म चक्र) और लंका नाई के नाम उल्लेखनीय हैं। 'रामजातक' के नाम से विख्यात 'फ्रलक-फ्रलाम' की लोकप्रियता का रहस्य उसके नाम के अर्थ 'प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम' में समाहित है। 'रामजातक' लाओस के आचार-विचार, रीति-रिवाज, स्वभाव, विश्वास, वनस्पति, जीव-जन्तु, इतिहास और भूगोल का विश्वकोश है। 'रामजातक' दो भागों में विभक्त है। इसके प्रथम भाग में दशरथ पुत्री चन्दा और दूसरे भाग में सीता के अपहरण और उद्धार की कथा है। यहाँ सीता का अपहरण विवाह के बाद रास्ते में हो जाता है। अपहरण के सन्दर्भ में स्वर्ण मृग का प्रसंग है, किन्तु शूर्पणखा की चर्चा नहीं हुई है। कैकेयी, भरत, शत्रुघ्न आदि की अनुपस्थिति के कारण वनवास का भी उल्लेख नहीं हुआ है। 'रामजातक' के द्वितीय खण्ड में सीताहरण से लेकर उनके निर्वासन और पुनर्मिलन की सारी घटनाओं का वर्णन हुआ है, किन्तु सब कुछ लाओस की शैली में हुआ है। अन्य जातक कथाओं की तरह इसके अन्त में भी बुद्ध कहते हैं कि पूर्व जन्म में वे ही राम थे, यशोधरा सीता थीं और देवदत्त रावण थे।

4. म्यांमार में रामायण–म्यांमार में रामायण को 'यमायना' (Yamayana) नाम से जाना जाता है, जो अनौपचारिक रूप में यहाँ का राष्ट्रीय महाकाव्य है। इसे 'यामा जटदो' भी कहा जाता है। 'राम' के लिए 'यामा' तथा 'जातक' के लिए 'जटदो' शब्दों का प्रयोग हुआ है। यहाँ सीता के लिए 'मे थीदा' (Me Thida) शब्द का प्रयोग होता है। इतिहास से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं सदी के पहले से ही रामकथा अनेक रूपों में बर्मावासियों के जनजीवन को प्रभा वित कर रही थी। ऐसी सम्भावना है कि लोक-आख्यानों और लोक-गीतों के रूप में रामकथा की परम्परा वहाँ पहले से विद्यमान थी, किन्तु बर्मा की भाषा में रामकथा साहित्य का उदय अठारहवीं शताब्दी में ही दृष्टिगत होता है। रामकथा पर आधारित बर्मा की प्राचीनतम गद्य कृति 'रामवत्थु' है। इसकी तिथि अठारहवीं शताब्दी निर्धारित की गयी है। इसमें अयोध्या काण्ड तक की कथा का छह अध्यायों में वर्णन हुआ है और इसके बाद उत्तर काण्ड तक की कथा का समावेश चार अध्यायों में ही हो गया है। 'रामवत्थु' की कथा बौद्ध मान्यताओं पर आधारित है, किन्तु इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण वाल्मीकि रामायण के आदर्शों के अनुरूप हुआ है। कथाकार ने इस कृति में बर्मा के सांस्कृतिक मूल्यों को इस प्रकार समाविष्ट कर दिया है कि वहाँ के समाज में यह अत्यधिक लोकप्रिय हो गया है। यह बर्मा की परवर्ती कृतियों का भी उपजीव्य बन गया है। 'रामवत्थु' का आरम्भ दशगिरि (दशग्रीव) तथा उसके भाइयों की जन्मकथा से होता है। लंका युद्ध, रावण वध और सीता की अग्नि-परीक्षा का इस रचना में परम्परानुसार वर्णन हुआ है, किन्तु सीता निर्वासन के कई कारण बताये गये हैं। अन्ततः एक रजक द्वारा सीता को दोषी ठहराने पर उन्हें निर्वासित किया जाता है। कथा की समाप्ति सीता की अपने दोनों पुत्रों के साथ अयोध्या वापसी से होती है।

5. इंडोनेशिया में रामायण–यहाँ की रामकथा 'काकावीन रामायण' नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ संस्कृत की परम्परागत कथा को अपनाया गया है। इंडोनेशिया के नब्बे प्रतिशत निवासी मुसलमान हैं, फिर भी उनकी संस्कृति पर रामायण की गहरी छाप है। भारत के हिन्दी के ईसाई विद्वान फ़ादर कामिल बुल्के 1982 ई. में लिखते हैं, "पैंतीस वर्ष पहले मेरे एक मित्र ने जावा के किसी गाँव में एक मुस्लिम शिक्षक को रामायण पढ़ते देखकर पूछा था कि आप रामायण क्यों पढ़ते हैं? उत्तर मिला–मैं और अच्छा मनुष्य बनने के लिए रामायण पढ़ता हूँ।" रामकथा पर आधारित जावा की प्राचीनतम

कृति 'काकावीन रामायण' है। यह नवीं शताब्दी की रचना है। परम्परानुसार इसके रचनाकार योगीश्वर हैं। 'काकावीन रामायण' की रचना कावी भाषा में हुई है। यह जावा की प्राचीन शास्त्रीय भाषा है। काकावीन का अर्थ महाकाव्य है। कावी भाषा में कई महाकाव्यों का सृजन हुआ है। उनमें 'काकावीन रामायण' का स्थान सर्वोपरि है। 'काकावीन रामायण' छब्बीस अध्यायों में विभक्त एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमें महाराज दशरथ को विश्वरंजन की संज्ञा से विभूषित किया गया है और उन्हें

शैव मतावलम्बी कहा गया है। इस रचना का आरम्भ राम के जन्म से होता है। द्वितीय अध्याय का आरम्भ वसन्त वर्णन से हुआ है। यहाँ इंडोनेशियाई परिवेश दर्शनीय है। अयोध्या काण्ड की घटनाओं की गति इस रचना में बहुत तीव्र है। राम राज्याभिषेक की तैयारी, कैकेयी कोप, राम वनवास, राजा दशरथ की मृत्यु और भरत के अयोध्या आगमन की घटनाएँ यहाँ पलक झपकते ही समाप्त हो जाती हैं। सीतान्वेषण और राम-रावण युद्ध का इस महाकाव्य में बहुत विस्तृत वर्णन हुआ है। अन्त में राम राज्याभिषेक के बाद महाकवि योगीश्वर रामकथा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हैं। उनकी मान्यता है कि राम चरित्र जीवन की सम्पूर्णता का प्रतीक है। राम के महान आदर्श का अनुकरण जनजीवन में हो, इसी उद्देश्य से इस महाकाव्य की रचना की गयी है।

6. मलेशिया में रामायण–मलेशिया में रामकथा 'हिकायत सेरीराम' नाम से प्रसिद्ध है। यह वाल्मीकि कृत रामायण का मलय अनुवाद है। यहाँ संस्कृत 'रामायण' की कथा ही प्रधान कथा के रूप में विद्यमान है परन्तु लोक प्रसंग में नामों की वर्तनी और उच्चारण में बदलाव है। मलेशिया का इस्लामीकरण तेरहवीं शताब्दी के आसपास हुआ। मलय रामायण की प्राचीनतम पाण्डुलिपि बोडलियन पुस्तकालय में 1633 ई. में जमा की गयी थी। इससे ज्ञात होता है कि मलयवासियों पर रामायण का इतना प्रभाव था कि इस्लामीकरण के बाद भी लोग उसका परित्याग नहीं कर सके। मलेशिया में रामकथा पर आधारित एक विस्तृत रचना है 'हिकायत सेरीराम'। इसका लेखक अज्ञात है। इसकी रचना तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच हुई थी। 'हिकायत सेरीराम' विचित्रताओं का अजायबघर है। इसका आरम्भ रावण की जन्मकथा से हुआ है। किंद्रान (स्वर्गलोक) की सुन्दरियों के साथ व्यभिचार करने वाले सिरानचक (हिरण्याक्ष) को पृथ्वी पर दस सिर और बीस भुजाओं वाले रावण के रूप में जन्म लेना पड़ा। वह चित्रवह का पुत्र और वोर्मराज (ब्रह्मराज) का पौत्र था। चित्रवह को रावण के अतिरिक्त कुम्भकेर्न (कुम्भकर्ण) और बिबुसनम (विभीषण) नामक दो पुत्र और सुरपंडकी (शूर्पणखा) नामक एक पुत्री थी। आदि से अन्त तक 'हिकायत सेरीराम' विचित्रताओं से परिपूर्ण है। यद्यपि इसमें वाल्मीकि रामायण परम्परा का बहुत हद तक निर्वाह हुआ है, तथापि इसमें सीता के निर्वासन और पुनर्मिलन की कथा में विचित्रता है। सेरीराम से विलग होने पर देवी सीता ने कहा कि यदि वह निर्दोष होंगी, तो सभी पशु-पक्षी मूक हो जायेंगे। उनके पुनर्मिलन के बाद पशु-पक्षी बोलने लगते हैं। इस रचना में अयोध्या नगर का निर्माण भी राम और सीता के पुनर्मिलन के बाद ही होता है।

7. फिलिपींस में रामायण : फिलिपींस के रामायण को 'महरादिया लावन' (Maharadia Lawana) नाम से जाना जाता है। फिलिपींस का प्रसिद्ध नृत्य 'सिंगकिल' (Singkil) यहाँ के रामायण से प्रभावित है। इंडोनेशिया और मलेशिया की तरह फिलिपींस के इस्लामीकरण के बाद वहाँ की रामकथा को नये रूप-रंग में प्रस्तुत किया गया। ऐसी भी सम्भावना है कि इसे बौद्ध और जैनियों की तरह जानबूझकर विकृत किया गया। डॉ. जॉन आर. फ्रैंसिस्को ने फिलिपींस की भाषा में संकलित इस विकृत रामकथा की खोज की। इसकी कथावस्तु पर सीता के स्वयंवर, विवाह, अपहरण, अन्वेषण और उद्धार की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। महरादिया लावन बंदियार मसिर के सुल्तान का पुत्र है। उसके कुचक्र से बहुत लोगों की जान चली गयी। इसीलिए सुल्तान ने उसे निर्वासित कर पुलूनगर द्वीप पर भेज दिया। आगम नियोग के सुल्तान को मंगंदिरी और मंगवर्न नामक दो पुत्र थे। दोनों भाइयों को पुलूनवंदे के सुल्तान की पुत्री मलैला के अनुपम सौन्दर्य की जानकारी मिली। विवाहोपरान्त दोनों भाई मलैला के साथ घर चल पड़े, किन्तु रास्ते में ही एक

रमणीक स्थल पर घर बनाकर रहने लगे जहाँ से महरादिया लावन ने मलैला का अपहरण कर लिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मलैला की खोज-यात्रा में उनकी भेंट लक्ष्मण नामक बन्दर से हुई जो हनुमान की भूमिका निभाने लगा। युद्ध समाप्त होने पर लक्ष्मण के आदेश से एक घड़ियाल मलैला के साथ दोनों भाइयों को पीठ पर चढ़ाकर आगम नियोग चल पड़ा। लक्ष्मण उनके साथ गये। आगम नियोग पहुँचने पर एक भव्य समारोह हुआ। इस अवसर पर लक्ष्मण सुन्दर राजकुमार के रूप में परिवर्तित हो गया। चारों ओर उल्लास छा गया।

दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के रामायणों के कुछ प्रमुख पात्रों के नाम निम्नलिखित हैं—

भारत	थाईलैंड	कंबोडिया	लाओस	म्यानमार	इंडोनेशिया	मलेशिया	फिलिपींस
रामायण	रामाकियेन	रिआमकार	फ्रलक-फ्रलामरामवत्थु	रामवत्थु	काकावीन रामायण	हिकायत सेरी राम	महरादिया लावन
श्रीराम	फ्रराम	प्रेयह रिआम	फ्रलाम	यामा	राम	सेरी राम	रादिया मंगंदिरी
सीता	नं सीदा	नेयंग सेदा	नं सीदा	थीदा	सीता	सीता देवी	मलैला
लक्ष्मण	फ्रलक	प्रेयह लिआम	फ्रलक	लखन	लक्समन	लक्समन	रादिया मंगवर्ण
हनुमान	हनुमान	हनुमान	हनौमाने	हनुमान	हनुमान	हनुमान	लक्ष्मण
दशरथ	थोट्सरोट		ठ्टरथा		दसरथ		
रावण	थोत्सकन	क्रोंग रिआप	थोत्सकने	यावना	रावणा	रावण	महरादिया लावन

रामकथा की महत्ता और विदेशों में इसकी छाप

आदिकवि वाल्मीकि कृत 'रामायण' न केवल इस अर्थ में अद्वितीय है कि यह देश-विदेश की अनेक भाषाओं के साहित्य की विभिन्न विधाओं में विरचित तीन सौ से भी अधिक मौलिक रचनाओं का उपजीव्य है, प्रत्युत इस सन्दर्भ में भी कि इसने भारत के अतिरिक्त अनेक देशों के नाट्य, संगीत, मूर्ति तथा चित्र कलाओं को प्रभावित किया है। 'रामायण' का विश्लेषित रूप 'राम का अयन' है जिसका अर्थ 'राम का यात्रा पथ'। इसकी अर्थवत्ता इस तथ्य में भी अन्तर्निहित है कि यह मूलतः राम की दो विजय यात्राओं पर आधारित है जिसमें प्रथम यात्रा यदि प्रेम-संयोग, हास-परिहास तथा आनन्द-उल्लास से परिपूर्ण है, तो दूसरी क्लेश, क्लान्ति, वियोग, व्याकुलता, विवशता और वेदना से आवृत्त। विश्व के अधिकतर विद्वान दूसरी यात्रा को ही रामकथा का मूल आधार मानते हैं।

भारतवासी जहाँ कहीं भी गये वहाँ की सभ्यता और संस्कृति को तो उन लोगों ने प्रभावित किया ही, वहाँ के स्थानों के नाम भी बदलकर उनका भारतीयकरण कर दिया। कहा गया है कि इंडोनेशिया के सुमात्रा द्वीप का नामकरण सुमित्रा के नाम पर हुआ था। जावा के एक मुख्य नगर का नाम योग्याकार्टा है। 'योग्या' संस्कृत के अयोध्या का विकसित रूप है और जावानी भाषा में कार्टा का अर्थ नगर होता है। इस प्रकार योग्याकार्टा का अर्थ अयोध्या नगर है।

मलाया के राजदरबार के पण्डितों को संस्कृत का ज्ञान था, इसकी पुष्टि संस्कृत में उत्कीर्ण वहाँ के प्राचीन शिलालेखों से भी होती है। वहाँ स्थित गन्धमादन उस पर्वत का नाम था जिसे मेघनाद के बाण से आहत लक्ष्मण के उपचार हेतु हनुमान औषधि लाने के क्रम में उखाड़ लाये थे।

बर्मा का पोपा पर्वत औषधियों के लिए विख्यात है। वहाँ के निवासियों को यह विश्वास है कि लक्ष्मण के उपचार हेतु पोपा पर्वत के ही एक भाग को हनुमान उखाड़कर ले गये थे। वे लोग उस पर्वत के मध्यवर्ती खाली स्थान को दिखाकर पर्यटकों को यह बताते हैं कि पर्वत के उसी भाग

को हनुमान उखाड़कर लंका ले गये थे। वापसी यात्रा में उनका सन्तुलन बिगड़ गया और वे पहाड़ के साथ ज़मीन पर गिर गये जिससे एक बहुत बड़ी झील बन गयी। इनवोंग नाम से विख्यात यह झील बर्मा के योमेथिन ज़िले में है। बर्मा के लोकाख्यान से इतना तो स्पष्ट होता ही है कि वहाँ के लोग प्राचीनकाल से ही रामायण से परिचित थे और उन लोगों ने अपने को उससे जोड़ने का भी प्रयत्न किया।

थाईलैंड में लौपबुरी (लवपुरी) नामक एक प्रान्त है। इसके अन्तर्गत वांग-प्र नामक स्थान के निकट फाली (वालि) नामक एक गुफा है। कहा जाता है कि बाली ने इसी गुफा में थोरफी नामक महिष का वध किया था। बाली नामक गुफा से प्रवाहित होने वाली जलधारा का नाम सुग्रीव है।

भारतवासी जहाँ कहीं भी गये भौतिक साधनों के अतिरिक्त आस्था के संबल भी साथ ले गये। भौतिक संसाधनों का तो कालान्तर में विनाश हो गया, किन्तु उनके विश्वास का वृक्ष स्थानीय परिवेश में फलता-फूलता रहा। प्राकृतिक कारणों से उनकी आकृति और प्रकृति में संशोधन और परिवर्तन अवश्य हुआ, किन्तु उन्होंने शिला खण्डों को खोदकर जो उनका इतिहास छोड़ा था, वह आज भी उनकी कहानी कह रहा है।

पूरे विश्व में रामकथा का अगर कोई सर्वश्रेष्ठ आख्यान है तो सबसे पहले वाल्मीकि के 'रामायण' का नाम लिया जाता है। 'रामायण' की सृष्टि के पीछे जो उद्देश्य था वह यह था कि चारों वेदों के भावार्थ को परिपूर्णता से समझना, श्रीराम के जीवन की कथा से अवगत होना और उससे प्रेरणा ग्रहण करना तथा धर्म और सच्चाई की राह पर चलकर एक मर्यादित जीवनयापन करना। कालान्तर में 'रामायण' पूरे विश्व में प्रचलित होने लगा और विश्व की विभिन्न कलाओं, साहित्य, संस्कृति और लोगों को प्रभावित करने लगा। विश्व में रामकथा को अनेकानेक बार कहा तथा दर्शाया गया, जिससे इसके कई प्रारूप, कई अनुवाद सामने आये। यद्यपि वाल्मीकि कृत 'रामायण' की रामकथा से दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों की रामकथा में कई घटनाएँ, प्रसंग, नाम आदि अलग मिलेंगे परन्तु रामकथा के नायक 'राम' ही हैं।

सन्दर्भ

1. फ्रैंसिस्को, जुआन आर., 'महारादिया लावन', प्रकाशित—अंग्रेज़ी, फिलीपींस, फोकलोर सोसाइटी, 7 फरवरी, 1969
2. 'हिकायत सेरीराम', https://en.wikipedia.org/wiki/Hikayat SeriRam Wikipedia, 9 मई, 2017
3. 'काकाबीन रामायण', https://en-wikipedia-org/wiki/Kakawin_Ramayana Wikipedia. 9 सितम्बर, 2017
4. पण्ढारे मंदार, 'फाइव सरप्राइजिंग वेज़ इन विच द स्टोरी ऑफ़ द एपिक रामायण डिफ़र्स इन अदर पार्ट्स ऑफ़ एशिया', www.the betterindia.com, 26 जून, 2016
5. 'फ्रलक-फ्रलाम', https://en. wikipedia. org/wiki/Phra Lak Phra Ram Wikipedia, 6 सितम्बर, 2017
6. 'रामकियेन', https://en-wikipedia-org/wiki/Ramakien Wikipedia, 2 अक्टूबर, 2017
7. वही, 14 जुलाई, 2017
8. ठाकुर, देवेन्द्रनाथ, 'रामकथा की विदेश-यात्रा', www-ignca-nic-in/coil net/rktha000-htm 2006.
9. 'रामवत्थु', https://en-wikipedia-org/wiki/Yama_Zatdaw Wikipedia. 29 मार्च 2017

वर्तमान परिदृश्य में रामकथा की प्रासंगिकता

दिना चौहान

ऋषि-मुनियों के तपोबल से पोषित भारतभूमि पर जब-जब पाप, अत्याचार, बर्बरता, अधर्म, शोषण आदि सामाजिक बुराइयों ने अपना सर उठाया है, तब-तब उसके सर को कुचलने के लिए किसी-न-किसी रूप में भगवान ने अवतार लिया है। ठीक वैसे ही जैसे सदियों से समाज में फैली बुराइयों को मिटाने हेतु कलम के सिपाही पैदा होते रहे हैं। वाल्मीकि रामायण के आधार पर तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' (रामायण) हिन्दू समाज का एक अमृत पोषित धर्मग्रन्थ है, जिसमें चित्रित धर्म, सत्य, शील, सौन्दर्य आदि के पोषक तथा ज्ञान, भक्ति और सद्कर्म के रक्षक पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी ने मानव रूप में अवतरित होकर धरती पर जो कीर्तिमान स्थापित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। साथ ही भगवान राम ने लोकरक्षक और लोकरंजक दोनों रूपों में नैतिकता, सदाचार, मानवीय मूल्य, आदर्श, मर्यादा आदि का भारतीय जनमानस को जो पारिवारिक व्यवहार तथा लोकमंगलकारी रामराज्य का दर्पण दिखाया है वह युगों-युगों तक अविस्मरणीय तथा अतुलनीय रहेगा।

आज मनोवैज्ञानिकता, अनैतिकता तथा स्वार्थपरता के बुखार ने मानव मस्तिष्क को पूरी तरह से घेर रखा है, जिससे वर्तमान युग में नैतिकता, मानवीय मूल्य, जन कल्याण, आध्यात्मिकता आदि का भाव तथा विचार समाज से लुप्त होता नज़र आ रहा है। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में रामकथा का महत्त्व आज उतना ही प्रासंगिक है जितना त्रेता युग में था, क्योंकि तत्कालीन समय में समाज में जो समस्याएँ थीं वे आज भी बरकरार हैं, इसलिए स्वयं जगत के पालनहार ईश्वर की प्रासंगिकता कभी ख़त्म नहीं होती वह सर्वकालीन, सार्वभौमिक तथा सार्वजनीन बनी रहती है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है इसलिए हम शिक्षित सज्जनों का परम कर्तव्य है कि समाज में फैली हुई स्वार्थपरता, दुरनीति, भ्रष्टाचार, पाप, शोषण आदि बुराइयों को मिटाने के लिए राम बनने की आवश्यकता है। रामकथा ही नहीं, बल्कि गाँधी, नेहरू, कबीर, तुलसी, प्रेमचन्द जैसे लोकनायक की ज़रूरत है। अन्यथा संसार पाप तथा स्वार्थ में डूबता चला जायेगा और मानवता, नैतिकता, धर्म को बचा पाना असम्भव-सा हो जायेगा।

कबीर के राम का स्वरूप

कबीर ने राम शब्द का प्रयोग परमार्थ के लिए, ईश्वर के लिए तथा परम चैतन्य के लिए किया है। कबीरदास के राम निर्गुण हैं। उनके राम विश्व से अतीत हैं और विश्व में व्याप्त भी हैं वह घट-घट में समाये हैं। वह अरूप हैं किन्तु सभी रूप उसी के हैं वह देश और काल से परे हैं। उनका न आदि है न अन्त। कबीर के अनुसार—"वेदान्त में प्रतिपादित सगुण का अर्थ है—मयोपहितं सत्वगुण प्रधान चैतन्य जिसकी संज्ञा है—ईश्वर। सगुण के उपासकों ने उसका एक संकुचित अर्थ लिया। सगुण से

उनका तात्पर्य है विष्णु का किसी रूप या आकृति में पृथ्वी पर अवतरण। विशेषकर राम और कृष्ण के रूप में जो अवतार हुए उनकी उपासना को उन्होंने सगुण की उपासना बतलाया"[1]।

निर्गुणवादी भक्त कबीर की यह भी मान्यता थी कि—"ईश्वर एक परिसीमित शरीर में अवतरित नहीं होता। उन्होंने अवतार के अर्थ में सगुण शब्द का जो संकुचित प्रयोग हुआ, उसकी उपासना के विरुद्ध अपना मत प्रकट किया, ईश्वर की उपासना के विरुद्ध नहीं।"[2]

कबीरदास जी ने 'राम' शब्द का प्रयोग गोविन्द, केशव, हरि आदि प्रचलित व्यापक ईश्वर के अर्थ में प्रयुक्त किया है, पौराणिक अवतार के अर्थ में नहीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

दशरथ सूत तिहूँलोक बखाना। रामनाम का मरम है आना।

अर्थात् कबीर के राम दशरथ के पुत्र नहीं है उनके राम एक विशिष्ट शरीर में ही नहीं बल्कि विश्व भर में व्याप्त हैं। वह ससीम नहीं असीम हैं।

तुलसीदास जी के राम का स्वरूप

तुलसीदास के राम निर्गुण और निराकार ब्रह्म के ही सगुण साकार रूप हैं, तुलसी के राम दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र जी हैं जिन्होंने त्रेता युग में मानव अवतार लिया था। तुलसी ने रामचरितमानस में लिखा है—

"जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार"।[3]

(मानस, पृ. 635)

अर्थात् जगत के मूल कारण और सम्पूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान राम हैं जिन्होंने लोगों को भवसागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिए मनुष्य रूप में अवतार लिया है। जब-जब संसार में अधर्म बढ़ता है तथा असुर एवं अभिमानी बढ़ जाते हैं तब-तब प्रभु श्रीराम कृपा करके अवतार लेते हैं और दुखियों के कष्ट का हरण करते हैं। जो निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म हैं वही भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर सगुण-साकार रूप धारण कर लेते हैं।

तुलसी का ब्रह्म स्वतन्त्र एवं सच्चिदानन्द घन है वह सर्वज्ञ, निराकार, नित्य, निरंजन, अविनाशी, तथा अमोघ शक्ति सम्पन्न है। वही ब्रह्म राम के रूप में अवतरित हुआ है और नाना प्रकार की मानवीय लीलाएँ कर रहा है। उसकी ये लीलाएँ विचित्र हैं जो ऋषि-मुनियों को भी भ्रमित कर देती हैं।

वर्तमान परिदृश्य में रामकथा की प्रासंगिकता

हिन्दी साहित्येतिहास में सगुण रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उत्तर भारत की हिन्दीभाषी जनता में कबीरदास के बाद यदि किसी अन्य कवि का काव्य लोगों की ज़बान पर चढ़ा हुआ है, तो वह तुलसी ही हैं। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के रूप में एक उच्चकोटि का प्रबन्ध काव्य लिखा, जिसमें सम्पूर्ण रामकथा का नियोजन है। यह हिन्दू समाज का अमृत पोषित धर्मग्रन्थ है। तुलसी ने विनय पत्रिका, गीतावली, दोहावली जैसे उत्कृष्ट मुक्तक काव्य भी रचे हैं। उन्होंने रामकथा का मूल आधार वाल्मीकि रामायण को बनाया है तथापि उसमें अध्यात्म रामायण एवं अन्य तत्सम्बन्धी ग्रन्थों का भी सार निहित है। तुलसी का रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ रामचरितमानस इतना पवित्र तथा प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ है कि हिन्दू समाज के घर-घर में समय-समय पर मानस पाठ होता है नाम-कीर्तन के साथ अष्टयाम यानी रामनाम का जाप चौबीस घण्टों तक अखण्ड चलता रहता है।

संस्कृत के कुछ अन्य ग्रन्थों में भी राम विषयक आख्यान उपलब्ध होते हैं यथा-अगस्त्य संहिता, राघवीय संहिता, राम रहस्योपनिषद, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, भुशुण्डि रामायण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण आदि। वाल्मीकि रामायण संस्कृत में होने से यह केवल पण्डितों तक सीमित थी लेकिन आम जनता के बीच इसे प्रचारित करने के लिए तुलसीदास जी ने इसका संस्कृत से हिन्दी (अवधी) भाषा में अनुवाद किया, ताकि इसके महत्त्व को सभी जानें, राम के चरित्र, आदर्श, मर्यादा तथा जीवन-अमृतवचन को जानें और अपने जीवन में उपयोग करें। रामकथा के महत्त्व को समाज में प्रचारित करने में तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में रामकथा का प्रचार किया है। तत्कालीन स्थिति पर विचार करते हुए हिन्दी साहित्य के सरल इतिहास में लिखा गया है—"तुलसी के समय मुसलमान विलासी थे और हिन्दू शक्तिहीन। समाज का उच्च वर्ग विलासिता में डूबा हुआ था और निम्न वर्ग पर अत्याचार हो रहे थे। विभिन्न सम्प्रदाय अपने-अपने मत के प्रचार में थे। सन्तों के ज्ञान के दम्भ से उच्चवर्ग रुष्ट था और निम्न वर्ग उसका ग़लत प्रयोग कर रहा था। कबीर जैसे सन्तों की ज्ञान साधना की बातें कृष्ण की गोपियों की तरह जनता को समझ में नहीं आती थीं। उसी समय समाज की इस अव्यवस्थित एवं त्रस्त दशा के सम्मुख तुलसी ने जनता के मनोनुकूल राम के शक्ति, शील एवं सौन्दर्य के समन्वित रूप की स्थापना कर उसे एक मज़बूत सहारा दिया। जनता ने गद्गद होकर तुलसी का यह आभार स्वीकार कर लिया। फलतः हिन्दू धर्म की रक्षा हुई। राम के इस स्वरूप की कल्पना में जनता को अपना रक्षक मिला। मानस के विभिन्न पात्र उसके आदर्श बन गये। मानस में स्थापित धर्म मानवतावादी था जिसमें परोपकार, अन्याय, अत्याचार का प्रतिरोध तथा दीन-दलितों के कल्याण की भावना सर्वोपरि रही। इसी कारण वह जनसामान्य के लिए ग्राह्य बन सका।"[4]

इस प्रकार रामकथा के द्वारा तुलसीदास जी ने जन-कल्याण की भावना लेकर मानस की रचना की। तुलसी ने रामचरितमानस में लिखा है—

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहि अधमाई।।
निर्णय सकल पुरान वेद कर। करेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।"[5]

(उत्तर काण्ड, रामचरितमानस, पृ. 873)

अर्थात् काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी से कहते हैं—हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान नीचता (पाप) नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पण्डित लोग भी जानते हैं।

महान लेखक या कवि सभी कालों में प्रासंगिक होते हैं। रामकथा भी सार्वभौमिक प्रासंगिक है। क्योंकि सतयुग में सत्य से लोग भवसागर से तर जाते थे, तो त्रेता में रामावतार के गुणगान से और द्वापर में कृष्ण ने अवतरित होकर धरती से अन्याय, अत्याचार, पाप तथा दुष्टों को मिटाया और कलियुग में तो केवल ईश्वर का (राम) नाम-कीर्तन (गुणगान) करने से ही लोग भवसागर से पार उतर सकते हैं। राम के समय में जो समाज में व्याप्त अन्याय, पाप, अत्याचार था वही आज भी है। त्रेता युग में राम ने बुराइयों को मिटाया उसी तरह आज भी समाज में रावण जैसी बुराइयाँ, मुसीबतें बरकरार हैं तो इन्हें मिटाने के लिए आज राम तथा रामकथा की प्रासंगिकता तो और अधिक है। तत्कालीन समय में रावण दुराचारी था, ताड़का, शूर्पणखा राक्षसी थीं उनका वध राम ने किया किन्तु आज तो मानव ही मानव का दुश्मन बना हुआ है। स्वार्थ, पाप, शोषण, राजनीति, अन्याय आदि के वश में होकर मानव अपने भाई-पिता के ख़ून के प्यासे बने हुए हैं। तो आज रामकथा की प्रासंगिकता इन समस्याओं के सुधार के लिए ज़्यादा बनी हुई है। तुलसीदास जी ने मानस में स्पष्ट लिखा है—

"द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहि उपाय न दूजा।।
कलियुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहि भव थाहा।।[6]

(मानस, पृ. 923)

अर्थात्, द्वापर में श्री रघुनाथ जी के चरणों की पूजा करके मनुष्य संसार से तर जाते हैं। दूसरा कोई उपाय नहीं है। और कलियुग में तो केवल श्रीहरि की गुण-गाथाओं का गान करने से ही मनुष्य भवसागर की थाह पा जाते हैं।

तुलसीदास जी ने जीवन के नाना स्तरों को भोगा था। लोक और शास्त्र के इस सम्मिलित ज्ञान ने उनके काव्य को व्यापक बना दिया था। तत्कालीन समाज में फैली विकृतियाँ, समस्याओं को देखकर उन्होंने रामकथा का सहारा लिया और समाज के कल्याण में ही अपना सुख समझा तथा समाज के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। तुलसीदास जी ने निम्न क्षेत्रों में समन्वय किया है—"लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैष्णव का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय एवं विभिन्न काव्य प्रणालियों के समन्वय द्वारा उन्होंने विषमता का निराकरण कर एक स्वस्थ, नवीन और स्फूर्तिदायक सामाजिक और साहित्यिक समानता का आदर्श रूप स्थापित किया। धार्मिक क्षेत्रों में उन्होंने वैष्णवों, शाक्तों और शैवों का पारस्परिक वैमनस्य दूर करने के लिए राम, शिव और शक्ति की एकता स्थापित की।"

रामकथा के आधार पर तुलसी ने मर्यादा, आदर्श, शिष्टाचार, नैतिकता आदि की समाज में प्रतिष्ठा की है अर्थात तत्कालीन समाज में मर्यादा, आदर्श, शिष्टाचार, नैतिकता आदि का पालन नहीं हो रहा था। लोग बुरे कर्म, स्वार्थ, अनैतिकता का आचरण कर रहे थे तथा गुरु, माता-पिता, पत्नी आदि का अनादर करते थे इसलिए तुलसी ने राम, सीता, लक्ष्मण तथा भरत आदि के चरित्र द्वारा समाज को मर्यादा, आदर्श तथा नैतिकता का पाठ पढ़ाया। और रामचरितमानस जैसा धर्मग्रन्थ लिखकर पापियों तथा दुष्टों को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ा।

आज भी समाज में गुरु, माता-पिता तथा पत्नी का अनादर हो रहा है। क्या आज जीव-हत्या, नर-हत्या, स्वार्थ में भाई-भाई का क़त्ल, पाप तथा भ्रष्टाचार आदि नहीं हो रहे हैं? तो क्या आज रावण जैसे देशद्रोही दुराचारी राजा (नेता) संसार में नहीं हैं? तो रामकथा में चित्रित राम जैसे राजधर्म प्रणेता, पिता तथा गुरु के आज्ञाकारी पुत्र, समाजसेवक, परोपकारी, न्याय के पुजारी, समस्त पुरुषों में उत्तम गुण धारण करने वाले भगवान (राम) की आवश्यकता क्या आज नहीं है? इसीलिए आज भी रामकथा तत्कालीन समय की भाँति प्रासंगिक है।

इसलिए तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है कि कलियुग के लिए रामकथा कितनी कारगर है—

"रामकथा कलि कामद गाई। सुजन संजीवनि मूर सुहाई।।
सोई बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम-भेक भुअंगिनि।।"

(मानस, पृ. 635)

अर्थात् रामकथा कलियुग में सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु गौ है और सज्जनों के लिए सुन्दर संजीवनी जड़ी है।

गोस्वामी तुलसीदास की प्रसिद्धि मर्यादावादी कवि के रूप में हैं। उनके आराध्यदेव भगवान श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं जो प्रत्येक स्थिति में मर्यादा का निर्वहन करते हैं। रामकथा के अन्य पात्र भी मर्यादा का पालन करते हैं। तुलसी की मान्यता है कि लोकमर्यादा का पालन करने से ही समाज

का कल्याण सम्भव है। उन्होंने शृंगार का मर्यादित चित्रण किया है जिसमें कहीं भी अश्लीलता नहीं है। पुष्प वाटिका में जब सीता और राम का प्रथम मिलन हुआ तो वहाँ तुलसी पूर्णतः मर्यादित रहे हैं। सीता को देख राम के मन में जो विचार उत्पन्न होता है उसे वे लक्ष्मण से बता देते हैं। सीता जी अयोध्या में मर्यादा दिखाती हैं। बड़ों की सेवा-सत्कार करना, छोटों से स्नेह रखना तथा अपनी सास कौशल्या की चरण सेवा करना उनका विशिष्ट गुण है। कैकेयी ने राजा दशरथ से वरदान माँगकर अयोध्या पर जो संकट ला दिया, उस समय भी राम ने पूर्णतः मर्यादा का पालन किया। जिस व्यक्ति को अयोध्या का युवराज-पद दिया जा रहा हो। उसे बिना किसी अपराध के चौदह वर्ष के लिए वन में भेज दिया जाय और वह बिना किसी ना-नुकुर के इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर ले, यह राम जैसे आदर्श पुत्र के लिए ही सम्भव था। पिता की आज्ञा को सिर झुकाकर अंगीकार कर लेना ही पुत्र धर्म है। राम ने एक शब्द भी कैकेयी के विरुद्ध नहीं कहा; किन्तु भरत अयोध्या लौटकर आये और उन्हें कैकेयी की करतूत पता चली तो वे अपने सात्विक क्रोध को रोक न सके और अपनी माँ कैकेयी को यहाँ तक कह दिया—

"वर माँगत भई नहीं पीरा। गारी न जिह मुंह पारेउ न किरा।।"

नगरवासियों में कैकेयी के प्रति क्रोध का निवारण भरत के शब्दों में करवाकर तुलसी ने मर्यादा का निर्वाह किया है। आज क्या मर्यादा का हनन तथा गुरु का अपमान नहीं हो रहा है? क्या आज सभी नारियाँ सीता जैसे कर्म करती हैं? क्या आज सभी बहुएँ सास-ससुर की सेवा करती हैं? क्या प्रत्येक बेटा आज पिता की आज्ञा का पालन करता है? तो राम-सीता की प्रासंगिकता आज कैसे ख़त्म हो सकती है?

राम लोक-धर्म के प्रतीक हैं अतः उनका विरोध करने वाली कैकेयी को भरत ने जो कुछ कहा वह मर्यादा के अनुरूप था। वन मार्ग में जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर ग्रामबालाएँ सीता से यह जानना चाहती हैं कि सीता का इनसे क्या सम्बन्ध है—तब सीता ने भारतीय नारी की मर्यादा के अनुसार बताया कि जो गोरे हैं वे मेरे देवर हैं फिर राम की ओर तिरछी नज़रें करके संकेत किया कि ये मेरे पति राम हैं।

राम-लक्ष्मण विश्वामित्र एवं वशिष्ठ ऋषि का विशेष सम्मान करते हैं गुरु का सम्मान उनका धर्म है। गुरु के सामने संकोच के कारण राम अपने मनोभाव तक व्यक्त नहीं कर पाते। काकभुशुण्डि एवं गरुड़ के संवाद में एक अवसर पर गुरु को प्रणाम न करने पर शिव ने गुरु अपराधी को जो दण्ड दिया है वह यह पुष्ट करता है कि लोक-मर्यादा एवं शिष्टता का उल्लंघन करने वाले को क्या दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं। इस तरह रामचरितमानस में सर्वत्र मर्यादा के पालन, शिष्टाचार एवं नीति पर बल दिया गया है। राम के मर्यादावाद में न तो एकांगिता है न धार्मिक मज़हबीपन है। भगवान राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो कृष्ण लीला पुरुषोत्तम हैं।

तत्कालीन समाज में व्याप्त पाखण्ड, दुराचार, छल कपट, हिंसा, अज्ञान आदि ने समाज को खोखला कर दिया था तो तुलसी ने रामकथा के द्वारा इनका दमन करने का प्रयास किया। वही सामाजिक समस्याएँ आज भी बनी हुई हैं इसलिए रामकथा की प्रासंगिकता आज और अधिक है। तुलसी ने रामचरितमानस के रूप में एक ऐसा अमरदीप प्रज्वलित कर दिया है जो अनन्तकाल तक भारतीय समाज को दीप्त करता रहेगा।

एक स्थान पर तुलसी की महानता हमें इस प्रकार दिखती है—"राम के रूप में उन्हें अलौकिक विशेषताओं से युक्त एक लोकनायक मिल गया। अपनी मर्मभेदिनी और हृदयग्राही कविता द्वारा

रामचरितमानस रूपी ऐसे वटवृक्ष को इन्होंने खड़ा किया, जिसकी छाया हर ऊँच-नीच, बड़े-छोटे, बालक-वृद्ध आदि सभी को शान्तिप्रदायिनी सिद्ध हुई। इसी रामकथा को आधार बनाकर इन्होंने अपनी सभी रचनाओं का सर्जन किया।"

रामकथा का प्रादुर्भाव त्रेता युग में हुआ था लेकिन भक्तिकाल में तुलसी ने उसको विस्तृत रूप दिया, तत्कालीन समाज में जो अशान्ति का माहौल था वह आज भी है। विज्ञान एवं बौद्धिकता के अतिवाद से पीड़ित एवं अतृप्त मानवता को तुलसी की रामकथा के आध्यात्मिक भक्ति पोषित अमृत विचार क्या शान्ति तथा तृप्ति प्रदान नहीं कर सकते? तुलसी ने 'सर्वधर्म समभाव' का सन्देश हिन्दू समाज को दिया था, क्या आज धार्मिक भेदभाव की समस्या ख़त्म हो गयी है? तो रामकथा में जो 'सर्वधर्म समभाव' तथा 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की भावना थी आज कैसे अप्रासंगिक हो सकती है।

सौन्दर्य, शील और शक्ति से युक्त राम का यह रूप करुणा से प्रेरित लोकरक्षार्थ युद्ध में प्रवृत्त राम का प्राक् रूप है। विनय पत्रिका में राम के शील स्वभाव का वर्णन करते हुए लिखा गया है—

"सुनि सीता पति सील सुभाऊ।
मोद न मन तन पुलक नैन जल, सो नर खेहर खाउ।
सिसुपन ते पितु, मातु, बन्धु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ।

(विनय पत्रिका, पृ. 2)

अर्थात् जो सीता के पति प्रभु राम के स्वभाव को न जानता हो वह धूल-मिट्टी खाने वाले के समान है, वे अपने बचपन में गुरु, बन्धु, मित्र, माता-पिता, नौकर, मन्त्री सभी के साथ प्रसन्न मुख रहा करते थे।

इसी प्रसंग में तुलसी ने रामकथा में भक्ति की महत्ता को स्वीकार करते हुए अपने सर्वाधिक प्रिय व्यक्ति का त्याग करने को उचित बताया है इसकी पुष्टि वे विनय पत्रिका में करते हैं। जैसे—

"जाके प्रिय न राम वैदेही। सो छांड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
तज्यो, पिता प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भये मृद-मंगलकारी।"

(विनय पत्रिका, पृ. 390)

अर्थात् जिस व्यक्ति को श्रीराम और सीता जी प्रिय नहीं लगते हैं उसको करोड़ों प्रकार की शत्रुता रखने वाले व्यक्ति की तरह छोड़ देना चाहिए। चाहे वह जितना भी निकट का स्नेही या सम्बन्धी क्यों न हो। प्रभुभक्त प्रह्लाद ने अपने पिता को त्यागा, विभीषण ने अपने भाई रावण को, राजा बलि ने अपने गुरु शुक्राचार्य को तथा भरत ने अपनी माता कैकेयी को त्याग दिया था। इतना ही नहीं ब्रज की गोपियों ने तो अपने स्व-पतियों को त्याग दिया था और वे सभी प्राणी आनन्दित तो हुए ही साथ ही उनका कल्याण भी हुआ।

आगे रामकथा के मर्मस्पर्शी स्थल के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी कहते हैं कि रामकथा के भीतर ये स्थल अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं—राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वनगमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, भरत की प्रतीक्षा। इनमें सबसे अधिक मर्मस्पर्शी शुक्ल जी को राम वनगमन प्रसंग लगता है—"राम वनगमन के द्वारा राम जीवन के व्यापक कर्मक्षेत्र में उतरते हैं। राम वनगमन उनके लोकरक्षा में प्रवृत्त होने की भूमिका है। इसी मनोहर दृश्य में करुणा के बीजभाव का वपन होता है। एक सुन्दर

राजकुमार के छोटे भाई और स्त्री को लेकर घर से निकलने और वन-वन फिरने से अधिक मर्मस्पर्शी दृश्य क्या हो सकता है?" (हिन्दी आलोचना, पृ. 74)

इसी कड़ी में सीता जी के त्याग और वियोग पर चर्चा करते हुए शुक्ल जी बताते हैं कि सीताहरण के पश्चात् सीता की वियोगावस्था को शुक्ल जी गोपियों की वियोगावस्था से कहीं अधिक और तीव्र मानते हैं। वे सूरदास की गोपियों के विरह का हलकापन जताने का अवसर पा जाते हैं। यद्यपि तुलसी ने सीता के विरह का विशद् वर्णन नहीं किया है लेकिन गोपियों के विरह वर्णन के कुछ अंश इतने स्वाभाविक हैं कि वे उन्हें प्रभावित नहीं कर पाते हैं। वे कहते हैं–"वन में सीता का वियोग चारपाई पर करवटें बदलने वाला प्रेम नहीं है...चार क़दम पर मथुरा गये हुए गोपाल के लिए गोपियों को बैठे-बैठे रुलाने वाला वियोग नहीं है, झाड़ियों में थोड़ी देर के लिए छिपे हुए कृष्ण के निमित्त राधा की आँखों से आँसुओं की नदी बहाने वाला वियोग नहीं है। सीता का वियोग गोपियों के वियोग से अधिक मार्मिक इसलिए है, क्योंकि वह राम को निर्जन वनों और पहाड़ों में घुमाने वाला, सेना एकत्र करने वाला, पृथ्वी का भार उतारने वाला वियोग है। इस वियोग के सामने सूरदास द्वारा अंकित वियोग अतिशयोक्तिपूर्ण होने पर भी बालक्रीड़ा-सा लगता है। अर्थात् राम का वियोग एक ऐसे पुरुष का वियोग है जो लोकरक्षा में प्रवृत्त है, जिसके द्वारा करुणा के बीजभाव का प्रसार हो रहा है। लोकमंगल और लोकरक्षा में व्यक्ति इसी भाव के द्वारा प्रवृत्त होता है।"

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि तुलसी ने रामकथा के माध्यम से मानव समाज को जनकल्याण, परोपकार, शुद्ध आचरण, सत्यता तथा आध्यात्मिकता आदि के सहयोग से भक्ति सन्देश दिया वह युगों-युगों तक तथा सर्वकालीन जीवित रहेगा। जिस रामकथा तथा रामलीला का गुणगान, वर्णन तुलसी ने किया उसी रामकथा का बखान वाल्मीकि ने किया, भगवान शंकर ने भी किया, शोमल ऋषि, अगस्त्य ऋषि, याज्ञवल्क्य ऋषि तथा काकभुशुण्डि ने भी किया। इसी तरह रामकथा की इतनी प्रसिद्धि है कि हिन्दू जनमानस के घर-घर में पूजा कथा तथा मानस पाठ होता रहता है। साथ ही नाम-कीर्तन का अष्टयाम होता है। जिस तरह सतयुग में सत्य का बखान हुआ, त्रेतायुग में राम ने अवतार ले भक्तों की रक्षा की तथा द्वापर में कृष्ण लीलाएँ हुईं। उसी तरह कलियुग में केवल प्रभु राम के गुणगान या नाम स्मरण-कीर्तन से जगत का निस्तार हो जायेगा। पाप, अत्याचार, हिंसा, शोषण का नाश केवल भजन-कीर्तन से हो जायेगा।

आज नदी के जल की तरह भारतभूमि पर पाप, अत्याचार, अनैतिकता बढ़ रही है कहा भी गया है कि संसार का भगवान इन्सान ही है धरती को स्वर्ग या नरक इन्सान ही बना सकता है। यदि उसके अन्दर सच्ची लगन, सच्ची श्रद्धा, पवित्र ईश्वर भक्ति तथा परोपकार आदि की भावना हो तो वह सब कुछ सम्भव बना सकता है। भारतभूमि की कृति महान है इसी धरती पर विश्व के सभी धर्मग्रन्थों की रचना हुई और इसी धरती पर ईश्वर ने अवतार लेकर लीलाएँ रचीं।

यह कहा जाता है कि–

"कैसी अनोखी धरा है हमारी, जहाँ की हवाएँ विहंस गीत गाती।
सन्तों फ़कीरों शहीदों की धरती, सतियों की मिट्टी सदा गुनगुनाती।
इन्सान का रूप भगवान का है, गरीबों को लखकर जो प्रकम्पित हुआ है।
गुरु रघुनाथ कह गये जो एहसान भुला, तो भगवान सोकित अचम्भित हुए हैं।
सुमन के जातन हित बने थे जो काँटे, वही आज कलियों को चुभने लगे हैं।

सच्चाई में धोकर जो पहने थे खादी, वही चन्द सेवकों पर लुभने लगे हैं।
सुना था कि डूबतों को तिनका सहारा, आज माझी भी नौका में डूबने लगे हैं।"

(स्वरचित कविता)

अर्थात्, यह भारतभूमि सदियों से सती-सावित्री, वीर योद्धा, ईश्वर, मानव, पशु, प्राणियों आदि को पैदा होते और उपकार, सद्कर्म करते हुए देख रही है। फिर भी यहाँ मानवता के रूप में दानवता समायी है। आज देश के रक्षक, अगुआ, नेता, पण्डित ही स्वार्थ-पाप में लिप्त हैं वे दूसरों की भलाई या गरीबों का उपकार क्या करेंगे। ऐसे में ईश्वर के आगमन की प्रतीक्षा पूर्वोत्तर की दुखी जनता कर रही है कि कब भगवान राम अवतार लेंगे और उन्हें शान्ति की झलक मिलेगी। इसीलिए रामकथा की प्रासंगिकता सर्वदा बनी रहेगी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विचार बिन्दुओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के पूर्वोत्तर का क्षेत्र हो या सम्पूर्ण भारतवर्ष भगवान राम की कथा की प्रासंगिकता सर्वत्र सर्वकालीन है, क्योंकि तत्कालीन समाज की समस्याओं से ज़्यादा कलियुग के समाज की समस्याएँ हैं। समाज में जो भ्रष्टाचार, पाप, अनीति, अधर्म, शोषण आदि समस्याएँ अधिक ज़ोर-शोर से फैलती जा रही है, जिनको मिटाने हेतु रामकथा की प्रासंगिकता तो (राम का रावण वध करने जैसी) बराबर बनी हुई है। क्योंकि नदी की बाढ़ की तरह धरती पर पाप बढ़ रहा है। कहा भी गया है कि–

कब तक ए अस्मत की अर्थी उठेगी, पंचालियों को समझ कर खिलौना।
धरती की छाती फटी जा रही है, देखकर इस ज़माने का करतब घिनौना।
देश में आदमी के पशु घूम रहे, मिट गयी जैसे इन्सानियत की कदर है।
कौन कब क्या करेगा भरोसा नहीं, दर-ब-दर घूमती ए तनौता निडर है।

इसी तरह यदि इन्सान इन्सान का दुश्मन बना रहेगा और पशु की तरह घिनौना काम करेगा तो उसका यह मानव जीवन व्यर्थ में ही बीत जायेगा। तुलसीदास जी ने कहा है कि यह मानव शरीर बड़े भाग्य से मिलता है जिसे परोपकार सद्कर्म में लगाना चाहिए पापकर्मों में नहीं।

"बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहि गावा।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाई न जेहि परलोक सँवारा।।"

(रामचरितमानस, पृ. 875)

अर्थात् मानव को बड़े भाग्य से यह मानव शरीर मिला है। सब ग्रन्थों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाज़ा है इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया वह दुर्भाग्यशाली है।

इसी तरह रामकथा में तुलसीदास जी ने कहा है कि भगवान राम की कृति महान है। उन्होंने परहित के लिए मानव शरीर धारण किया था।

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरी सम सब कहँ हित होई।"

(रामचरितमानस, पृ. 48)

अर्थात् कीति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगाजी की तरह सबका हित करने वाली हो। राम की कीर्ति तो बड़ी महान तथा सुन्दर है सबका अनन्त कल्याण करने वाली है। इस तरह भगवान राम ने तो भक्तों के हित के लिए ही मनुष्य शरीर धारण करके स्वयं कष्ट सहकर साधुओं को सुखी

किया। परन्तु भक्तगण प्रेम के साथ नाम जप करते हुए सहज में ही आनन्द और कल्याण के घर हो जाते हैं। मानव ने स्वार्थ में अहंकारी बनकर अपने को पाप कर्म में लिप्त कर रखा है जबकि मानव शरीर का कोई काम नहीं है बकरी का चाम हरिनाम बोलता है पर मानव का चाम किसी काम का नहीं है। मानव क्यों नहीं पाप कर्म छोड़कर सद्‌कर्म, परहित, सदाचार, आदर्श तथा ईश्वर की चरण भक्ति में मन लगाता है। रामकथा की प्रासंगिकता आज के सन्दर्भ में तभी सार्थक मानी जायेगी जब मानव मानवता के नैतिक मूल्य को समझे और अपने समाज में शान्ति बनाये। 'सर्वजनहिताय सर्वजन सुखाय' का महामन्त्र भारतवर्ष के पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में गूँजे। इस तरह रामकथा की प्रासंगिकता तब तक बनी रहेगी जब तक नदी की जलधारा, माता की दूध की धारा, धरती माता की अन्न-जल पैदा करने की क्षमता तथा आकाश में परहित में सूर्य-चाँद की रोशनी संसार में बनी रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, डॉ. जयदेव, डॉ. सिंह, डॉ. वासुदेव, कबीरवाणी पीयूष, विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृ. 31
2. वही।
3. पण्डित विद्यारत्न ज्वाला प्रसाद, श्री रामचरितमानस (रामायण), प्रकाश पब्लिकेशन, कैलाश नगर, दिल्ली-110031, पृ. 635
9. मोदी उर्मिला, काव्य सौरभ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 110
10. डॉ. अग्रवाल सुरेश, विनय पत्रिका, अशोक प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली-6, पृ. 267

राम के मानवीय मूल्यों, मर्यादा एवं आदर्श का भारतीय समाज पर प्रभाव

अपराजिता राय

भारत विविध संस्कृति वाला एक विशाल देश है। यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति काफ़ी प्राचीन है। अनेक महापुरुषों के आदर्श चरित्रों, उनके मर्यादा एवं मानवीय मूल्यों का भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा है, किन्तु एक सम्पूर्ण मानव के रूप में, उनके आदर्शों, कर्तव्यों एवं मर्यादित जीवन जीने के लिए राम की छवि सर्वोपरि है। भारतीय समाज के हर वर्ग के लोगों ने अपने आदर्श पुरुष के रूप में राम को स्वीकार किया है। भारत के प्रायः सभी भाषा साहित्यों में लेखकों ने राम के रहन-सहन, आचार-विचार, हँसना-बोलना, चलना-फिरना, खेलना-कूदना, पढ़ना-लिखना, विवाह, वनगमन, मैत्री, युद्ध, राज्य संचालन, यहाँ तक कि उनके क्रोध को भी आदर्श मानकर साहित्य रचना की है।

हिन्दी प्रदेशों में गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' प्रायः हर घर एवं परिवार में उपलब्ध है। इसमें वर्णित राम के चरित्र, मर्यादा, आदर्श, जीवन मूल्य एवं जीने की कला से पूरा समाज प्रभावित है। बच्चों के जन्म, उनके नामकरण, उनकी परवरिश, उनके विद्याध्ययन आदि संस्कार भी लोग 'रामचरितमानस' में वर्णित रामकथा एवं उसमें वर्णित घटनाओं के अनुरूप ही करने का प्रयास करते हैं। लोग 'रामचरितमानस' में वर्णित दोहे और चौपाइयों का दृष्टान्त देकर घटनाओं की व्याख्या करते हैं। लोग राम-लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम, माता-पिता एवं गुरु के प्रति आज्ञापालन एवं श्रद्धा जैसी घटनाओं का उदाहरण देते हैं–

"प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहि माथा।।
आयसु मागि करहि पुर काजा। देखि चरित हरषई मन राजा।।"

(रा.च.मा. 1/204/4)

राम का चरित्र मनुष्यों को बचपन से ही वीर, साहसी, अनुशासित बनाता है एवं भय के माहौल को समाप्त करने की प्रेरणा देता है।

"पुरुषसिंह दोउ वीर हरषि चले मुनिभय हरण।
कृपा सिन्धु मतिधीर अखिल विस्व कारण हरण।।"

(रा.च.मा. 1/208)

गुरु विश्वामित्र के साथ जब श्रीराम एवं लक्ष्मण जनकपुर पहुँचे। वहाँ पर श्रीराम द्वारा शिव धनुष तोड़ने के बाद जिस रीति और परम्परा के साथ उनका विवाह जनकदुलारी सीता के साथ 'रामचरितमानस' में वर्णित है, प्रायः वही परम्परा आज भी मिथिलांचल में विद्यमान है। मिथिला क्षेत्र की परम्परा है कि विवाह मण्डप में जाने से पहले द्वार पर मंगलगान करती हुई महिलाओं द्वारा वर का परीक्षण होता है।

"सजी आरती अनेक विधि मंगल सकल संवारि।
चलि मुदित परिछनि करन गजगामिनी वर नारि।।"

(रा.च.मा. 1/317)

"करि आरति अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मण्डप तब कीन्हा।।"

(रा.च.मा. 1/318/2)

ब्रह्मचर्याश्रम से गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने वाले वर के व्यावहारिक ज्ञान की परीक्षा ली जाती है, साथ ही उसे लोक शिक्षा भी दी जाती है। विवाह के समय नारियाँ दूल्हे एवं उसके परिवार पर मधुर व्यंग्य भी करती हैं। दूल्हे को वेदी के चारों ओर घुमाया जाता है। विवाह सम्पन्न होने पर दूल्हे को कोहबर ले जाते समय दूल्हे की साली देहली छेककर आगे जाने से रोकती है, जब तक कि उसकी माँगें पूरी नहीं हो जातीं।

"देहरी छेकावन हमरा चुकबियौ हे रघुवंसी दुल्हा
तखन कोहबर घर जाउ यौ रघुवंसी दुल्हा।"

(मैथिली लोक गीत)

जब दुल्हन को लेकर दूल्हा विवाह के बाद अपने घर जाने लगता है, तब दुल्हन की विदाई का यह अवसर बहुत ही कारुणिक होता है। दुल्हन के विछोह में उसके परिवार के सभी सदस्य इस मार्मिक पीड़ा को सहने में अपने-आप को असमर्थ पाते हैं। रोती हुई दुल्हन की सखियाँ 'समदाउन' गाने लगती हैं—

"बड़रे जतन सँ सीयाजी के पोसल, सेहो रघुवंसी नेने जाय ।"

(मैथिली लोक गीत)

पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल की लोक चेतनाओं में भी श्रीराम का व्यापक प्रभाव है। दसवें सिख गुरु गुरु गोविन्द सिंह ने अत्यन्त ही काव्यात्मक ढंग से रामकथा को प्रस्तुत किया है। बहुत से लोग इसे 'गोविन्दरामायण' भी कहते हैं। 'गोविन्दरामायण' में मुख्य रूप से श्रीराम की छवि दुष्टों के संहारक, अभयदाता तथा शरणागत रक्षक के रूप में चित्रित है। 'गोविन्दरामायण' के अनुसार कौशल्या 'कोसल' देश की राजकुमारी थीं। कौशल्या का जन्मस्थान 'कुड़हाम' बताया गया है, जो पंजाब और हरियाणा की सीमा पर अवस्थित है। आजकल यह 'धड़ाम' के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र के कई पंजाबी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय आज भी अपने नामों के आगे 'कोसल' गोत्र का प्रयोग करते हैं। यह क्षेत्र श्रीराम की ननिहाल भूमि है। अतः इस क्षेत्र की आधुनिक बेटियों को भी कौशल्या जैसी आदर्श सास, दशरथ जैसा आदर्श ससुर, लक्ष्मण जैसा देवर तथा राम सदृश आदर्श पति पाने की मनोकामना रहती है।

"बेटी किहो जिहा वर लोड़िए?
मैं ताँ सस्स मँगाँगी कौशिलिआ
कि सहुरा दशरथ होवे।
मैं ताँ वर मँगागी श्रीराम
छोटा देवर लक्ष्मण होवे।"

(पंजाबी लोक गीत)

पंजाब की पलवई उप-बोली के लोक-गीतों और बारात के भोजन के समय गाये जाने वाली हास-परिहास भरी रचनाओं में राम एवं सीता के वैवाहिक प्रसंगों का वर्णन कर श्रीराम के आदर्शों को आत्मसात् करने का प्रयास किया गया है।

हरियाणा प्रदेश के लोक गीतों में भी लगभग पंजाब जैसे ही प्रसंगों द्वारा श्रीराम के चरित्र का वर्णन कर उनके मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं मर्यादाओं को आत्मसात करने का प्रयास किया है—

"बाबाजी के कमरे में बन्नाजी बुलाए।
बाबल जी के कमरे में बन्नाजी बुलाए
देख म्हारी लाड़लो यो कैसे वर आए।
चन्दा नही आए, सूरज नही आए ।
हाथी के होदे राजा राम चन्दर आए ।"

(हरियाणवी लोक गीत)

हिमाचल प्रदेश के लोक साहित्य में श्रीराम के चरित्र एवं आदर्शों की व्याख्या कई रूपों में वर्णित है। कुल्लू जनपद में श्रीराम के जीवन से सम्बन्धित लोक नाट्य का मंचन होता है। इसका आरम्भ दशहरे के अन्तिम दिवस की पूर्व रात्रि से होता है जो अगले तीन महीनों तक केवल शुक्ल पक्ष की रात्रियों में ही किया जाता है। शिमला, सोलन, सिरमौर आदि ज़िलों के अनेक भागों में 'बलराज' नामक गेय नाटक का मंचन होता है। यह दीपावली के आसपास होता है। हिमाचल के कई भागों में होली के दिनों में 'फागुली' नामक त्योहार मनाया जाता है। उस दिन काग़ज़ पर रावण का चित्र बनाकर ग्रामीण उस पर बाणों से निशाना लगाते हैं। वस्तुतः यह आसुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त करने वाले श्रीराम की शक्ति के प्रति भक्ति भाव एवं उनके अनुरूप आचरण करने की शौर्यपूर्ण पद्धति है।

कश्मीरी भाषा में प्रकाशराम कृत 'रामावतारचरित' है, जिसमें रामकथा का आद्योपान्त वर्णन है। ग्रियर्सन ने 'प्रकाशराम' का नाम 'दिवाकर प्रकाश भट्ट' बताया है। कश्मीरी समाज में यह रामायण अत्यन्त ही लोकप्रिय है। लोग इसे तीज-त्योहार, शादी-ब्याह जैसे शुभ अवसरों पर गाते हैं। इसमें वर्णित श्रीराम के आदर्श, मर्यादा एवं जीवन मूल्यों का वहाँ के समाज पर इतना प्रभाव है कि 1910 ई. में यह प्रथम बार फ़ारसी लिपि में छपा। ग्रियर्सन ने सन् 1930 ई. में इसे रोमन लिपि में प्रकाशित करवाया।

राजस्थान के लोकजीवन में श्रीराम का चरित्र एवं आदर्श इस सीमा तक रचे-बसे हैं कि पारस्परिक अभिवादन प्रायः 'राम-राम सा' के उच्चारण से होता है। राजस्थान के जनसामान्य की श्रीराम के प्रति अडिग एवं अविरल आस्था, निष्ठा एवं विश्वास का वहाँ के लोक-साहित्य में वर्णन है। मीरा के पदों में श्रीराम के चरित्र का मार्मिक वर्णन है। विश्नोई समुदाय में श्रीराम के साथ-साथ रामकथा से सम्बन्धित सभी घटनाओं एवं स्थलों का काफ़ी महत्त्व है। लोग श्रीराम के आदर्शों का अनुकरण करने का प्रयास करते हैं।

प्राचीन गुजरात में कठपुतलियों के खेल द्वारा रामलीला का प्रदर्शन होता था। मध्यकाल में गुजराती भाषा के कवि गिरिधर द्वारा 'गिरिधररामायण' की रचना हुई। रामकथा के प्रसिद्ध प्रसंगों का इसमें प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है। गुजराती समाज के लोगों में इसका व्यापक प्रभाव है। अनेक जैन कवियों ने भी अपने काव्य में श्रीरामकथा को मूल आधार बनाया है। गुजरात के लोक-साहित्य एवं लोक गीतों में भी रामकथा एवं उनके आदर्शों का वर्णन है।

संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में सिन्धु-घाटी सभ्यता का विशिष्ट स्थान है। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो के शिलालेखों से यह स्पष्ट है कि सिन्ध की संस्कृति काफ़ी प्राचीन है। अनेक मनीषियों ने सिन्धु के किनारे वेदों एवं पुराणों की रचना कर सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में काफ़ी योगदान दिया। वैसे तो सिन्ध प्रदेश में श्रीराम से सम्बन्धित कोई महत्त्वपूर्ण स्थल नहीं है, फिर भी आदिकाल से ही वहाँ के जनमानस में श्रीराम के जीवन आदर्श, उनके मर्यादित जीवन एवं मानवीय मूल्यों का

व्यापक असर है। आज भी वहाँ गाँव के लोग अभिवादन में 'राम सत' अर्थात् 'राम राम' कहते हैं। आपसी बातचीत के समय बात-बात पर 'राम भली कंदो' कहते हैं। सिन्धी साहित्य में भी श्रीराम के आदर्शों, उनके मानवीय मूल्यों एवं मर्यादाओं का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव है। सिन्धी संस्कृति में 'एको एको रामे रामे सति' अर्थात् 'एक राम केवल एक राम ही सत्' है। वहाँ की अनेक लोकोक्तियों एवं रीति-रिवाजों के मूल में श्रीराम और उनके आदर्शों की कथा ही दिखाई पड़ती है।

महाराष्ट्र में सन्त एकनाथ द्वारा रचित 'भावार्थ रामायण' है। महाराष्ट्र के जनजीवन में इस ग्रन्थ का व्यापक प्रभाव है। श्रीराम के आदर्श, उनके मानवीय मूल्यों एवं मर्यादा का महत्त्व बताते हुए उन्होंने कहा है—

"करिता राम-कृष्ण स्मरण। उठोनि पले जन्म मरण।।
तेथे भव-भयाचे तोड कोण। धैर्यपण धरावया।।"

(सन्त एकनाथ, भागवत, अ. 2/6)

कन्नड़ भाषा के महाकवि बतलेश्वर कृत 'तोरवे रामायण' है। इस रामायण की रामकथा वहाँ के समाज में काफ़ी लोकप्रिय है। इस काव्य में श्रीराम के आदर्श, मानवीय मूल्य एवं मर्यादाओं का रम्य वर्णन है। राम का उदात्त चरित्र वहाँ के जनमानस में प्रेरणा का स्रोत है।

तमिल के महाकवि कम्बन द्वारा तमिल भाषा में 'कम्ब रामायण' की रचना की गयी है। तमिल समाज में इस रामकथा का गहरा असर है। इसमें वर्णित श्रीराम के आदर्श, मर्यादा एवं मानवीय मूल्यों से वहाँ के लोग काफ़ी प्रभावित है।

तेलुगु भाषा-साहित्य का इतिहास सन् 1050 ई. के लगभग माना गया है। लगभग 1380 ई. में श्रीगोनबुद्धराज ने देशज छन्दों में 'रंगनाथरामायण' की रचना की। तेलुगु भाषा में रामकथा का यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें श्रीराम के लोक-कल्याणकारी एवं मर्यादित रूपों का वर्णन है। तेलुगु समाज में इस साहित्य का गहरा असर है। फलतः वहाँ का जनमानस श्रीराम के मर्यादित जीवन के अनुरूप जीने का प्रयास करता है।

उड़िया साहित्य का जन्मकाल अनुमानतः ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है। इन हज़ार वर्षों में इस साहित्य में कई सौ रामकथाओं की रचना एवं अनुवाद हुआ है। इन सभी ग्रन्थों का आधार 'वाल्मीकि रामायण', 'अध्यात्म रामायण' तथा 'हनुमन्नाटक' है। ग्रामीण अंचलों में भी बहुत सारे रामकथा के अनुवाद उपलब्ध हैं। ताड़ पत्र पर लिखी कई रामकथा भी सुरक्षित हैं। उड़िया भाषा की सबसे प्राचीन रामायण का अनुवाद 'रूइपादकातेणपदी रामायण' है, जो अभी तक अप्रकाशित है। इसका रचनाकाल नवीं सदी माना जाता है। इस ग्रन्थ में राम के उच्च आदर्श, मर्यादा, यज्ञ-महिमा, मुनियों की रक्षा आदि का उल्लेख है। उड़िया भाषा के आदिकवि शारलादास कृत 'विलंकारामायण' एक विलक्षण कृति है। उत्कल क्षेत्र में यह रामायण अत्यन्त लोकप्रिय है। उड़िया भाषा में एक और रामकथा 'जगमोहनरामायण' है। यह उड़िया के महान कवि बलरामदास द्वारा रचित ग्रन्थ है। इन ग्रन्थों में वर्णित श्रीराम के जीवन का वहाँ के लोगों पर काफ़ी प्रभाव है एवं वे जीवन के हर क्षेत्र में राम के मर्यादित जीवन का उदाहरण देते हैं। यहाँ के जनजीवन में श्रीराम के बारे में कहा जाता है कि जिनके मस्तक पर धैर्य का जटा भार और युगल नेत्रों में कृपा का निर्झर झरना बहता है, अधर पर शान्ति की वाणी विश्व को शान्ति का सन्देश देती है, जिनके पुरुषार्थ से प्रजा अपने को भयरहित मानती है, वही श्रीराम लोगों के मन में समाहित हैं।

बंगाल में कृत्तिवास नामक कवि ने बांग्ला भाषा में रामायण की रचना की, जिसे 'कृत्तिवास

रामायण' कहा जाता है। कृतिवास का जन्मकाल 1453 ई. माना जाता है। अपने आश्रयदाता गौड़ेश्वर के अनुरोध पर इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की। 'वाल्मीकि रामायण', 'अद्भुत रामायण', 'अध्यात्म रामायण' जैसे ग्रन्थों को आधार मानकर 'कृत्तिवास रामायण' की रचना की गयी है। बांग्ला भाषा साहित्य में इस ग्रन्थ का व्यापक प्रभाव है। इस ग्रन्थ में वर्णित श्रीराम के आदर्श चरित्र, उनके मानवीय मूल्य एवं मर्यादाओं का इस क्षेत्र के लोगों पर गहरा असर है। लोगों की धारणा है कि श्रीराम के आदर्श चरित्र से प्रेरित व्यक्ति का विचार कभी भी समाज के विपरीत दिशा में नहीं जा सकता है। वह कभी भी अवसादग्रस्त नहीं हो सकता है। श्रीराम के मानवीय मूल्यों एवं मर्यादाओं को समझने वाला व्यक्ति कभी भी कोई अनैतिक कार्य नहीं कर सकता। इसका सबसे बड़ा प्रमाण महर्षि वाल्मीकि स्वयं हैं, जो एक लुटेरे रत्नाकर से उच्च कोटि के विद्वान एवं साधक बनकर 'वाल्मीकि रामायण' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ की रचना कर सदा के लिए अमर बन गये। श्रीराम ने अपने उच्च मानवीय गुणों एवं प्रेम के वशीभूत होकर शबरी जैसी भीलनी के जूठे बेर खाये। वनवासियों एवं वंचित वर्गों को अपना प्रिय मित्र बनाकर श्रीराम ने उन्हें उचित आदर एवं सम्मान देकर उत्कृष्ट मर्यादा का पालन किया। अतः श्रीराम के जीवन से समाज के हर व्यक्ति को प्रेरणा लेनी चाहिए।

असमिया भाषा-साहित्य में श्रीराम के उदात्त चरित्र, मर्यादा एवं मानवीय मूल्यों का वर्णन है, जिसका काफ़ी प्रभाव असमिया समाज में है। असमिया भाषा में राम साहित्य की एक लम्बी सूची है—

1. माधव कन्दलि कृत 'रामायण' (14वीं से 16वीं शताब्दी)
2. अनन्त कन्दलि कृत 'रामायण' (16वीं शताब्दी)
3. दुर्गावर कृत 'गीतिरामायण' (16वीं शताब्दी)
4. अनन्त ठाकुर आता की 'कीर्तनिया रामायण' (17वीं शताब्दी)
5. रघुनाथ महन्त की 'गद्य कथा रामायण'(17वीं शताब्दी)
6. रघुनाथ महन्त की 'अद्भुत रामायण'(17वीं शताब्दी)
7. रघुनाथ महन्त की 'शत्रुंजयरामायण'(17वीं शताब्दी)
8. गंगाराम राय कृत 'सीता वनवास'(17वीं शताब्दी का परवर्ती काल)
9. भवभेद का 'अश्वमेध यज्ञ'
10. असमिया कृतवास पण्डित कृत 'अंगद रामायण'
11. धनंजय का 'गणक चरित्र' (इस ग्रन्थ में वर्णित हनुमानजी गणक वेष धारणकर मन्दोदरी के पास जाते हैं।)
12. गुरु श्री शंकरदेव एवं श्री माधवदेव की रचनाओं 'कीर्तनघोषा' और 'नामघोषा' के पदों में श्रीराम से सम्बन्धित कुछ पद हैं।
13. असम के विवाह गीतों (लोक गीत) में भी श्रीराम-कथा से सम्बन्धित कुछ प्रसंग हैं।
14. श्री शंकरदेव कृत 'राम विजय' नाटक

भारत के आदिवासियों में भी राम के आदर्श चरित्र, मानवीय मूल्यों एवं मर्यादाओं से सम्बन्धित कई कथाएँ प्रचलित हैं। सामान्यतः आदिवासी समाज में पढ़ाई-लिखाई की समुचित व्यवस्था नहीं होने के कारण कोई लिखित साहित्य नहीं है। अतः उनके यहाँ मौखिक रूप से उपलब्ध सामग्री को ही आधार मानकर प्रमाणित किया जा सकता है।

बंगाल और बिहार के सन्थाल समाज में रामकथा काफ़ी लोकप्रिय है। मुण्डा समाज के लोग भी रामकथा से काफ़ी प्रभावित हैं। मध्य प्रदेश का आदिवासी समाज श्रीराम के जीवन चरित्र को बिल्कुल अपने जैसा पाता है। उनके अनुसार, उनके राम उनके साथ वन-उपत्यकाओं में रहते हैं, कन्दमूल खाते हैं, दुष्ट जनों का संहार करते हैं, सुख-दुख में उनका साथ देते हैं।

भारत के मुस्लिम समाज के लोगों में भी श्रीराम के आदर्श चरित्र, उनके मानवीय मूल्य एवं मर्यादित जीवन का व्यापक असर है। रामभक्त कलन्दर शाह, भक्त शीश पैगम्बर, जिकिरशाह, खजट्टी पीर, गजापीर, सन्त जमीलशाह, सन्त वसाली जैसे महापुरुषों ने राम के जीवन से प्रेरित होकर उनके आदर्शों पर चलकर, सामान्य जनों को राम के उच्च आदर्श, उनके मानवीय मूल्यों एवं उनके मर्यादित जीवन से प्रेरणा लेने के लिए अपने उपदेशों से प्रेरित किया।

भारतीय मुस्लिम समाज में श्रीराम के चरित्र का प्रभाव समकालीन उपन्यासकार मो. आरिफ़ के उपन्यास 'उपयात्रा' (2006 ई.) की कथावस्तु से भी पता लगता है। इस उपन्यास में हुसैनापुरा नामक एक मुस्लिम गाँव है। इस गाँव का चित्रण करते हुए उपन्यासकार कहते हैं—"हुसैनापुर के वासी राम जैसी औलाद की दुआ करते हैं और भरत एवं लक्ष्मण जैसा भाई चाहते हैं। और हाँ, दुल्हिन हो तो जनकदुलारी जैसी। कैकेयी, मन्थरा और रावण से पूरा गाँव चिढ़ता है।"

चरित्र ही व्यक्ति या समाज का अमर इतिहास है। उसकी अमर कीर्ति है। चरित्र ही शरीर का, प्राणों का, मन और बुद्धि का आधार है। रामकथा में जहाँ एक ओर राम का मंगलमय चरित्र है, वहीं दूसरी ओर रावण का आसुरी चरित्र है। एक ओर मानव रूप में देव है, तो दूसरी ओर मानव रूप में राक्षस या दानव। रावण एक ऐसा शासक है, जो स्वयं निर्भय रहना चाहता है। वह चाहता है कि सभी मुझसे भयभीत रहें, मैं केवल शासक रहूँ और अन्य सभी शासित रहें, मेरा स्वयं निर्मित न्याय मुझ पर नहीं वरन् अन्य लोगों पर लागू रहे। सभी लोग मेरी प्रशंसा करते रहें। वहीं दूसरी ओर श्रीराम की नीति है कि भय के बल पर किसी को कर्तव्यपरायण नहीं बनाया जा सकता, आश्रितों की सुरक्षा, उनका सम्मान और उचित सत्कार ही उन्हें कर्तव्यारूढ़ कर सकता है। न्याय के पथ पर चलने वाले पुरुषों की सहायता सभी लोग करते हैं, किन्तु किसी कुमार्गगामी का साथ उसका सगा भाई भी नहीं देता है। न्यायपूर्ण पथ पर चलने वाले श्रीराम का साथ भील, वनवासी आदि सभी लोगों ने दिया, वहीं कुमार्गगामी रावण का साथ उसके सगे भाई विभीषण ने भी छोड़ दिया। रावण ने अपने परिवार के ऐसे सभी सदस्यों को अपमानित किया जिन्होंने 'सीताहरण' का विरोध किया। उसने विभीषण पर अपने शत्रु श्रीराम से मिल जाने का मिथ्यारोप लगाया। दूसरी ओर श्रीराम ने कभी भी किसी को गफ़लाम नहीं बनाया। गफ़लामी के चिह्नों को मिटा देने में ही मानवता का गौरव माना, पशु सदृश मानवों को भी मानवोचित कर्म करने को प्रेरित किया। स्वयं कष्ट सहकर भी शरणागतों एवं आश्रितों की रक्षा करने का वचन दिया। श्रीराम का शासन जहाँ धर्ममय होने से सर्वजनप्रिय था, वहीं रावण का शासन भयाक्रान्त एवं भौतिकवाद पर संचालित और आधारित था। श्रीराम का शासन सत्य-सापेक्ष, न्याय-सापेक्ष तथा धर्म-सापेक्ष था। श्रीराम की राजनीति में शास्त्र की प्रतिष्ठा है तो रावण की राजनीतिक में शस्त्र की।

अतः हम पाते हैं कि भारत के सभी प्रदेशों के साहित्य में वहाँ के रचनाकारों द्वारा रामकथा का वर्णन मिलता है एवं राम के उच्च आदर्श जन-जन में व्याप्त हैं। मनुष्य के जीवन में आने वाले सभी सम्बन्धों को सक्षमता एवं पूर्णता से निभाने की शिक्षा देने वाले श्रीराम के चरित्र के समान दूसरा कोई चरित्र नहीं है। उनका पराक्रम सम्पूर्ण भारत की एकता का प्रत्यक्ष चित्र है।

राम के जीवन का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि जिस समय जैसा कार्य करना चाहिए, उन्होंने उस समय वैसा ही कार्य किया। राम रीति, नीति, प्रीति तथा भीति हमारे सामाजिक के जीवन का अभिन्न हिस्सा है। राम परिपूर्ण हैं, आदर्श हैं। उन्होंने नियम और त्याग का एक आदर्श स्थापित किया है।

सन्दर्भ

1. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीरामचरितमानस, 1991
2. मिश्र, जयमन्त, 'मिथिला के दूल्हा श्रीराम', कल्याण 1 (1994), 375-376
3. कपूर, नवरत्न, 'पंजाबी, हरियाणवी तथा हिमाचली लोक-चेतना में रामभक्ति का स्वरूप', कल्याण 1 (1994), 377-380
4. कौल, जानकीनाथ, 'कश्मीरी रामायण-रामावतारचरित', कल्याण 1 (1994), 256-357
5. सिंह, ओंकारनारायण, 'राजस्थान में रामभक्ति', कल्याण 1 (1994) : 381-383
6. प्रेमदास, श्रीनारायणदास, 'सिन्धी-साहित्य में राजाराम-सीताराम', कल्याण 1 (1994), 380
7. पुंजाणी, कमल, 'गुजराती में रामभक्ति का विकास', कल्याण 1 (1994), 387-388
8. परदेसी, रमेशचन्द्र, 'महाराष्ट्र के वारकरी-सम्प्रदाय में श्रीरामनाम की महिमा' कल्याण 1 (1994), 388-390
9. झा, आद्याचरण, तमिल कम्ब रामायण' के कुछ विशिष्ट वर्णन, कल्याण 1 (1994), 260-261
10. त्रिपाठी, योगेश्वर, 'उड़िया साहित्य में रामकथा', कल्याण 1 (1994), 385-386
11. गोयनका, म. कृत्तिवास रामायण, कल्याण 1 (1994), 245-248
12. राघव, दुर्गेशनन्दिनी, आदिवासियों में प्रचलित रामकथाएँ, कल्याण 1 (1994), 263
13. व्यास, लल्लन प्रसाद, 'मुस्लिम सन्तों ने श्रीराम के दर्शन किये और कराये,' कल्याण 1 (1994), 367-370
14. आरिफ़, मो. उपयात्रा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006

एशिया के विभिन्न देशों में रामकथा

चारु चौहान

रामकथा भारत की ही नहीं विश्व की सम्पत्ति है। वह संस्कृत भाषा में रची गयी फिर भारत की अन्य भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ और उसके साथ-साथ अन्य देशों की भाषाओं में भी वह अनुवादित व कुछ परिवर्तित रूप में पहुँची। यह जहाँ भी गयी जनमानस के दिल को छूते हुए उस क्षेत्र के समाज का अभिन्न अंग बन गयी। एशिया के देशों में तो रामकथा इतनी अधिक प्रचलित है कि रामायण को कुछ विद्वानों ने एशिया का महाकाव्य ही कह दिया है। यह वहाँ के जीवन, धर्म, संस्कृति, कला आदि का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी है।

रामकथा के माध्यम से इन देशों में भारतीय संस्कृति पहुँची और वहाँ की जनता ने उसे अपने साहित्य और धर्म का हिस्सा बना लिया। यद्यपि इन देशों में रामायण की कथा तथा चरित्र में परिवर्तन हो गया है, किन्तु रूपान्तर के बावजूद चरित्र लोकमानस में इतने घुल-मिल गये हैं कि उनका अपना एक अलग रूप ही विकसित हो गया है। जिन देशों में कई सौ साल पहले रामकथा पहुँची उनमें चीन, तिब्बत, जापान, इंडोनेशिया, थाईलैंड, मलेशिया, श्रीलंका, फिलीपींस आदि देश प्रमुख हैं।

"आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण के दिग्वर्णन में जिन स्थानों का उल्लेख हुआ है, कालान्तर में वहाँ के साहित्य और संस्कृति पर रामकथा का वर्चस्व स्थापित हो गया। रामकथा साहित्य के विदेश गमन की तिथि और दिशा निर्धारित करना अत्यन्त कठिन कार्य है फिर भी दक्षिण पूर्व एशिया के शिलालेखों से इसकी तिथि की समस्या का निराकरण बहुत हद तक हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी में ही रामायण वहाँ पहुँच गयी थी। अन्य साक्ष्यों से यह भी ज्ञात होता है कि रामकथा की प्रारम्भिक धारा सर्वप्रथम दक्षिण पूर्व एशिया की ओर प्रवाहित हुई।"[1]

दक्षिण पूर्व एशिया की सबसे प्राचीन और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति प्राचीन जावानी भाषा में रचित काकावीन रामायण है, जिसकी तिथि 9वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इसके रचनाकार महाकवि योगीश्वर हैं। 15वीं शताब्दी में इंडोनेशिया के इस्लामीकरण के बावजूद वहाँ जावानी भाषा में सेरतराम, सेरत काण्ड, रामकेलिंग आदि अनेक रामकथा काव्यों की रचना हुई जिनके आधार पर अनेक विद्वानों द्वारा वहाँ के राम साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया गया।

इंडोनेशिया के बाद हिन्द-चीन भारतीय संस्कृति का गढ़ माना जाता है। इस क्षेत्र में पहली से 15वीं शताब्दी तक भारतीय संस्कृति का वर्चस्व रहा। यह सर्वथा आश्चर्य का विषय है कि कम्पूचिया के अनेक शिलालेखों में रामकथा की चर्चा हुई है, किन्तु वहाँ उस पर आधारित मात्र एक कृति 'रामकेर्ति' उपलब्ध है वह भी खण्डित रूप में। उससे भी अधिक आश्चर्य का विषय यह है कि चम्पा (वर्तमान वियतनाम) के एक प्राचीन शिलालेख में वाल्मीकि के मन्दिर का उल्लेख है, किन्तु वहाँ रामकथा के नाम पर मात्र लोककथाएँ ही उपलब्ध हैं।

बर्मावासियों को प्राचीनकाल से ही रामायण की जानकारी थी। ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं सदी के पहले से ही वह अनेक रूपों में वहाँ के जनजीवन को प्रभावित कर रही थी। ऐसी सम्भावना है कि लोकाख्यानों और लोक-गीतों के रूप में रामकथा की परम्परा वहाँ पहले से विद्यमान थी, किन्तु बर्मा की भाषा में रामकथा साहित्य का उदय अठारहवीं शताब्दी में ही दृष्टिगत होता है। यू-टिन हट्वे ने बर्मा की भाषा में रामकथा साहित्य की सोलह रचनाओं का उल्लेख किया है—(1) रामवत्थु (1775 ई. के पूर्व), (2) राम सा-ख्यान (1775 ई.), (3) सीता रा-कान, (4) राम रा-कान (1784 ई.), (5) राम प्रजात (1789 ई.), (6) का-ले रामवत्थु, (7) महारामवत्थु, (8) सीरीराम (1849 ई.), (9) पुंटो राम प्रजात (1830 ई.), (10) रमासुड्मुई (1904 ई.), (11) पुंटो रालक्खन (1935 ई.), (12) टा राम-सा-ख्यान (1906 ई.), (13) राम रुई (1907 ई.), (14) रामवत्थु (1935 ई.), (15) राम सुमः मुइ (193 ई.) और (16) रामवत्थु आ-ख्यान (1957 ई.)।

रामकथा पर आधारित बर्मा की प्राचीनतम गद्य कृति 'रामवत्थु' है। इसकी तिथि अठारहवीं शताब्दी निर्धारित की गयी है। इसमें अयोध्या काण्ड तक की कथा का छह अध्यायों में वर्णन हुआ है और इसके बाद उत्तर काण्ड तक की कथा का समावेश चार अध्यायों में ही हो गया है। रामवत्थु में जटायु, सम्पाति, गरुड़, कबन्ध आदि प्रकरण का अभाव है।

रामवत्थु की कथा बौद्ध मान्यताओं पर आधारित है, किन्तु इसके पात्रों का चरित्र-चित्रण वाल्मीकीय आदर्शों के अनुरूप हुआ है। कथाकार ने इस कृति में बर्मा के सांस्कृतिक मूल्यों को इस प्रकार समाविष्ट कर दिया है कि वहाँ के समाज में यह अत्यधिक लोकप्रिय हो गया है। यह बर्मा की परवर्ती कृतियों का भी उपजीव्य बन गया है।

रामवत्थु का आरम्भ दशगिरि (दशग्रीव) तथा उसके भाइयों की जन्मकथा से होता है। रावण की माता गोंवी ब्रह्मा को दस केलों का गुच्छा समर्पित करती है जिसके फलस्वरूप दशग्रीव का जन्म होता है। इसके बाद कुम्भकेर्न (कुम्भकरण) और विभीषण उत्पन्न होते हैं। इसी सन्दर्भ में बाली की जन्मकथा भी सम्मिलित है। कथा की समाप्ति अपने दोनों पुत्रों के साथ सीता की वापसी से होती है।

मलेशिया मुस्लिम देश होने पर भी वहाँ भारतीय संस्कृति का प्रभाव रहा है। मलेशिया में रामकथा का प्रचार अभी तक है। वहाँ मुस्लिम भी अपने नाम के साथ अक्सर राम, लक्ष्मण, सीता का नाम जोड़ते हैं। यहाँ रामकथा साहित्य, छाया नाटक तथा रामायण-नृत्य में मिलता है। "मलेशिया का इस्लामीकरण 13वीं शताब्दी के आसपास हुआ। मलय रामायण की प्राचीनतम पाण्डुलिपि बोडलियन पुस्तकालय में 1633 ई. में जमा की गयी थी।"[2]

इससे ज्ञात होता है कि मलेशियावासियों पर रामायण का इतना प्रभाव था कि इस्लामीकरण के बाद भी लोग उसका परित्याग नहीं कर सके। मलेशिया में रामकथा पर आधारित एक विस्तृत रचना है 'हिकायत सेरीराम'। इसके लेखक अज्ञात हैं। इसकी रचना तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच हुई थी। इसके अतिरिक्त यहाँ के लोकाख्यानों में उपलब्ध रामकथाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

"हिकायत सेरीराम विचित्रताओं का अजायबघर है। इसका आरम्भ रावण की जन्मकथा से हुआ है। किंद्रान (स्वर्ग लोक) की सुन्दरियों के साथ व्यभिचार करने वाले सिरानचक (हिरण्याक्ष) को पृथ्वी पर दस सिर और बीस भुजाओं वाले रावण के रूप में जन्म लेना पड़ा। वह चित्रवह का पुत्र और वोर्मराज का पौत्र था। चित्रवह को रावण के अतिरिक्त कुम्भकेर्न (कुम्भकरण) और बिबुसनम (विभीषण) नामक दो पुत्र और सुरपंडकी (शूर्पनखा) नामक एक पुत्री थी।"[3]

दुराचरण के कारण रावण को उसके पिता ने जहाज़ से बुटिक सरेन द्वीप भेज दिया। वहाँ उसने अपने पैरों को पेड़ की डाल में बाँधकर तपस्या की। आदम उसकी तपस्या से प्रसन्न हो गये । उन्होंने अल्लाह से आग्रह किया और उसे पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल का राजा बनवा दिया। तीनों लोकों का राज्य मिलने पर रावण ने तीन विवाह किये। उसकी पहली पत्नी स्वर्ग की अप्सरा नीलोत्मा, दूसरी पृथ्वी देवी और तीसरी समुद्रों की रानी गंगा महादेवी थी। नीलोत्मा ने 3 सिरों और 6 भुजा वाले एंदेरजात (इन्द्रजीत), पृथ्वी देवी ने पाताल महारायन (महिरावण) और गंगा महादेवी ने गंग महासुर नाम के पुत्रों को जन्म दिया।

"रावण ने धूमधाम से मन्दोदरी के साथ विवाह किया। कुछ दिन बाद उसे एक पुत्री हुई जो सोने के समान सुन्दर थी। रावण के भाई बिबुसनम (विभीषण) ने उसकी कुण्डली देखकर कहा कि इस कन्या का पति उसके पिता का वध करेगा। यह जानकर रावण ने उसे लोहे के बक्से में बन्द कर समुद्र में फेंक दिया। लोहे का बक्सा बहकर द्वारावती चला गया। महर्षि कलि समुद्र में स्नान कर रहे थे। उसी समय वह बक्सा उनके पैर से टकराया। वह बक्सा लेकर वे अपनी पत्नी मनोरमा देवी के पास गये। बक्सा खुलने पर पूरा घर प्रकाशमान हो गया। उसमें एक अत्यन्त सुन्दर कन्या थी। महर्षि कलि ने उसका नाम सीता देवी रखा। उन्होंने उसी समय 40 तान वृक्ष इस उद्देश्य से लगा दिये कि जो कोई उन्हें एक ही बाण से खण्डित कर देगा उसी से सीता देवी का विवाह होगा।"[4] आदि से अन्त तक 'हिकायत सेरीराम' इसी प्रकार की विचित्रताओं से परिपूर्ण है। यद्यपि इसमें वाल्मीकीय परम्परा का बहुत हद तक निर्वाह हुआ है, तथापि इसमें सीता के निर्वासन और पुनर्मिलन की कथा में भी विचित्रता है। सेरीराम से अलग होने पर सीता देवी ने कहा कि यदि वह निर्दोष होंगी तो सभी पशु-पक्षी मूक हो जायेंगे। उनके पुनर्मिलन के बाद पशु-पक्षी बोलने लगते हैं। इस रचना में अयोध्या नगर का निर्माण भी राम और सीता के पुनर्मिलन के बाद ही होता है।

फिलिपींस में रामकथा 'महारादिया लावना' नाम से तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में प्राप्त होती है। इसमें रामकथा तथा पात्रों का स्वरूप बदला हुआ है। यहाँ की रामकथा में राम को मंगदिरी, लक्ष्मण को मंगवर्न, सीता को मलैला तिहाइया कहा जाता है। इसकी कथावस्तु पर सीता के स्वयंवर, विवाह, अपहरण, अन्वेषण और उद्धार की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। फिलिपींस की रामकथा में भी असत्य पर सत्य की विजय दिखाई गयी है। रावण बुरा है, वह परास्त होता है (मारा नहीं जाता), राम-सीता का दाम्पत्य स्थापित होता है।

तिब्बत में रामकथा का प्रवेश मुख्यतः बौद्ध जातकों के कारण हुआ। डॉ. कामिल बुल्के के अनुसार, "रामकथा 'अनामक' जातक तथा 'दशरथ जातक' के माध्यम से तिब्बत पहुँची।"[5] "तिब्बती रामायण की 6 प्रतियाँ तुनहुआंग नामक स्थल से प्राप्त हुई हैं। उत्तर पश्चिम चीन स्थित तुनहुआंग पर 787 से 848 ई. तक तिब्बतियों का आधिपत्य था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसकी अवधि में इन ग़ैर-बौद्ध परम्परावादी रामकथाओं का सृजन हुआ।"[6] "तिब्बत की सबसे प्रामाणिक रामकथा किंरस-पुंस-पा की है जो 'काव्यादर्श' की श्लोक संख्या 289 तथा 297 के सन्दर्भ में व्याख्यायित हुई है।"[7] तिब्बत से होकर यह रामकथा मंगोलिया पहुँची लेकिन इसका सम्बन्ध वाल्मीकि रामायण से न होकर बौद्ध एवं जैन रामकथाओं से था। ऐसा विश्वास है कि तिब्बत के लामा लोगों ने धर्म प्रचार के लिए मंगोलिया में इस कथा का प्रचार किया। मंगोलिया में रामकथा राजा जीवक की कथा है, जो 8 अध्यायों में विभक्त है। इस कथा की 6 पुस्तकें 'लेनिनग्राद पुस्तकालय' में संरक्षित हैं।

"चीन के उत्तर पश्चिम में स्थित मंगोलिया के लोगों की रामकथा के विषय में विस्तृत जानकारी है। वहाँ के लामाओं के निवास स्थल से वानर-पूजा की अनेक पुस्तकें और प्रतिमाएँ मिली हैं। वानर पूजा का सम्बन्ध राम के प्रिय पात्र हनुमान से स्थापित किया गया है।" मंगोलिया में रामकथा से सम्बन्ध काष्ठ चित्र और पाण्डुलिपियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। "ऐसा अनुमान किया जाता है कि बौद्ध साहित्य के साथ संस्कृत साहित्य की भी बहुत सारी रचनाएँ वहाँ पहुँची। इन रचनाओं के साथ रामकथा भी वहाँ पहुँच गयी।"[9]

"जापान में रामायण जातक कथा से पहुँची। जापान के एक लोकप्रिय कथा संग्रह 'होबुत्सुशू' में संक्षिप्त रामकथा संकलित है। इसकी रचना तैरानो यसुयोरी ने 12वीं शताब्दी में की थी।"[10] "रचनाकार ने कथा के अन्त में घोषणा की है कि इस कथा का स्रोत चीनी भाषा का ग्रन्थ 6 परिमिता सूत्र है।"[11] यह कथा वस्तुतः चीनी भाषा के 'अनामकं जातकं' पर आधारित है, किन्तु इन दोनों में अनेक अन्तर भी हैं।

"नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में वाल्मीकि रामायण की दो प्राचीन पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। इनमें से एक पाण्डुलिपि के किष्किन्धा काण्ड की पुष्पिका पर तत्कालीन नेपाल नरेश गांगेय देव और लिपिकार तीरमुक्ति निवासी कायस्थ पण्डित गोपति का नाम अंकित है। इसकी तिथि सं. 1076 तद्नुसार 1019 ई. है। दूसरी पाण्डुलिपि की तिथि नेपाली सं. 795 तद्नुसार 1674-76 ई. है।"[12]

नेपाली साहित्य में भानुभक्त कृत रामायण को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। नेपाल के लोग इसे ही अपना आदि रामायण मानते हैं। यद्यपि भानुभक्त के पूर्व भी नेपाली रामकाव्य परम्परा में गुमनी पन्त और रघुनाथ का नाम उल्लेखनीय है। रघुनाथ कृत 'रामायण सुन्दर काण्ड' की रचना 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई थी। इसका प्रकाशन नेपाली साहित्य सम्मेलन दार्जिलिंग द्वारा कविराज दीनानाथ सापकोरा की विस्तृत भूमिका के साथ 1932 में हुआ।

"नेपाली साहित्य के क्षेत्र में प्रथम महाकाव्य 'रामायण' के रचनाकार भानुभक्त का उदय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। पूर्व से पश्चिम तक नेपाल का कोई ऐसा क़स्बा नहीं है जहाँ उनकी रामायण नहीं पहुँच सकी हो। भानुभक्त कृत रामायण वस्तुतः नेपाल का रामचरितमानस है।"[13] 1853 में उनकी रामायण पूरी हो गयी थी, किन्तु "एक अन्य शोध के अनुसार युद्ध काण्ड और उत्तर काण्ड की रचना 1855 ई. में हुई थी।"[14]

"भानुभक्त कृत रामायण में अध्यात्म रामायण के उत्तर काण्ड में वर्णित राम गीता को सम्मिलित नहीं किया गया था। भानुभक्त के मित्र पण्डित धर्मदत्त ग्यावली को इसकी कमी खटक रही थी। विडम्बना यह थी कि उस समय भानुभक्त मृत्युशैया पर पड़े थे। वह स्वयं लिख भी नहीं सकते थे। मित्र के अनुरोध पर महाकवि द्वारा अभिव्यक्त राम गीता को उनके पुत्र ने राम कण्ठ में लिपिबद्ध किया।"[15] श्रीलंका में रामकथा का कोई विशाल ग्रन्थ नहीं मिलता है वैसे कई लेखकों ने रामायण की गाथाओं को सिंहली भाषा में लिखा है। इनमें कुमार दास का 'जानकीहरण' प्रमुख है। श्रीलंका के संस्कृत एवं पालि साहित्य का प्राचीनकाल से ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। भारतीय महाकाव्य की परम्परा पर आधारित जानकीहरण के रचनाकार कुमार दास के सम्बन्ध में कहा जाता है कि, "वे महाकवि कालिदास के अनन्य मित्र थे। कुमार दास (512 से 21 ई.) लंका के राजा थे। इतिहासकारों ने उनकी पहचान कुमार धातुसेन के रूप में की है।"[16] कालिदास के रघुवंशम् की परम्परा में वीर क्षेत्र जानकीहरण संस्कृत का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसकी मान्यता इस तथ्य से रेखांकित होती है कि इसके अनेक श्लोक काव्यशास्त्र के परवर्ती ग्रन्थों में उद्धृत किये गये हैं।

इसका कथ्य वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। "सिंहली साहित्य में रामकथा पर आधारित कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है। श्रीलंका के पर्वतीय क्षेत्र में कोहंवा देवता की पूजा होती है। इस अवसर पर मलेराज कथाव (पुष्पराज की कथा) कहने का प्रचलन है।"[17] इस अनुष्ठान का आरम्भ श्रीलंका के सिंहली सम्राट पाण्डु वासवदेव के समय ईसा के 500 वर्ष पूर्व हुआ था। मलेराज की कथा के अनुसार, "राम के रूप में अवतरित विष्णु एक बार शनि की साढ़ेसाती के प्रभाव क्षेत्र में आ गये। उन्होंने उसके दुष्प्रभाव से बचने के लिए सीता से अलग हटकर हाथी का रूप धारण कर सात वर्ष व्यतीत किये। समय पूरा होने में एक सप्ताह बाक़ी था तब तक रावण ने सीता का हरण कर लिया। उसने देवी सीता को पथभ्रष्ट करना चाहा। सीता ने कहा कि तीन महीने की व्रत की अवधि समाप्त हो जाने के बाद ही वे उसकी इच्छा की पूर्ति करने का प्रयत्न करेंगी।"[18]

राम चरित्र जीवन की सम्पूर्णता का प्रतीक है। राम के महान आदर्श का अनुकरण जनजीवन में हो इसी उद्देश्य से इस महाकाव्य की रचना की गयी है। अतः रामकाव्य हमारे देश का राष्ट्रीय महाकाव्य है और राम इस देश के महानायक। इस महान चरित्र में वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक आदर्शों का अत्यन्त भव्य रूप हमारे समक्ष उभरकर आया है। रूसी प्राच्यविद्, विद्वान अलेक्जेंडर सेंकेविच के शब्दों में, "रामायण विश्व साहित्य की उन कृतियों में से है, जो विभिन्न जाति के लोगों को समीप लाती है, संहार और अमानुषिकता का विरोध करती है और सामाजिक विषमता को अस्वीकार करती है। रामायण मानवीय मूल्यों से भरपूर महाकाव्य है, जो मनुष्य को श्रेष्ठ प्राणी बनाये रखने के लिए प्रेरित करता है। रामायण के सत्य का पथ भारत के सत्य का पथ है। रामायण जैसी कृतियाँ सक्रिय मानवतावाद का आवाहन करती हैं, यही कारण है कि उसका महत्त्व राष्ट्रीय संस्कृति की सीमा में बँधा न रहकर विश्व विराटता का रूप ग्रहण करता है।"[19]

सन्दर्भ

1. एशियन वैरीएशन इन रामायण, एच.बी. सरकार, पृ. 207
2. रामायण इन मलेशिया, इस्माइल हुसैन, पृ. 143
3. रामा लेजेंड्स एंड रामा रिलीफ्स इन इंडोनेशिया, रामा डब्ल्यू. स्टटरलीन, पृ. 23
4. वही, पृ. 32
5. राम कथा, कामिल बुल्के, पृ. 29
6. द स्टोरी ऑफ़ रामा इन तिब्बत, एशियन वैरीएशन इन रामायण, डॉ. जे. डब्ल्यू. जॉन्ग, पृ. 163
7. वही, पृ. 173
8. द रामायण इन मंगोलिया, टी. एस. दम्दिन सुरेन पृ. 657
9. द रामायण इन ग्रेटर इंडिया, वी. राघवन, पृ. 24
10. वही, पृ. 32
11. रामायण स्टोरीज़ इन चाइना एंड जापान, मिनोरु हारा, पृ. 347-48
12. द रामायण थीम इन नेपाली आर्ट, एन.आर. बनर्जी, पृ. 155
13. नेपाली साहित्य का इतिहास—तारानाथ शर्मा, पृ. 32
14. वही, पृ. 33
15. रामायण इन नेपाली, कमला सांस्कृत्यायन पृ. 368
16. रामायण इन श्रीलंका, सी.ई. गोडकुंबुरा, पृ. 445
17. वहीं, पृ. 438
18. वहीं
19. रूस में रामायण, अलेक्जेंडर सेंकेविज, पृ. 85

वर्तमान समय में राम की प्रासंगिकता : एक संक्षिप्त अवलोकन

मनोज कुमार श्रीवास्तव

आधुनिक युग ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक का युग है। महँगाई- बेरोज़गारी के कारण इस युग में संयुक्त परिवार टूटते जा रहे है तथा परिवार छोटा होता जा रहा है। ऐसे में व्यक्ति अपने सुख-दुख का बँटवारा किसके साथ करें, यह एक बड़ी गम्भीर समस्या है। बाज़ारवाद और उद्योगवाद के कारण इन्सान पूरा दिन भाग-दौड़ में लगा रहता है, जिसके कारण उसे मानसिक तनाव से भी गुज़रना पड़ता है। इस भाग-दौड़ व मानसिक तनाव के कारण इन्सान को इतना भी वक़्त नहीं मिल पाता कि वह यह विचार कर सके कि अच्छा क्या है और बुरा क्या। इन्सान आज एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो गये हैं। वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों को अपना दुश्मन समझने लगे हैं। आज समाज में हिंसा, मार-काट, राग-द्वेष जैसे बुरे गुणों का वर्चस्व दिन-ब-रात बढ़ता जा रहा है। इन्सान के हृदय में आज परोपकारिता, अहिंसा, प्रेम, अपनापन, भाईचारे की भावना आदि सद्गुणों का प्रायः लोप होता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप समाज, देश व दुनिया का स्वरूप विकृत होता जा रहा है। समाज के इस विकृत स्वरूप को पुनः व्यवस्थित व सुदृढ़ करने हेतु राम के आदर्शों को पुनः आम जनता के हृदय में जाग्रत कर उन्हें स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है।

विश्व में बाइबिल जितना प्रसिद्ध है, उससे से कई गुना अधिक रामकथा प्रसिद्ध है। भारत ही नहीं दक्षिण पूर्व एशिया के सभी भागों में रामकथा प्रचलित है। भगवान राम ने जिस प्रकार आदर्श जनसेवक, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई के दायित्वों का निर्वहन जीवन-भर निःस्वार्थ भाव से किया और आम जनता को भी आदर्श का पाठ पढाया, उससे आज सम्पूर्ण समाज को सीख लेने की आवश्यकता है। राम के आदर्शों को अपनाकर ही वर्तमान समय में समाज में फैले हिंसा, राग-द्वेष, अराजकता आदि दुर्गुणों को समाप्त कर पुनः एक स्वच्छ समाज की स्थापना की जा सकती है। अतः इस दृष्टि से देखा जाये तो भगवान राम आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितना प्राचीनकाल में थे।

रामकथा की परम्परा

भारत में रामायण एक विशिष्ट स्थान रखती है। इसीलिए रामकथा की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। रामकथा स्वयं अपने आप में महाकाव्य है। रामकथा सम्बन्धी साहित्य अनेक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है और इसकी अपनी परम्पराएँ भी हैं। रामकथा में प्रमुख रूप से धार्मिक दृष्टि से तीन परम्पराओं को लिया जा सकता है—

(क) हिन्दू परम्परा : इसके अन्तर्गत वैदिक कथाएँ, महाभारत तथा राम सम्बन्धित अन्य पौराणिक कथाएँ, रामकथा सम्बन्धी अन्य काव्य एवं नाटक आते हैं।

(ख) बौद्ध परम्परा : जातक आदि रामकथाएँ।

(ग) जैन परम्परा : जैन धर्म ग्रन्थों, काव्यों में प्राप्त राम विषयक परम्परा।

वाल्मीकि रामायण के पूर्व जो रामकथा के आख्यान मिलते हैं। उन्हें रामकथा का आधार नहीं माना जा सकता। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वाल्मीकि ने केवल कल्पना के आधार पर ही रामायण का प्रणयन किया। वाल्मीकि कृत रामायण के पश्चात रामकथा का विस्तृत विवरण महाभारत में उपलब्ध होता है। महाभारत के पश्चात रामकथा विभिन्न धर्मग्रन्थों में पायी जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि रामकथा की लोकप्रियता देखकर विभिन्न धर्मों में अपने उद्देश्य एवं प्रयोजन सिद्धि के लिए उसका अनेक रूपों में प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

बौद्ध साहित्य में भी रामकथा आयी है। रामकथा को बौद्धों ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार ढाल लिया। बौद्ध मतावलम्बी बोधिसत्व को राम का पुनरावतार मानते हैं। वहीं दूसरी ओर भारतीय रामकथा का पारम्परिक विस्तृत रूप जैन साहित्य में मिलता है। बौद्ध साहित्य की रामकथा की अपेक्षा जैन साहित्य की रामकथा अपने विस्तार की विशिष्टता को सँजोये हुए है। जैन धार्मिक ग्रन्थों में रामकथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रामकथा के सभी पात्रों को जैन धर्म में स्थान दिया गया है। राम, लक्ष्मण व रावण को जैन धर्म में तीन विशिष्ट महापुरुष माना जाता है। जैन रामकथा में रामचरितमानस सम्बन्धी अलौकिक घटनाओं को ही लौकिक रूप में चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

जैन रामकथा की दो परम्पराएँ हैं—विमल सूरी की रामकथा व गुणभद्र की रामकथा। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में केवल विमल सूरी की रामकथा ही प्रचलित है लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में दोनों ही रामकथाएँ प्रचलित हैं।

वर्तमान समय में राम की प्रासंगिकता

ज्ञान-विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में व्यक्ति विकास की दौड़ में बड़ी तेज़ी से भाग रहा है और वह अपनी संस्कृति को भूलता जा रहा है। हम सांस्कृतिक दृष्टि से इतने कंगाल होते जा रहे हैं कि पड़ोस में दीवार के उस पार क्या हो रहा है इसकी कोई खोज-ख़बर नहीं ले पाते। इस संवेदनहीनता ने इन्सान को मशीन बनाकर रख दिया है। आज का युग अपनी संस्कृति को भूलता जा रहा है, लेकिन हमें यह क़तई नहीं भूलना चाहिए कि संस्कृति वह प्राणवायु है, जो हमारी संवेदना को स्पन्दन देती है। मनुष्यता को शक्ति देती है। सभ्यता का निवास विचारों में होता है और संस्कृति का अधिवास संस्कारों में होता है।

वर्तमान समय में हमारा समाज जिस प्रकार विकृत होता जा रहा है वह अत्यन्त गम्भीर व विकट समस्याओं को दिन-प्रतिदिन जन्म देता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप वर्तमान युग में इन्सान का जीना दूभर हो गया है। ऐसे में घट रहे पारिवारिक, सामाजिक मूल्यों को पुनः व्यवस्थित एवं सुदृढ़ करने हेतु राम के आदर्शों को पुनः व्यक्ति में जाग्रत कर स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः आगे हम विभिन्न बिन्दुओं के आधार पर वर्तमान समय में राम की प्रासंगिकता पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे—

जातीयतावाद की समस्या—वर्तमान समय में जातीयतावाद की समस्या गम्भीर से गम्भीरतर होती जा रही है। कहने को तो हम मनुष्य स्वयं को आधुनिक मानव कहते हैं। केवल ऊपरी चाल-ढाल, रहन-सहन, खान-पान में परिवर्तन लाने भर से हमारा विकास हो पाना सम्भव नहीं है। प्राचीनकाल में जो समस्याएँ समाज में थीं, वे सारी समस्याएँ आज भी मौजूद हैं। उन समस्याओं का निदान होने के स्थान पर वे समस्याएँ और भी जटिल हो गयी हैं। प्राचीनकाल में समाज में विद्यमान छुआ-छूत,

ऊँच-नीच, स्पृश्यता जैसी समस्याएँ आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। जातीयतावाद की इस समस्या को रामकथा के द्वारा समाज से दूर किया जा सकता है।

वर्तमान समय में दलित वर्ग आज भी उपेक्षित, लांछित और आर्थिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से बहुत ही दयनीय स्थिति में है। रामकथा हमें वर्तमान समय में जाति के नाम पर लोगों के साथ हो रहे अत्याचार, शोषण आदि के विरोध में खड़े होने की शक्ति प्रदान करती है। उदाहरणस्वरूप, रामकथा में वर्णित 'शबरी पर कृपा' प्रसंग को लिया जा सकता है। भगवान राम उच्च वर्ग के होने पर भी 'शबरी' के द्वार पर जाते हैं और उसके जूठे बेर बड़े प्रेमभाव से खाते हैं। जब भगवान राम 'शबरी' के घर जाकर जल और अन्न के रूप में जूठे बेर खा सकते हैं तो हम मनुष्य जाति-पाँति के नाम पर एक-दूसरे से क्यों भेदभाव करते हैं। हम सभी को एक ही ईश्वर ने बनाया है। हम सभी एक ही प्रकार की वायु का उपयोग श्वास लेने में करते हैं। हम सभी एक ही प्रकार के अन्न, जल, वायु, प्रकाश आदि का व्यवहार करते हैं। अतः हम सभी एक हैं और प्रेमभाव सर्वोच्च है। उदाहरणस्वरूप निम्न पंक्तियों को लिया जा सकता है–

"ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आश्रम पगु धारा।।
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाएँ।।
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला।।
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।।"

(तुलसीदास, 2002. 431)

वर्तमान जीवन में आदर्श का अभाव–वर्तमान समय में हमारे जीवन से आदर्शों का प्रायः लोप होता जा रहा है। तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' ग्रन्थ की रचना कर भारतीय समाज में जिस आदर्श की स्थापना की थी आज उसका विघटन होता जा रहा है। भगवान राम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श जनसेवक थे। जब माता कैकेयी ने आदेश दिया कि राम को वनवास के लिए जाना चाहिए तो राम तुरन्त तैयार हो गये। उन्हें राजगद्दी का मोह नहीं था। भगवान राम का माता के एक आदेश पर वनवास जाने हेतु तैयार हो जाना उनके आदर्श पुत्र के गुण को चरितार्थ करता है। साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि माता-पिता का आदेश उनके लिए सर्वोच्च था।

आज के ज़माने में बच्चे मनमानी करते हैं। अपने से बड़ों का आदर नहीं करते। बच्चे यह नहीं समझते हैं कि उनकी उन्नति के लिए ही माता-पिता अपना सब कुछ त्याग देते हैं। श्रीराम ने एक बार भी अपने माता-पिता से यह नहीं पूछा कि किस कारण से उन्हें वन भेजा जा रहा है। इसके लिए उन्होंने अपने माता-पिता को दोषी नहीं ठहराया। परन्तु आज के बच्चों के साथ ऐसी कोई घटना घटित हो तो वे अपने माता-पिता के विरोध में ज़मीन-आसमान एक कर देंगे। उदाहरणस्वरूप रामचरितमानस के अयोध्या काण्ड में निहित निम्नलिखित पंक्तियों को लिया जा सकता है।

"सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।"

(तुलसीदास, 2002, 256)

नारी त्याग की प्रतिमूर्ति–नारी वर्षों से त्याग की देवी बनी हुई है। लेकिन वर्तमान समय में नारी के भीतर व्याप्त त्याग, समर्पण जैसे सद्गुणों का लोप होने लगा है। रामायण या रामचरितमानस में हमें यह देखने को मिलता है कि उर्मिला राम-जानकी के साथ अपने पति को 14 वर्ष के लिए वन

जाते हुए देख, छिन्नमूल शाखा की तरह राज-सदन की एक एकान्त कोठरी में भूमि पर लोटती रही। लेकिन इतनी पीड़ा होने के बावजूद उर्मिला ने अपने पति संग वनवास जाने की हठ नहीं की। यदि वह भी साथ जाने को तैयार होती, तो लक्ष्मण को अपने अग्रज राम के साथ उसे ले जाने में संकोच होता और उर्मिला के कारण लक्ष्मण अपने आराध्य युग्म की सेवा भी अच्छी तरह न कर पाते। यही सोचकर उर्मिला ने सीता का अनुकरण नहीं किया। अतः इस प्रकार देखा जाय तो उर्मिला को एक साथ पति और बहन दोनों का वियोग सहना पड़ा। वर्तमान युग में व्याप्त महिलाओं को उर्मिला से सीख लेने की आवश्यकता है।

वर्तमान युग के बिगड़ते राजनीतिक परिवेश–वर्तमान समय में राजनीतिक परिवेश अत्यन्त गम्भीर एवं जटिल हो गया है। आज की राजनीति से जुड़े नेतागण निज स्वार्थ के लिए आम जनता का शोषण करने से क़तई नहीं कतराते। एक नेता का दायित्व होता है कि वह देश की जनता को सारी मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध करवाये और देश के विकास में अहम भूमिका अदा करें। लेकिन आज देश की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त विकृत हो चली है। श्रीराम ने जिस निःस्वार्थ भाव से आम जनता की रक्षा करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन न्योछावर कर दिया था, आज उस प्रकार के शासक का हमारे देश में नितान्त अभाव है। वर्तमान समय की राजनीतिक स्थिति पहले से और भी विकृत हो गयी है। अतः इस दृष्टि से देखा जाय तो राम जैसे लोक कल्याणकारी नेता की आज हमें अत्यन्त आवश्यकता है। उदाहरणस्वरूप रामचरितमानस की निम्न पंक्तियों को लिया जा सकता है–

"ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकरनारि नरचोरा।।
डरपहिं धीर गगन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरू सुभाएँ।।"

(तुलसीदास, 2002, 267)

जिस प्रकार भगवान श्रीराम ने अपने लिए कुछ नहीं चाहा ठीक उसी प्रकार हमें भी निःस्वार्थ भाव से दूसरों की भलाई, समाज के विकास, मानवीय कर्तव्य की पूर्ति हेतु कार्य करने की आवश्यकता है। तब समाज व देश में सुख, शान्ति और वैभव की स्थापना पुनः हो सकेगी जो रामराज्य में विद्यमान थी।

भगवान राम के हृदय में–रामकथा में हमें राम के हृदय अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण में देखने को मिलता है। राम के अन्तर्द्वन्द्व और भयग्रस्त मन में वीरता और भीरूता परस्पर विरोधी भाव हैं। किन्तु वीरता के कार्य में सफलता न मिलने से जो खिन्नता होती है, वह स्वाभाविक है। उनका चरित्र अपनी उदात्तता के कारण प्रभावी एवं उज्ज्वल है तो मानवीय दुर्बलताओं तथा अन्तर्द्वन्द्व के कारण स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी प्रतीत होता है। वर्तमान युग में भी मानव की स्थिति राम जैसी है। जिस प्रकार राम को तमाम प्रयासों के पश्चात असफलता मिलती है जिसके परिणामस्वरूप उनके हृदय में निराशा, कुण्ठा, दर्द का भाव जाग्रत होता है। लेकिन फिर भी वे प्रयास नहीं छोड़ते और अन्त में उन्हें असफलता मिलती है। ठीक उसी प्रकार वर्तमान भाग-दौड़ भरी ज़िन्दगी में हमें संघर्ष करते रहना चाहिए। एक-दो बार विफल होने के पश्चात् दुगुने उत्साह के साथ प्रयास करना चाहिए तो निश्चित रूप से सफलता मिलेगी।

युद्ध में निराशा की मनोदशा का चित्रण कवि 'निराला' ने अमावस के अन्धकार में जलती एक मशाल के माध्यम से किया है–

"है अमानिशां उगलता गगन घन अन्धकार।
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार।।

अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल।
भूधर ज्यों ध्यानमग्न, केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर
रह-रह उठता जग जीवन में रावण जय-भय।''

(मिश्र, 2010, 40)

उद्देश्य

उद्देश्य की दृष्टि से देखा जाय तो प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य आम जनता के हृदय में जागृति लाकर उनके दुर्गुणों को समाप्त करना है। जिसके फलस्वरूप परिवार, समाज व देश में मानवीय संवेदनाओं का पुनःस्थापन हो सके। आम जनता को 'राम' के समान आदर्शवान बनाकर प्रेम, भाईचारे की भावना द्वारा अपने भारत देश को सोने की चिड़िया पुनः बनाना ही इस अकिंचन का अभीष्ट है। भगवान 'राम' के समान लोककल्याणकारी, प्रेम तथा आदर्श के पथ को अपनाकर ही हमारा जीवन सफल हो सकेगा तथा विश्व में हमारा देश शीर्ष स्थान को प्राप्त कर सकेगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर भगवान 'राम' की वर्तमान समय में क्या प्रासंगिकता है यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है। भगवान 'राम' ने जीवन-भर निःस्वार्थ भाव से परिवार, समाज व देश के कल्याण के लिए कार्य करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन न्योछावर कर दिया। उनके समय में व्याप्त जातीयतावाद, छुआ-छूत, ऊँच-नीच का जो भेदभाव विद्यमान था उसे दूर करने के लिए श्रीराम ने हरसम्भव प्रयास करते हुए समाज में आदर्श की स्थापना की। उन्होंने जिस प्रकार पापियों का नाश करके अधर्म पर धर्म की स्थापना की, ठीक उसी प्रकार वर्तमान समय में फैली अराजकता, ईर्ष्या, राग-द्वेष जैसे दुर्गुणों को समाप्त कर एक नवीन स्थापना करना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान युग में समाज में अनेक प्रकार की बुराइयों का बोलबाला हो चला है। अतः ऐसे में भगवान राम के आदर्शों को पुनः स्थापित कर देश को एक नयी ऊँचाई और एक नये आयाम तक पहुँचाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीरामचरितमानस (मूल गुटका), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2002
2. भाटी, प्रो. देशराज सिंह, केशव और उनकी रामचन्द्रिका, अशोक प्रकाशन, दिल्ली-6, 2012
3. मिश्र, डॉ. राम नारायण, राम की शक्ति-पूजा एक अध्ययन, प्रकाशक : हिन्दी पुस्तक घर, उमरेठ, 2010
4. चतुर्वेदी, डॉ. राजेश्वरप्रसाद, केशवदास (आलोचनात्मक अध्ययन), प्रकाशक केन्द्र लखनऊ, उत्तर प्रदेश, 2000
5. गुप्त, श्री मैथिलीशरण, साकेत (नवम सर्ग), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
6. राकेश, श्री साकेत, नवम सर्ग (एक प्रामाणिक अध्ययन, लखनऊ प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012
7. चतुर्वेदी, राजेश्वरप्रसाद, तुलसीदास आलोचनात्मक अध्ययन, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, सीतापुर रोड, 2009
8. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र (सम्पा.), निबन्ध निकष, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007

रचनाकारों के पते

बर्नाली बैश्य	:	सहकारी अध्यापिका, सोनापुर महाविद्यालय, असम
चयनिका दत्त	:	तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम
परिस्मिता काकति	:	इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
डिम्पी दत्ता/बेबी विश्वाकर्मा	:	एम.फिल. छात्रा, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश
किरण कलिता	:	हिन्दी विभाग, लंका महाविद्यालय, असम
हिटलर सिंह	:	शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय डीफू परिसर, असम
पूजा बरुवा	:	शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम
सरस्वती सिंघा	:	गुवाहाटी, असम
प्रो. ह. सुवदनी देवी	:	हिन्दी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, मणिपुर
प्रो. दिनेश कुमार चौबे	:	हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग
डॉ. मिलन रानी जमातिया	:	सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला
प्रो. चन्दन कुमार	:	प्रोफ़ेसर हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी	:	प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, असम
डॉ. सुनील कुमार तिवारी	:	सहायक प्रोफ़ेसर, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. अनिता पी. एल	:	सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग, महाराजा'ज़ कॉलेज (सरकारी स्वायत्त) एरणाकुलम ज़िला - 682011, केरल
डॉ. मीरा दास	:	असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, लखीमपुर गर्ल्स कॉलेज, असम
डॉ. प्रमोद मीणा	:	प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय मोतिहारी, बिहार
डॉ. चारू गोयल	:	असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय, दिल्ली
अनुपमा तिवारी	:	(पी.डी.एफ. स्कॉलर), हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय विशाखापट्टनम, आन्ध्र प्रदेश

प्रीति प्रकाश	:	शोधार्थी, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम
डॉ. अंजुबाला	:	श्री गुरुनानक देव खालसा कॉलेज, देव नगर, दिल्ली
डॉ अनुराधा कु. साहु	:	असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, डिगबोई कॉलेज, डिगबोई, असम
मोनमी गायन	:	अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डी.डी.आर. कॉलेज, चबुवा, असम
डॉ. दिलीप शर्मा	:	सहयोगी अध्यापक, हिन्दी विभाग, नगाँव कॉलेज, नगाँव, असम
प्रत्याशा कौशिक	:	छात्रा, हिन्दी विभाग, नगाँव कॉलेज, असम
डॉ. शैलजा के.	:	असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, महाराजा'ज़ कॉलेज, कोच्ची, केरल
छिद्दिकुर रहमान	:	वरिष्ठ शिक्षक, नगाँव राष्ट्रभाषा महाविद्यालय, नगाँव, असम
जशोधरा बोरा	:	शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम
दिना चौहान	:	सहायक प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, हावड़ाघाट कॉलेज, कार्बी आंग्लंग, असम
अपराजिता राय	:	शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम
चारु चौहान	:	शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मनोज कुमार श्रीवास्तव	:	शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

❑❑